

# नये चित्र

[ १९४८ के २५२२ लक्षी अलिगेटि द्वारा बहुमिती ]

प्रभाद  
सत्येन्द्र मुख्य

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—५८

# नये चित्र

[ १९४८ से १९५२ तककी प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ ]

सम्पादक  
सत्येन्द्र शरत्



भारतीय ज्ञानपीठ का शी

ज्ञानपीठ लोकोदय-वन्थमाला-सम्पादक और नियामक  
श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक

मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ  
दुर्गाकुरड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण

१६५७ ई०

मूल्य तीन रुपये

सुद्रक

वाचूलाल जैन फागुल  
सन्मति मुद्रणालय  
दुर्गाकुरड रोड, वाराणसी

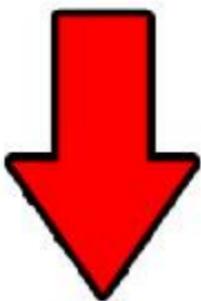
‘नये चित्र’ के कथाकारोंका  
यह  
सम्मिलित प्रयास  
महान् कथाकार स्वर्गीय श्रीप्रेमचंद्र  
की  
पुण्य सृतिकां  
सादर समर्पित  
है

**Collect more e-books**



A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-



**[www.ebookspdf.in](http://www.ebookspdf.in)**

---

## आमुख

सन् १९४८ से १९५२ तककी बारह प्रतिनिधि कहानियोंका यह संग्रह प्रस्तुत करते हुए, इस संकलनकी योजनाके सम्बन्धमें मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

आधुनिक हिंदी कहानीका प्रारम्भ ‘सरस्वती’ मासिक-पत्रके प्रकाशन ( १९०० ई० ) से माना गया है । हिंदीके सुप्रासद्ध कथा-संग्रह ‘इककीस कहानियों’ के सम्पादक राय कृष्णदास द्वारा किये काल-विभाजनको स्वीकार करें तो आधुनिक हिंदी कहानीके विकासका सुविधाके साथ अध्ययन करने के लिए, उसे निम्न चरणोंके अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है ।

प्रथम चरण : १९०० से १९१० ई० तक । ये काल आधुनिक हिंदी कहानीका प्रयोग-काल था । इसमें प्रायः अग्रेजी और ब्रगला भाषासे प्रभावित या अनुवादित कहानियों मिलती है । मौलिक कहानियोंमें ‘सरस्वती’ में प्रकाशित वंग महिलाकी ‘दुलार्इवाली’ और श्री बृन्दावनलाल वर्माकी ‘राखीवद भाई’ कहानियाँ उल्लेखनीय हैं ।

द्वितीय चरण : १९११ से १९२० ई० तक । १९११ ई० से ‘इंडु’ मासिक-पत्रके प्रकाशनके साथ हिंदी कहानीका दूसरा उत्थान प्रारम्भ होता है । इस कालमें हिंदी कहानी आश्चर्यजनक रूपसे आगे बढ़ी । श्रीजयशंकर ‘प्रसाद’, जी० पी० श्रीवास्तव, गुलेरीजी, विश्वम्भरनाथ शर्मा ‘कौशिक’, राजा राधिकारमणप्रसाठ सिंह, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, राय कृष्णदास, चंडीप्रसाठ ‘हृदयेश’, गोविद्वप्तम तंत्र और सुदर्शन इस दशक के महत्वपूर्ण कहानीकार हैं ।

**तृतीय चरण :** १९२१ से १९३० ई० तकका समय हिंदी कहानीका समृद्धि काल था। प्रेमचंद और 'प्रसाद' की अनेक सुन्दर कहानियाँ इसी दशकमें लिखी गईं। इनके अतिरिक्त पाडेय वेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकात्र त्रिपाठी 'निराला', भगवतीप्रसाद वाजपेई, विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्रकुमार, चद्रगुप्त विद्यालकार, इलाचंद्र जोशी, आचार्य जहूरवर्खश, पदुमलाल पुन्नालाल वर्खशी, जनार्दनप्रसाद भा 'द्विज', डॉ. धनीराम 'प्रेम' ने भी अपनी सुन्दर रचनाओंसे हिंदी कथा-साहित्यकी कोष-बृद्धि की।

**चतुर्थ चरण :** १९३१ ई० से हिंदी कहानीको एक नया ही मोड़ मिला। कहानीकारोंने कथा-वस्तुके अतिरिक्त शिल्पकी ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया। मनोविज्ञानने भी कहानी में प्रवेश किया। हिंदीकी अनेक महत्त्वपूर्ण कहानियाँ इस कालके कथाकारोंकी देन है। श्री भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, सियारामशरण गुप्त, राधाकृष्ण, 'अजेय', उपेन्द्रनाथ अश्क आदि कहानीकार १९३५ ई० तक सुप्रसिद्ध हो चुके थे। 'इक्कीस कहानियाँ' संकलन इन्ही नामोंके साथ समाप्त होता है। कदाचित् यही कारण है कि 'इक्कीस कहानियाँ' में १९३६ से १९४० ई० के बीच लिखने वाले कहानीकारोंका समावेश न किया जा सका।

'इक्कीस कहानियाँ' संकलनके पूरकके रूप में श्री राय कृष्णदासने १९४२ ई० में अपने सम्पादनमें एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कथा-संकलन 'नई कहानियाँ' तैयार किया। 'नई कहानियाँ' संग्रहका अधिक प्रचार न हो सका, यह सत्य है, किंतु इससे उस संकलनका महत्त्व कम नहीं होता। इस संग्रह में १९३६ से १९३८ ई० तककी बारह प्रतिनिधि कहानियाँ समयानुक्रमसे दी गई हैं। कथाकार हैं—श्रीमती माधवी, सत्यवती

मलिक, सुधाकर दीक्षित, यमुनाटत्त वैष्णव, हरदयाल 'मौजा', रामकृष्णदत्त गर्ग, बलराज साहनी, कमलाकात वर्मा, शातिप्रसाठ वर्मा, विष्णु प्रभाकर, वीरेश्वर सिंह और यशपाल। ये सब कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंसे एकत्र की गई थीं।

मै समझता हूँ, इन नामोंको जोड़ देने पर हिंदी कहानीके चोथे दण्डके कहानीकारोंकी सूची पूर्ण हो जाती है। यह सूची श्री भगवती-चरण वर्माके नामसे प्रारम्भ होती है और श्री यशपालके नामसे समाप्त होती है।

पॉचवाँ चरण : १९४१ ई० के बाद कहानियाँ लिखीं तो बहुत गईं; किंतु हिंदी कहानीपर काम लगभग नहींके बराबर ही हुआ। काम करता भी कौन ? इस बीच कई कथा-संग्रह प्रकाशित हुए जो मुख्यतः कोर्स में लगानेके लिए तैयार किये गये थे और जिनमे बुमा-फिराकर एक ही नाम और एक ही कहानियाँ थीं। ये संग्रह कोर्समें लगे भी, किंतु किसी भी सम्पादकने कथाकार-सूचीको दोहराने, उसमे सुधार करने और उसे अपडुडेट बनानेकी लेश-मात्र भी कोशिश नहीं की। ठीक भी था। कोर्स में लग जानेके बाद तो पुस्तकों मोक्ष प्राप्त हो जाता है, फिर उसमे सुधार की कोई आवश्यकता कठान्चित् रहती भी नहीं। अन्य प्रकाशक बड़े नाम देखकर उपन्यास और कहानी-संग्रह छापते रहे। परिणाम यह हुआ कि जो लेखक प्रवंध कर सके वे ही अपने कहानी-संग्रह छापा पाये। बाकी रह गये। हाँ, पत्र-पत्रिकाओंमें धड़ल्लेसे कहानियाँ छृपती रहीं। यह स्थिति अभी तक लगभग ऐसी ही चल रही है।

पॉचवे दशक ( १९४१ से' ५० )में इतने अधिक कहानीकार कथा-क्षेत्र में आये हैं और इतनी अधिक संख्यामें अच्छी व सुन्दर कहानियाँ लिखी गई हैं कि दस वर्षके लम्बे कालमें केवल वीस कहानी-कारोंकी सूची बनानेसे कठान्चित् सब कहानीकारों और उनकी रचनाओंके

प्रति समुचित न्याय नहीं हो सकेगा। मेरे विचारसे यदि दसकी अपेक्षा पाँच वर्षकी अवधि में हिंटी कहानीकी प्रगतिका अध्ययन किया जाय तो कदाचित् अधिक सुविधा होगी।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओंकी फाइले देखनेपर पता चलता है कि १६४०ई० से १६४४ई० के बीच हिंटी कहानीको कहानीकारोंकी एक विलक्षण नई ही सूची मिली। इन कहानीकारोंने हिंटीको ढेर सारी ‘प्यारी’ कहानियाँ भेट की। यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्रचारसे दूर रहनेके कारण ये कथाकार और इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्यमे शीर्ष स्थान न पा सकी, जिनकी वह अधिकारिणी थी और श्री चंद्रगुप्त विद्यालकार जैसे प्रतिष्ठित कथाकार एवं कथा-आलोचकको अपने सद्य-प्रकाशित कहानी-संग्रह ‘तीन दिन’की भूमिकामे लिखना पड़ा कि “पिछला दशक ( १६४१ से १६५० ) तो नये कहानी-लेखकोंकी दृष्टिसे जैसे एकटम वीराना-सा रहा।” हो सकता है चंद्रगुप्त जीके सामने स्पष्ट चित्र न रहा हो किन्तु जिन असंख्य पाठकोंने ये कहानियाँ पढ़ी हैं वे आज तक इन कहानियोंकी मधुर स्मृति नहीं भुला पाये हैं। इस कालके कथाकार श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र ‘निर्गुण’, अमृतलाल नागर, नलिनविलोचन शर्मा, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा ( आर. ए. एस. नामसे ‘माया’मे प्रकाशित कहानियोंके लेखक ), कमल जोशी, नरेन्द्र शर्मा, पहाड़ी, वीरेश्वर, चंद्रकिरण सौनरेक्षा, निर्मला मित्र, ‘नज्म’, रामचंद्र तिवारी, होमवती देवी, कमला चौधरी, सुशीला आगा, कुँवरानी तारा देवी, शोभाचंद्र जोशी, यशपाल जैन, कन्हैयालाल मिश्र ‘प्रभाकर’, रामप्रताप बहादुर, कृष्णानंद गुप्त, कौशल्या अश्क, धर्मप्रकाश आनंद, ‘शिक्षार्थी’ और वृजेन्द्रनाथ गौड़ की अनेक कहानियोंको मैं प्रमाण स्वरूप उपस्थित कर सकता हूँ। इन कहानियोंमे किसी ‘वाद’का प्रचार नहीं था। ये सीधी-सादी कहानियाँ थीं—मानव मनकी, मनुष्यके दुःख-सुखकी, उसके सपनों, उसकी आकाशाओं, सफलताओं-असफलताओंकी।

१९४४ से १९४८ ई० के बीच हमे विल्कुल नये कथाकारोंके नाम-देखनेको मिलते हैं जिन्होने अपनी कहानियों द्वारा कहना चाहा कि कहानियों लिखनेका कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य होना चाहिए—वह प्रयोजन चाहे प्रचार ही क्यों न हो। इन लेखकोंने अपनी कहानियों और रिंगोंताजो द्वारा प्रचार किया भी—युद्धके विरुद्ध, फासिस्ट शक्तियोंके विरुद्ध, साम्राज्यवाद के विरुद्ध। ये कहानियों नारोकी तरह उभरीं और नारोकी ही तरह शात हो गईं। तिसपर भी इन कहानीकारोंकी जो कहानियों प्रचार और नारोसे मुक्त है वे पढ़नेमें सचमुच आनंद देती हैं। इस कालके प्रमुख कथाकार हैं—भैरवप्रसाद गुप्त, अमृत राय, रागेय राघव, हसराज ‘रहबर’, गगा-प्रसाद मिश्र, तेजवहादुर चौधरी, प्रभाकर माच्चवे, देवेन्द्र सत्यार्थी, मन्मथ-नाथ गुप्त, अविनाश चड्ड, शमशेरवहादुर सिंह, गिरीश अस्थाना, ‘युगल’, ‘ब्रह्मा’ और कृष्णचंद्र शर्मा ‘भिक्षू’।

१९४८ से १९५२ ई० के बीच इन पुराने नामोंके साथ-साथ हमें फिर कुछ नये नाम दीखते हैं। ये नाम हैं धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती, राम कुमार, राय आनंदकृष्ण, ओकार शरद, जीवन नायक, ‘शची’, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, मिसला मिश्र, ‘विपुला देवी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चद्रकात, राजेन्द्र यादव, परदेशी, मोहन राकेश, जयसिंह, राधाकृष्ण प्रसाद, केशवगोपाल निगम, जनार्दन मुक्तिदूत, सत्येन्द्र शरत्, नित्यानंद वात्स्यायन, चद्रा आलक, लीला अवस्थी, कृष्णनदन सिनहा और श्रीनरेशके। इन कथाकारोंमें से कुछकी चुनी हुईं कहानियों प्रस्तुत संग्रहमें सकलित हैं। ये कहानियों कैसी हैं, यह निर्णय पाठक स्वयं ही करेगे। सम्भव है कई कहानियोंको वे पहले किसी पत्र या पत्रिकामें पढ़ भी चुके हों।

१९५२ ई० से हिन्दी कहानीने जो उठान ली है वह सन्तोपजनक तो है ही, साथ ही भविष्यके लिए बड़ी आशाएँ भी वैधवाती हैं। नई पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनके कारण इधर कहानियों धड़ल्लेसे छुप रही हैं।

यह प्रसन्नताका विषय है कि कहानीकार डटकर लिख भी रहे हैं और अच्छा लिख रहे हैं। १९५२ या उसके निकटसे लिखना प्रारम्भ करनेवालोंमें प्रमुख है—शिवप्रसाद सिह, मनोहरश्याम जोशी, अमरकान्त, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ऑकारनाथ श्रीवास्तव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ 'रेणु', विद्वासागर नौटियाल, शेखर जोशी, जितेन्द्र, 'दिवाकर', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, केशवप्रसाद मिश्र, कुलभूषण, रघुवीर सहाय, हरिशङ्कर परसाई, अनन्तकुमार 'पाषाण', नन्दकुमार पाठक, प्रमोद वर्मा, वीरेन्द्रकृष्ण माथुर, कृष्णबलदेव वैट, रामदरस मिश्र, सतीश सरकार, देवेन्द्र इस्सर, 'सत्य', 'कल्पना', कुमारी उषा, मन्तू भण्डारी, इटिर 'नूपुर', अजितकुमार और आनन्दप्रकाश जैन। इन कथाकारोंके साथ ही पुराने खेबेके कथाकार भी (जिन्होंने लिखना बन्द नहीं किया है) अपनी सुन्दर रचनाओंसे हिन्दी कथा-साहित्यको समृद्ध बना रहे हैं। सद्यःप्रकाशित कथा-संकलन 'कहानियों १९५५' या 'कहानी' मासिकके जनवरी, ५५ के विशेषाङ्कको देख सहज ही कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानीमें कोई गत्यवरोध नहीं आया है। उसका भविष्य निःसन्देह उज्ज्वल है।

X

X

X

१९४८ से १९५२ ई० तककी बारह चुनी हुई कहानियोंका यह संकलन आपके हाथोंमें है। यही काल इसलिए चुना गया है कि यह कहानी-पाठकके निकटतम भी है, और तटस्थतासे देख सकनेके लिए जो दूरी आवश्यक है वह भी इसके और संकलन-कर्त्ताके बीचमें है। संकलनमें बारहसे अधिक कहानियों भी हो सकती थीं, परन्तु बहुत आग्रहपर भी अनेक कहानीकार बन्धुओंसे उनकी अनुमति और परिचय न प्राप्त हो सके; और मुझे विवरण हो उनकी कहानियोंका मोह छोड़ना पड़ा। उन पाठकोंसे ज्ञान चाहूँगा जो अपने प्रिय कथाकारका नाम इसमें न देख निराश होगे। पाठक-गण और कहानीकार बन्धु जो भी सुझाव देंगे, पुस्तकके अगले सस्करणमें यथाशक्ति

उन सुभाओंका आदरकर सकलनको सुधारनेकी चेष्टा करूँगा—मैं यह विश्वास भी दिलाना चाहता हूँ ।

‘ सग्रहमे एक कमी रह गई है जो स्वयं मुझे खटक रही है । वह है—हास्य-रसकी कहानीकी अनुपस्थिति । किन्तु बहुत खोजनेपर भी मुझे इस कालमे प्रकाशित हास्य रसकी कोई अच्छी कहानी नहीं मिल सकी । यदि पाठक कोई कहानी सुझा सके तो उनका आभार मानूँगा ।

X

X

X

अन्त मे एक बात और कहना चाहूँगा ।

वह यह कि यह सकलन बहुत देरसे—लगभग चार वर्ष बाद—प्रकाशित हो रहा है । इस वर्ष तो १९५२ से १९५६ ई० की प्रतिनिधि कहानियोंका सकलन प्रकाशित हो जाना चाहिए, परन्तु बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनमे हमारा आपका कोई वश नहीं होता । समझ लीजिए, इस सकलनका प्रकाशन भी ऐसी ही एक बात थी । सकलन छप रहा है—मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता इसी बात की है । यदि यह संकलन और इसके उद्देश्य मे निहित शुभको पसन्द किया गया तो शीघ्र ही मैं १९५२-५६ और १९४१-४४, १९४४-४८ की प्रतिनिधि कहानियोंके संकलन भी आपकी सेवामे उपस्थित करूँगा ।

X

X

X

कहानीकारोंका परिचय लिखनेमे मुझे भाई मनोहरश्याम जोशीसे बड़ी सहायता मिली है । उन्हे धन्यवाद दूँगा तो वे बुरा मानेंगे ।

## विषय-क्रम

कहानी	कहानीकार	पृष्ठ
एक दिन	कृष्णा सोबती	२०
हुस्ना बीबी	रामकुमार	३७
माधवी और कर्णिकार	राय आनंदकृष्ण	६६
आनंद	कृष्णकिशोर श्रीवास्तव	७२
दो हाथ	जीवन नायक	८४
तीन खत	मिसला मिश्र	९५
फुलबरिया	राधाकृष्ण प्रसाद	११८
कमला मर गई	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	१२७
खेल-खिलौने	राजेन्द्र यादव	१४८
अवरोध	परदेशी	१७७
वासनाकी छायामे	मोहन राकेश	१९३
हमपेशा	सत्येन्द्र शरत्	२०५

नये चित्र

•



## कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबतीका जन्म पजावके एक सम्बन्ध परिवारमें हुआ। बचपन चनावके किनारे सुन्दरसे गाँवमें बीता और शिक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौरमें हुई।

कृष्णा सोबतीके व्यक्तित्व ओर साहित्यके दो प्रधान गुण हैं—जिजासा और सवेदना। जिजासाने उन्हें अपने पात्रोंके मनमें गहरे पैठनेकी प्रेरणा दी है, और सवेदनाने उन पात्रोंके अन्तरतमकी भावनाओंका वास्तविक, मानवीय और मर्मस्पर्शों निरूपण करनेकी क्षमता दी है। आपकी कहानियाँ पाठकों फ़्लके समान मृदुल और छन्दमय जगत्में ले जाती हैं, जो एकदम छुईसुई होते हुए भी किसी अजात और अद्भुत विधानसे सन्तुलित है। कथानक चाहे आधुनिक शहरके उच्च मध्यवर्गीय जीवनसे उठाया गया हो, चाहे पजावके सुदूर गाँवके, उसके चित्रीकरणमें वही साढ़ी, वही कस्तुरा और वही गीतिमयता प्रकट होती है। सोबतीजी की प्रत्येक रचनामें एक मन्थर सङ्गीतकी अनुरङ्ग विद्यमान है, जिसका आविर्भाव मानवीय भावनाओंके अन्तर्द्वन्द्वसे होता है।

आप बहुत कम लिखती हैं, लेकिन जो कुछ भी लिखा है प्रयम श्रेणीका है। ‘सिक्का बदल गया’, ‘दो बूँद आँसू’, ‘बदली वरस गई’, ‘नया दिन’, ‘टादी अम्मा’, ‘बादलोंके घेरे’, ‘डारसे त्रिलूटी’ आदि कहानियाँ हमारे कण-साहित्यकी निधि हैं।

## • एक दिन

--दृग्रणा सोवती

इस घरपरसे होकर सटियों गुजर गईं, गर्मियों आईं, फिर सटियों,— वहार और फिर गर्मियों। सावन शुरू हो गया था। काले-कजरारे मेघोंकी आपसमे होड़ होती, बल ग्याती चिजली चमकती और छम, छम, छम.. वरखासे धरती भीग जाती। जाने कहोंसे बादल घिरते, कहोंपर छाते, और कहोंपर वरस जाते।

दो दिनसे धूप नहीं निकली। दिन भर आकाश घिरा रहता, और रातको चॉट-तारोंके बिना दुनिया अन्धी हो गई लगती। आज शामको धर्मपाल कामसे लौटे तो चिन्तित दीख रहे थे। कुर्सीपर बैठते हुए श्यामासे गम्भीर स्वरमे बोले—“श्यामा, जगदीशका तार आया है। चीमार अधिक है. . .”

श्यामाका जी धक्से रह गया। “है भी तो अकेला, तुम्हे भेजनेको लिखा है।” यह सुनकर श्यामा एक हाथसे साड़ीका छोर पकड़े रही और दूसरेमे तार। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और फिर कुछ सोचा कि कोन उसके पास बैठा है? भाई नहीं, बहिन नहीं, माँ नहीं—और माँपर बिचार रुकते ही आँखे भर आईं। इतनी देर हो गई उसे ससुराल आये पर भाईके सिवाय और कौन है जिसको उसकी खोज-खबर भी हो। अपने घरमे वह दुःखी नहीं पर अपना सुख सुनाये किसे? आँखू टप्प्य निकल पडे।

“इधर आओ श्यामा, घबराओ मत। कोई ज्यादा फ़िक्रकी बात नहीं होगी, अकेला है...” श्यामा पतिके पास जाकर और भी जोरसे रो दी। जैसे कहना चाहती हो, भाईका घार तुम नहीं समझते, मायकेमें और कोई नहीं.. . .

रात तो किसी भी तरह कटनेमें नहीं आती। धर्मपाल बोले, “श्यामा, कल नन्दूको साथ लेकर जगदीशको देख आओ। सफर लम्बा है, साथ किसीका होना जरूरी ही है।”

श्यामाको सहारा मिला। लेकिन नारीकी नमस्या क्या इतनी सहल है? एकदम सोचा—पतिको अकेला छोड़ जायगी? अकेला... नहीं। शीला, वह डस घरसे बाहर तो नहीं। पर पतिको तो उसने उस ओर मुँह करते भी नहीं देखा। पर, ‘पर’पर वह अटक जाती है। क्या वह पतिको पहचानती नहीं? ब्याह हुए कितनी देर हो गई है लेकिन कभी उसने अपनेको अलग नहीं पाया। कभी-कभी तो जैसे वह खीभ भी उठती है.. लेकिन उस खीभमें खिचाव कहाँ होता है। यहीं तो वह विवश है, बेवस है। असहाय-सा समझ अपनेको श्यामाने पतिकी बाहोमें डाल दिया और एक बार फिर भाईकी बीमारीकी बाढ़ करके रो पड़ी।

दूसरे दिन सुबहसे दुपहर तक वह व्यन्त रही। कपड़े सहेजे, पतिके कपड़ोंको अलग छूँटा, उसके जानेके बाढ़ उन्हे टिक्कत न हो, नौकर-चाकरोंको हिंदायते टीं। रख्खोंको वहूंके भाईकी फिकर न हो, ऐसी ब्रात नहीं। पर कुछ दिन तो आराम वह भी चाहती है। कृत्रिम स्नेह जताकर बोली—“वहूंजी, कुछ देर लेट जाओ। लम्बा सफर तय करना है।”

श्यामा लेट गई। सोचा, गृहस्थीके लम्बे-चौड़े धन्वे हैं। अभी तो कोई बाल-बच्चा नहीं, फिर भी सुबहसे काममें लगी हूँ। जरा आँख लगी ही थी कि चौककर उठ चैठी। रख्खो अपनी कर्कश आवाजमें कह रही थी : “आइये जी, आइये जी”

श्यामाको महरीके आनेका सशय-सा हुआ। पर यह क्या? सामने तो शीला खड़ी थी। उसे देखकर खिल तो नहीं पाई। हैरान-सी रह गई, पर शिष्ठाचार। खड़ी होकर बोली—“आइए न, आइए।” और फिर पास पड़े सोफेकी ओर इशारा करते हुए कह उठी—“बैठिए।”

शीला बैठी तो जर्र लेकिन उस शिष्टाचारमें रखाईकी मात्रा जाननेमें देर नहीं लगी। हाथके सकेतसे महरी और रक्खोको बाहर बैठे रहनेको कहा। नौकर-चाकरोको ऐसे मौकोमें मजा आता है पर इनसे ज्यादा ढील अच्छी नहीं।

रक्खो और महरी बाहर चली गई लेकिन मर्जीसे नहीं। महरी तो जर्र अपना हक अधिक समझती है, पर शीला कम सथानी नहीं। क्या वह श्यामाके सामने महरीको अपना सगा जतायगी? श्यामाके चेहरेपर जरा सकोच और छिपी पड़ी खिन्नताका-सा भाव देखकर शीला बोली, “बहिन, नन्दूने बताया है कि वीरकी तबीयत अच्छी नहीं? क्या पहले कोई खत आया था?”

श्यामाने शीलाकी धॉखोको पढ़ सकनेका प्रयत्न करते हुए कहा, “नहीं, कल ही तार आया है। पता नहीं कैसा है? कोई पास भी है या नहीं! ..”

“बहिन, बवराना मत”, कहते-कहते शीलाके बोल भारी-से हो गये, “रास्तेमें जरा एहतियात ही बरतना। नन्दू साथ ठीक रहेगा!” फिर बाहोमें पड़ी देर-सी चूडियोंकी ओर दृष्टि डालकर कहा—“सेभाल ही रखना जेवरोकी बाहे ढकी ही अच्छी है। आजकल लोगोंका कुछ पता नहीं!”

श्यामाको यह सलाह कैसी लगी शीलाने नहीं जाना। उसे जानकर करना भी क्या है? श्यामाकी नजर न जाने क्यों घड़ीकी ओर गई—धर्मपालके आनेका समय हो गया। क्या शीला नहीं जानती? मगर श्यामा कहे किस बहाने? ‘यह तो उसे अपने-आप ही समझना चाहिए। पर यह क्या? उसे क्या पतिसे परदा करना है? फिर भी पता नहीं क्यों, वह नहीं चाहती कि शीलाके बैठे वे यहाँ आये। बाहरसे जूतोंकी आहट आई। श्यामा चौकन्नी हुई। शीलाने सिरका दुपट्ठा ठीक किया। और परदा उठाकर धर्मपाल अन्दर आ गये। आये और देखकर ठिठक गये।

श्यामाके तेवर उभर आये और शीलाकी ऊपर उठी हुई नजर जैसे धक्का खाकर नीचे उतर गई हो । धर्मपालके रुके हुए पैर जब वापिस लौटने लगे तो श्यामा सँभली । कुछ खीझसे, कुछ चिढ़कर बोली—“आओ न, बैठो न जी ।”

धर्मपालने पत्नीकी ओर बिना देखे कुसीं खीची और बैठ गये । पर सामनेकी ओर नजर नहीं उठ सकी । आज शीला यहाँ कैसे ? अपनेपर जैसे गुस्सा-सा आया । वह बाहर महरी और रक्खोको देखकर दूसरे कमरेमें जा सकते थे । पर,

“गाड़ीका सब ठीक-ठाक हो गया है न ?” श्यामाने कुछ छिलती हुई आवाज़में पूछा ।

“हॉ हॉ, सीट बुक हो गई है ।” कहकर धर्मपालको मानो स्वयं अपनी आवाज अच्छी नहीं लगी । लगा, जैसे उन्हे कुछ असुविधा-सी हो रही है ।

बाहर रक्खो और महरी एक दूसरेकी ओरसेमें देख रही हैं, जैसे कुछ होनेवाला है । जमाईको देखकर महरीने विजयकी दृष्टिसे रक्खोकी ओर देखा था । जाने क्यों ?

शीलाकी ओरसे नीचे देख रही है और हाथ अशक्तसे होकर जैसे गोटीमें गिर पड़े हैं । उठ जाय, पर पॉव जैसे चल नहीं पायेगे । लेकिन क्या उसका यहाँ बैठना ठीक है ?... वही कमरा है । वही परदे हैं... वही फर्श है और खुली आलमारीमें पड़े तरतीववार वही पतिके कपड़े... पर वह और उसके पति ? वह नहीं । शीलाका दिल ऐसा हुआ जैसे किसीने छलकते पानीको निर्दयतासे ढॉप दिया हो । किसी तरह शुष्क होते जा रहे गलेसे आवाज निकालकर बोली, “चाची महरी !”

यह स्वर बाहर तो नहीं पहुँच सकता । श्यामाको दिलमें शायद हँसी आ गई थी । शीलापर अहसान-सा करते हुए पुकारा, “रक्खो, महरीको अन्दर भेजो ।” और श्यामाके बुलते ही शीला अपनेको झकझोरकर उठ

पड़ी। दुपट्टा एक तरफ से बहुत नीचा हो गया था, जैसे अपनी मुध न रही हो। पर नहीं, चाल वैसी ही जमी हुई थी।

महरी अन्दर आई। देखा, बच्ची उठकर दरवाजे तक आ गई थी और साथ-साथ श्यामा भी। “अच्छा जी”—श्यामाने जरा-सा मुस्कराकर हाथ जोड़े, जैसे किसी पराजिताको देख रही हो।

शीलाने उत्तर दिया और सहज कण्ठ से बोली—“अच्छा, अपना ख्याल रखना और बीरकी सेहतका पता देना।” और बाहर निकल गई।

पीछे से महरीने दुपट्टे का फर्श पर पड़ता छोर पकड़ लिया और पहली सीढ़ी उत्तरते ही उसने बच्ची को कन्धों से पकड़कर सहारा दिया। अब तक सब कुछ समझ गई थी। जमाई कुछ बात करते तो क्या दृष्टि इतनी जलदी फिरा लेते।

और धर्मपाल शीला की ओर नहीं देख सके, नहीं देख सके। आँखें जैसे एक बार भूली हुई तस्वीर को देखना चाहती थी, पर जब शीला उठकर श्यामा के साथ-साथ चल दी थी तो उन्होंने सिर ऊँचा किया और एकदम ऐसा लगा जैसे शीला पहले से लम्बी हो गई थी—लम्बी! नहीं, उसका भरा-भरा बदन दुबला हो गया था। तिल्लेटार जटी को रेशमी सलवार नीचे तक छू रही थी—और फर्श पर पड़ते हुए शीला के पैरों को देखकर उन्होंने सोचा कि उनमें एक जिमीदारा अन्दाज था जो अब जा सहकर भी शान से आगे बढ़ता जा रहा था।

नीचे—नीचे, दिल के बहुत नीचे किसी परदे से उठकर वह दिन धर्मपाल की आँखों में उत्तर आया जब इसी तरह शीला को तैयार खड़े देख उन्होंने अचानक उसे खीचकर अधीरता से बाहों में भर लिया था। उसकी आँखें बन्द थीं और उनकी खुली, जैसे नारी की मूँछित सी पड़ी सुन्दरता कह रही हो—लो देख लो।

श्यामा वापिस आकर पति के निकट खड़ी हो गई। एक बार परीक्षा की नज़रों से पति की ओर देखा—तब तक धर्मपाल सिगरेट जला चुके थे।

## एक दिन

सिगरेट के फैलते से धुएँने मानो उनके चेहरेकी असीझी देखा आँकी ठक लिया। श्यामाने कटाक्ष किया—“आज तो जमानोंके बोढ़-घरकी बड़ी वहू को देखा है जी! क्या उससे डर गये थे? एक बात ही कर लेते बेचारीके साथ!”

धर्मपालने धुआँ छोड़ते हुए सोचा—उससे क्या डरता? डरानेको क्या तुम कम थी? प्रत्यक्ष जरा हँसकर बोले—“मुझे क्या बात करनी थी? बात तो वह तुमसे करने आई थी?”

“जगदीशका हाल पूछ रही थी और कहती थी वहाँ जाकर उसका पता देना।”

शीलसे यह सुनकर पता नहीं धर्मपालको जीमें कैसा लगा, पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। बातको बढ़ाकर बोले—“सामान सब बौद्ध लिया है न?”

“हाँ, सब तैयार है।”

श्यामा पतिके विषय-परिवर्तनका अर्थ नहीं समझी। धर्मपालने कलाई पर बैधी बड़ीकी ओर देखा और व्यस्त होकर कहा—“और जो कुछ करना है कर डालो। समय अधिक नहीं।”

श्यामाने कुछ अनोखेसे ढगसे जवाब दिया—“सब टीक कर लिया है। तुम्हारे सब कपडे इस ओर बाली अलमारीमें रख दिये हैं। किसी गर्म कपडेकी जरूरत होगी तो उस बड़े बक्समेंसे निकलवा लेना।”

श्यामा एक क्षण चुप रही और कुछ अन्दर-ही-अन्दर छिपा लेनेके प्रथलमें चूडियोंको बार-बार हिलाते हुए रो पड़ो। टप-टप-टप! धर्मपालने देखा कि ऐसे आँसू एक बार पहले भी किसीके आँखोंसे बहे थे। क्यों आज उसे किन्हीं और आँखोंकी याद आ रही है? उठकर कन्धोंसे पकड़ कर कहा—“श्यामा, पागल हो गई हो क्या? जल्दी लोट आओगी।” फिर लाडसे थपथपाकर कहा—“इतना लोट दिल है?”

श्यामा पतिकी गोदीमें मुँह छिपाकर रो दी। धर्मपाल उन रेशमी-रेशमीसे बालोंको चूमता चाहते हुए भी मूँधकर रह गये। उन्हे लगा कि

उनकी मुगान्धि बहुत तेज थी, और उस तेजीका आभास उन्हें आज कितनी देरके बाद हुआ।

X

X

X

कल वाटल फटे थे आज फिर धिर आये। वाटलोंके परदोंके परदे आसमान पर चढ़े आ रहे थे। दुपहरकी कडकडाती सफेदी न जाने कहाँ खो गई थी। कभी हल्की-फुल्की हवाएँ भूमते-भामते पेड़ोंको चूमकर परदोंको हिला जाती। शीला सोफेपर अधलेटी थी। महरीने परदे उठा दिये थे। ओर फर्शपर बैठी-बैठी उलझी हुई ऊनको सुलझा रही थी। उस दिन ऊपरसे आकर बच्ची निढाल-सी होकर विस्तरपर लेट गई थी, और घण्टों रोती रही थी। चाचीने चुप करानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। सिर्फ पास बैठी बच्चीके सिरपर हाथ फेरती रही। और उस दिनसे बच्ची अनमनी-सी लग रही है। आज सुबह चाची बोली—“बच्ची, यह ऊन पड़ी हुई है। कुछ शुरू कर लो न। सरदियों आ रही है। जरा जी भी लगा रहता है।”

“हूँ”, कर बच्ची चुप रह गई। गद्दियोंके सहारे बैठी थी। सिरपर कपड़ा नहीं था। गहरे नीले रंगके कपड़ोंमें चेहरेका रग और भी धुल हुआ लगता था। बैठी-बैठी सोच रही थी—श्यामा कैसे व्यगसे मुसकराई थी। जैसे कह रही हो—तुम्हारा बडापन आज कितना छोटा हो गया है। और वह अन्दर आकर ऐसे ठिक गये थे, जैसे कोई गलत जगह आ गया हो। आदमी कितने वेदर्द होते हैं। बात नहीं, तो क्या आँख उठाकर देख नहीं सकते थे? लेकिन क्यों वह चाहती है कि पति उसे एक बार देखते तो—एक बार—वह दयाकी भूखी है कि तरस खाकर पति उसपर इतनी-सी मेहरबानी करे! ..

अपनी बैबसी, पतिकी निर्दयता और सौतकी वह उपहासजनक हँसी आँखोंमें उत्तर आई और अपने हाथोंको आँखोंपर रखकर शीला सिसकने लगी। महरीका हाथ रुक गया। वह जानती है कि जो दिल पतिको देखे

विना दो सालसे चुपचाप जब्त पड़ा था, उसे निर्मांही पतिकी एक छाया धकेलकर नीचे बहाये लिये जा रही है। बच्चीके हाथोंको आँखोंसे अलग करके बोली—“मौं बलिहारी जाय, रोये तुम्हारे दुश्मन।” फिर फट क्रोध-भरे लहजेमें बोली—“हाय, हाय, अबल मेरी ही मारी जाती है, कपड़े भी निकाले तो यह ? अच्छी, भली जानती हूँ जब-जब यह पहनती हो, दिन अच्छा नहीं गुजरता फिर भी सुबह यह ले आई। बुढ़िया होनेको आई, पर समझ नहीं।” कहते-कहते उठ खड़ी हुई।

शीलने सब समझा। जबसे होश सम्भाला है वह महरीके हाथों पली है। लड़-चाव, जिट—सब करती रही है। आज महरीको अपनेको फट-कारते सुनकर जाने कैसा लगा। कैसे वह उसे दिलासा देती रही है। किसी-न-किसी वहाने जी लगाती रही है। एक पलको अलग नहीं छोड़ती। महरीकी कृतज्ञतासे जी भर आया। वह साथ न होती तो अब तक वह इस चार-दीवारीमें जीवित रहती ?

महरी बापिस लंटी और शीलको हाथसे उटाते हुए बोली—“उठो, बच्ची, मैं सटके जाऊँ। कपड़े बदल डालो। बच्ची, मुझपर गुस्सा न किया करो। सिर सफेद हो गया है, अब क्या अबल ठिकाने रहेगी ?” फिर महरी बच्चीको कपड़े बदलवाने ले गई। क्या बच्ची नहीं समझती ? आज चाच्ची चाहती है कि शील उसपर गुस्सा करे, जितना करे वह बुरा न मनायगी पर जिस अधिकारहीन आँचलमें वह अपने आँसू बहाये जा रही है, वहों उन्हे भेल लेनेवाला कौन है ?

विना विरोध किये शीलने कपड़े बदल डाले। यह सूट कभी उसे कितना पसन्द था। पर आज उसकी पसन्टमें जान ही कहाँ है ? महरीने हाथमें लिये दुपट्टेको चूमकर बच्चीके हाथोंपर डाल दिया। वह कितनी घृण्णत हो, कितनी अस्वस्थ हो, इन छोटी-छोटी घातोंको नहीं गूलती। बच्चीने आगे दुङ्घा डाला और पिर कुछ सोचकर बोली—“चाच्ची, मैंऊँगी।”

चाच्चीने पलंगपर तकिये लगा दिये और बोली—“ठीक है बच्ची । कुछ देर आराम कर लो । कैसा वरसाती दिन है । .” कुछ कहते-कहते रुक गई ।

बच्ची लेट गई थी । चाच्ची कहने लगी थी वरसातमे बेरियो पर डाले हुए झलोकी बात, पर झट ख्याल आ गया कि सुनकर बच्ची कही और-और ख्याल ढौड़ाती रहेगी । चुप ही रहे तो अच्छा ।

बच्ची लेटी हुई थी और चाच्ची पास बैठी धीरे-धीरे बच्चीके हाथ सहला रही थी । बच्चीको ऐसे पड़े देखकर चाच्चीने ममताभरे लाडले स्वरमें पूछा—“बच्ची, क्यों क्या बात है ? बोलो मेरी बच्ची !”

शीला क्या बोले ? पर इस स्वरकी अवज्ञा वह नहीं कर पायगी । चाच्चीका हाथ पकड़कर बोली—“चाच्ची, जी अच्छा नहीं ।”

“यह क्या मैं नहीं जानती, मेरी बच्ची ?” चाच्चीका मातृत्व जैसे अन्दर-ही-अन्दर चौल्कार कर उठा । जी अच्छा रह ही कैसे सकता है ? यह उमर और यह दुःख ! जी हुआ कि वह भी बच्चीके साथ मिलकर रो दे, पर कितनी पागल है वह ? बच्चीको थपथपाते हुए बोली—“सो जाओ, बच्ची, तवियत हल्की हो जायगी ।”

ऊपर घरकी विस्मृता बहूके पति कुर्सीपर पड़े-पड़े न जाने क्या-क्या सोच रहे थे । आज धर्मपाल कामसे जल्दी आ गये थे । जानते थे कि श्यामा नहीं है । पर अधिक देर टफ्टर नहीं बैठ सके । श्यामाको गये अभी तीन-चार दिन ही तो हुए हैं । कल तार आया था—जगदीशको निमोनिया हो गया है । अकेले छोड़नेवाली हालत नहीं । कमरे कैसे रने लगने हैं ? और आज दोपहरको धर्मगाल ठीकसे खाना नहीं खा सके । पत्नीसे उदास होकर न खाया हो, ऐसी बात तो नहीं । किर भी नारीकी

सन्दिग्ध छाया जैसे आगे पढ़े खाने पर बुद्धिमत्तासे छाई रहती है। अभी-अभी जब सोचेके लिए नौकर उन्हे कपडे दे रहा था तो वह सोच रहे थे, ये जरा-जरासे काम औरतोके हाथोसे कितने अच्छे लगते हैं।

बाहर पानी तेज हो गया था। बाटलोकी गर्जना और विजलीकी कडकडाहट जैसे कानोंको चौकाये जा रही थी। धर्मपालने हाथका सिगरेट नीचे फेका और उठकर पलग पर जा लेटे। सोचा, आदमीकी दिन-चर्यामि भी औरतका कितना बड़ा हिस्सा है, और श्यामा.... उसने तो जैसे उन्हे अपनी बाहोसे बाँध डाला है। जाती बार कैसी रो रही थी। झट व्यान आया, उस दिन शीलासे कैसे अचानक मिलना हो गया ? पर—पर धर्मपाल नहीं चाहते कि वे इस ब्रातको सोचें। उन्हे जैसे अपने हाथोसे किये किसी अन्यायकी याट आ जाती है। और अब तकियेपर सिर रखने ही आज ढाई सालके बाट पहली बार ख्याल आया कि शीलासे क्यों डृतनी दूर हो गये। वह विचारी तो जानती तक न थी। और फिर श्यामाको ले आनेपर कोई बखेड़ा नहीं उठाया, कोई झगड़ा नहीं किया और वे ? उन्होंने एक बार उसे देखा तक नहीं ? कैसे रहती है, कहों रहती है ? इस अंसंमें एक बार रूपया तक नहीं मँगवा भेजा। शायद शाहजीके वहाँसे आता होगा—ओर अबतक शाहजी अपनी बेटीको ले नहीं गये। ख्याल आया, शीलाको विदा करते शाहजीने उनका माथा चूम-चूमकर कहा था—“वेदा ! इसने तुम्हारा लड़ पकड़ा है, इसे निभाना !” कैसा निभाया है उन्होंने .. ? धर्मपालने करवट ली। क्या वह श्यामासे कम सुन्दर थी ? पर वस्त्रईमें न जाने उन्हे क्या हो गया था ? उन्हे लगा जैसे वे ब्रदल रहे हैं। सोचा, क्या श्यामाका अभाव तो नहीं ? नहीं, नहीं शीलाकी वह दुबली देह जैसे चीखकर कह रही थी। दिमागमे जैसे हलचल-सी हो गई। अब वे नहीं लेट सकेंगे।

धर्मपाल उठकर खड़े हुए। ढीला कोट पहना और सीदियासे नीचे उतर चले। एक क्षण सकोचने मानो पैर जकड़ दिये। पर यह तूफान !

क्या यह रुक सकेगा ? क्या कहेगे शीलासे ? नहीं, कुछ नहीं । कहनेकी जरूरत नहीं होगी ।

नीचे आँगनमें आकर देखा, कोई नौकर-चाकर नहीं था । आँगन पार किया । परदे नीचे पडे थे । परदा उठाया तो सामने फर्शपर महरी बैठी कपड़ोंकी तह लगा रही थी । बच्ची सो गई थी । इसलिए टवे पॉवो बाहर आकर वह काम-धन्धेमें लगी थी । जमाईको देखते ही आँखें ऊपर नहीं उठीं । मानो कहती हो—रिश्ता ऐसा है, क्या कहूँ ? पर तुम यहाँ कैसे ? .. धर्मपाल भी महरीकी ओर ठीकसे देख नहीं पाये । दबी-सी आवाजमें बोले—“महरी !..” शायद कुछ पूछना चाहते थे, पर महरी हाथके कपडे हाथमें लिये, बिना कुछ कहे-सुने बाहर चली गई ।

धर्मपाल एक क्षण परदेको पकडे खड़े रहे । तोचा, न जाने शीला क्या कर रही होगी । कोई आहट तक नहीं आ रही । अन्दर पहुँचे । सोफा खाली था । सामने पलगपर सिमटी-सिकुड़ी-सी शीला सोई पडी थी । सिरपर बॉह रखी थी । पास एक ओर महीन ढुपड़ा पड़ा था । जैसे भारी लगनेपर उतार दिया गया हो । मुँहपर बिजलीकी रोशनी पड़ रही थी । वही चेहरा है, वही बाहे और गोरे स्वच्छ पॉव । शीला । मगर नहीं, यह आवाज गलेसे नहीं, उनके दिलसे निकली थी और वहीं फैल गई थी । शीला । शीला बेखबर पडी थी । सोच सोचकर इतनी थक गई थी कि बन्द पलकोंके अन्दर कोई स्वप्न भी नहीं देख पाई ।

धर्मपाल पास आकर खड़े हो गये । क्या यह उचित है ? जैसे किसीने चेता दिया हो । नहीं, धर्मपाल आगे बढ़े—सिरपर रखी बॉहका स्पर्श किया । हल्केसे उसे पकड़ अपने सशक्त हाथोंकी उँगलियों शीलाके बालोंमें डुबो दी ।

सिरपर पड़ते हुए दबावसे शीला चौक गई । सोचा, चाची है । आँखें खोलीं—और खुली रह गईं । विश्वास नहीं आया, शायद वह स्वप्न देख

रही है। उसका हाथ पतिके हाथमें है और वह किसी निर्जीव पत्थरकी तरह पड़ी है। धर्मपालने भक्तोंरते हुए कॉप्टी आवाजमें कहा—“शीला !”

आवाज शीलाको हिला गई। पतिके उदास-मलिन मुखकी ओर शिकायत-भरी नजरोंसे झुके-झुके देखा और विवश होकर रो पड़ी।

“शीला !.”

शीला रोये जा रही थी। लेकिन ऑँगूकी बूँदे सिरहानेपर नहीं पतिके वक्षपर पड़ रही थी। बाहर बाढ़ल बरसे जा रहे थे और धरती भीग रही थी, और भीगी धरतीके वक्षमें एक आलोड़न उठ रहा था—शायद निमाणीकी प्यास ही

X

X

X

वह रात कितनी गीली थी, कितनी गहरी थी। गर्जते हुए बाढ़लोंका निनाद सुनकर भी विजली चमकती जा रही थी। एक महीन-सी रेखा किस गतिसे कजरारे बाढ़लोंको उन्मत्त किये जा रही थी। और पतिकी गोदमें पड़ी कलतककी वेवस और दुर्बल नारी आज रोकर भी हँसती जा रही थी। और धर्मपाल पत्नीको हौलेसे पुकार भर लेनेके सिवाय और कुछ नहीं कह सके। शीला ! शीला !—और इस नामसे वह सब जुड गया जो दो साल पहले किसी अनिश्चित कालके लिए टूट गया था, चिछुड़ गया था। लेकिन क्या सचमुच ही सज्जाका इतना मूल्य है ? देहसे अलग, देहसे भिन्न कौन-सी सज्जा होती है जो ऐसी रातमें किसी ऑँखोंमें नाच जाती है ? क्या दोनों इस बातको नहीं जानते ? इतने अनजान नहीं वे। फिर भी किन्हीं दो भटके हुए पुराने साथियोंकी तरह एक-दूसरेको थामें हुए वे सोच रहे हैं कि हमेशा नहीं तो आज तो कम-से-कम इस तूफानी रातमें वे इकट्ठे हैं। सिरपर भयानक तूफानी रात थी। लेकिन स्वयं उनमें अधीरता नहीं थी, जीवनका उप्पन रक्त था जो स्थिर गतिसे बहत

जा रहा था और बहकर उस चिरन्तन व्यासको बुझा रहा था जो हाड़-मासके साथ उसमें जागी थी।

रात कैसे आई और कैसे बीत गई? शायद बहुत लम्बी थी। शायद बहुत छोटी थी। शीला नहीं जानती कि रात कैसे कट गई, धर्मपाल नहो जानते रात कैसे कट गई। लेकिन नारीके अन्तरके नीचे—सबसे नीचे—पड़ी ममता जानती थी कि रात कैसे गुजर गई। सच है कि वह रातको पकड़ नहीं पाई लेकिन वह शून्य नहीं थी। उसमें रस था, उसमें जीवन था, जीवनका अर्थ था। जो आज नहीं तो वर्ष भरके बाद मौकी गोदीमें किलकारियाँ लेगा। और मौका ऑचल उसे ओट किये हुए अन्वेरी रातोंसे, कठोरसे और अपशकुनोंसे बचाता जायगा।

सुबह धर्मपाल जब जगे तो शीला नहा-धोकर तैयार हो गई थी। महरीने बाहरवाले कमरेसे ही बच्चीको चायकी ट्रे पकड़ा दी। नहलाते-नहलाते चाचीने बच्चीसे कहा था—“जल्दी कर लो बच्ची, फिर चायका इन्तजाम करूँ। जमाई तो सुबह-सुबह चायके आदी है।” शीला सलज्ज हँस दी थी। “चाची, तुम्हे फिकर है? किसी नौकरसे कह दो न?” चाचीने भेट-भरी दृष्टिसे बच्चीको देखकर कहा था—“न, न बच्ची। तुम इन नौकर-चाकरोंको नहीं जानती। चाय रखने आयेगे, बीस बाते बनायेगे बाहर जाकर। मैं ही लाऊँगी।” फिर तनिक रुककर उसने कहा था, “बच्ची तुम्हे पकड़ा दूँगी। तुम्हीं अन्दर ले जाना..।” “क्यों-क्यों, चाची? क्या तुम..?” उसने चाचीसे पूछना चाहा था। बीच हीमें चाची बोली, “तुम भोली हो बच्ची। सुबह-सुबह उठकर क्या जमाईको मेरा ही मुँह देखना है?” शीला खुलकर हँस दी थी—“ओह चाची, क्या मैं सोते-जागते तुम्हे नहीं देखती?”... चाचीने कहा था—“वह और बात है बच्ची। तुम नहीं समझती, लाओ जरा पैरोंको मलूँ कितनी खुशकी हो गई है...।” शीला समझ गई थी कि चाची अन्दर जाकर धर्मपालको सङ्कोचमें नहीं डालना चाहती। मन-ही-मन हँसकर वह चाचीके प्रस्तावसे

सहमत हो गई थी। चाचीने ट्रे पकड़ा दी थी और शीलाने उसे मेजपर ला रखा था और पतिके सिरहाने जरा झुक कर धीरेसे पतिके बालोंको छूती हुई मृदु कण्ठसे बोली—“उठना नहीं जी? दिन चढ़ आया।”

धर्मपालने आँखे खोली, शीला विल्कुल पास खड़ी थी। भरकर देखा, कैसी निखरी-सी लगती है! जैसे बीती हुई रात उसे रुलाकर हल्का कर गई थी। खींचकर पास बिठा लिया। आँखोंमें सकोच नहीं, दूरी नहीं। शीला!...शीला लजा गई। बैठे-बैठे चाय बनाकर प्याला हाथमें लिये बोली—“लीजिये न।”

“नहीं, रख दो।” धर्मपाल कह उठे। शीलाने पतिकी ओर देखा। उसमें आहत-सा अभिमान था। प्याला मेजपर रखकर बोली—“क्यों, क्या अभी उठोगे नहीं?” और पतिकी बॉहपर हाथ रख दिया। धर्मपाल कुछ क्षण देखते रहे और फिर आँखोंकी कोरोसे दो बूँदे ढुलक गईं। शीलाने अपने हाथसे आँखे टक दी और दूसरेसे पतिके बाल सहलाते हुए बोली—“सुवह-सुवह यह क्यों? अपनेसे नाराज हो रहे हो?”

“नहीं”, धर्मपाल रुधी-सी आवाजमें बोले—“तुमसे क्या कहूँ शीला? मैं नहीं जानता।”

बीती हुई रातके बाद भी कुछ रहा-सहा मलाल पतिके इन दो आँसुओं से धुल गया। स्वयं ही सोचा, नारी इन बातोंमें कितनी कच्ची होती है? लेकिन इतना पश्चात्ताप काफी नहीं। पतिके बद्दल पर सिर रखकर बोली, “कैसी बातें करते हो? तुमसे आज तक क्या मैंने शिकायत की?”

इसका जवाब धर्मपालने कुछ नहीं दिया। वैसे सोचते थे कि एक उपालम्भ ही दिया होता। पर उसने तो जवाब नहीं माँगा और आज भी तो उस बातको कैसे बचाती जा रही है। जैसे आजके दिनमें वह उन सब बातोंको नहीं मिलाना चाहती।

शीलाने पलभर उत्तर की, नहीं तो कुछ सुननेकी, प्रतीक्षाके बाद

कहा—“उठो, जी ! छोड़ो इस सोचको, आज क्या काम पर नहीं जाओगे ?”

“नहीं !”

“अच्छा !” शीला हँस पड़ी । पुरानी बात याद आ गई । जब वह नई-नई व्याही आई तो पति अक्सर सुबह देर तक सोते रहते । उठनेके लिए कहती तो कहते—शीला, आज काम पर जानेको जी नहीं चाहता । वह शरमाकर मुसकरा देती । शारारतसे कहती—लाला जी तो कुछ नहीं पूछेगे । और धर्मपाल कुछ खीजकर उठ बैठते । और वह मन ही मन मुसकराया करती । जैसे कहती हो—दिनमे तो छोड़ा करो ।

“तो आज भी कामपर नहीं जाओगे ?”

धर्मपालने सिर हिलाया—“नहीं !”

“अच्छा तो नहा-धोकर फिर लेट जाना । कपडे ऊपरसे मँगवा देती हूँ । रक्खे होगे ही ऊपर ।” यह कहकर शीला महरीको बुलाने ही लगी थी कि धर्मपाल बोले—“नहीं उसे मत भेजो, अपने आप जाकर निकाल लाओ ।”

धर्मपालके स्वरमें अनुरोध था । जैसे पत्नीको उसके अधिकारकी याद दिला रहे थे । ऊपर जानेकी अनिच्छा, वह भी श्यामाकी अनुपस्थिति में—पर ‘न’ करनेमें भी शीलाको संकोच-सा हुआ । अनमनी-सी होकर उठी । महरीको बुलाकर कहा—“महरी, उनके कपडे लाने हैं ऊपरसे । चलो तुम्हारे साथ चलती हूँ ।”

चाचीने एक बार बच्चीको खुली दृष्टिसे देखा और जोरा-सा हँसकर बोली—“चलो, बच्ची !” दिलमें कह रही थी—इस कामके लिए नहीं जाऊँगी ।

शीलाने कमरेमें प्रवेश किया । उस दिन भी तो यही सब कुछ था । कितना पराया लगा था । शायद श्यामा इसकी मालकिन लग रही थी ।

और आज ? कपड़ोंकी अलमारी खोलते-खोलते लगा कि दो वर्षके बाद उसे फिर अपना अधिकार मिल गया है । वे दो वर्ष, जो कटनेमें नहीं आते थे, आज कितने छोटे हो गये हैं ! कपड़ोंको तरतीवबार रखनेवाले हाथोंसे आज पहली बार शीलाको ईर्ष्या-सी हुई । और कपड़े निकालकर जब शीला नीचे उतरी तो पोवोमें गति थी, और चालमें घरकी स्वामिनी होनेका रोब था । वोह पर रख्ये कपड़ोंको देखकर महरीने मन ही मन कहा—भगवान् करे, बड़ी-बड़ी उम्र हो बच्ची की और जमाईकी भी । आज क्या वह जमाईको बच्चीसे अलग देख सकती है ?

शीला कपड़े लिये आकर खड़ी हुई तो धर्मपालको लगा कि वे पुराने दिन लौट आये हैं और इस बीचके दो साल इस भूली-सी कड़ीसे निकल कर कहीं अलग होकर अदृश्य हो गये हैं । और वह और शीला, दूर हुआ तार जैसे फिर जुड़ गया है.....



## रामकुमार

अर्थशास्त्रमें एम० ए० कर, आठ महीने शिमलाके एक बैकमें काउण्टरके पीछे बैठ चुकनेके बाद साहित्य, संगीत और चित्रकलाके अनुरागी पञ्चीसवर्षीय रामकुमारने अनुभव किया कि कलासे बचना सम्भव नहीं। अतएव चित्रकलाका अध्ययन करने सन् ५१मे कलाकारोंकी राजधानी पेरिस पहुँचे और फिर आधुनिकताकी खोज कर दो वर्ष बाद स्वदेश लौटे। तबसे चित्रकारी, साहित्य-सेवा, शान्ति-आनंदोलन और देश-विदेश-यात्रा में समय व्यतीत करते रहे हैं। संगीतका चक्रर तो कभीका छूट चुका है; इधर लिखने-लिखानेके प्रति भी वह पहले-सा उत्साह नहीं है। अब तो बस चित्रकारीका ही जोश है। चित्रोंमें जितनी जटिलता है, कहानियोंमें उतनी ही सादगी; अलब्रत्ता प्रभाव की दृष्टिसे दोनों समान रूपसे सशक्त है। दोनों ही मनमें एक गहरी उदासी और एक कुहरीला स्मृत्याभास छोड़ जाते हैं।

आपके 'घर बने, घर दूटे' और 'देर-स्वेर' दो मौलिक उपन्यास; तथा 'एक अपमानित स्त्री के पत्र', 'वार्ड नम्बर ६', और 'डोरियन ग्रे का चित्र' तीन अनूदित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

# • हुस्ना वीबी

—रामकुमार

हुस्नाने करवट बदलकर सामने दीवारपर लगी घड़ीपर नजर ढाली, तो दस बजनेमें कुछ ही मिनट बाकी थे, परन्तु घड़ीकी सुइयों का महत्व उसकी ज़िन्दगीसे अब अलग हट गया था। दिनमें कई बार देखनेपर भी वह चुपचाप उन्हें धूमते हुए देखा करती थी। क्योंकि उन बेजान सुइयोंमें गति थी। थोड़ी देर बाद वहाँसे नजर उठाकर उसने अपने दोनों गोरे-गोरे पतले हाथ ऊपर उठाते हुए एक बँगडाई ली जिससे उसके हाथमें पड़ी लाल और काली चूड़ियों एक बार झनझना कर चुप हो गयीं। हुस्नाने एक हाथसे धुट्ठोपर पड़ा काली और सफेद धारियों वाला कम्बल अपने गले तक घसीट लिया। पलगकी दाईं और दीवारपर उमरखैयामका एक चित्र टैगा हुआ था, जिसके फ्रेम में लगे शीशेपर दरार आ गयी थी। उस चित्रको दीवारपर लगे कितने साल बीत चुके थे ! महीनोंकी धूल चित्रके फ्रेम और शीशेपर चिपटी हुई थी। चित्र ही क्या, कमरेमें जो चौज एक बार जिस स्थान पर रख दी जाती थी, फिर उसे वहाँसे उठानेकी कभी नौवत नहीं आती थी। तीन-चार साल बाद जब कभी मकान-मालिक घरमें सफोटी करवाता, तो सब सामान जबरदस्ती उठाया जाता था और उसके बाद शहीदन अपनी भजोंसे जहाँ सामान रख देती, फिर उसे बदलने वाला कोई व्यक्ति घरमें नहीं था। कोनेमें पड़ा डेसिंग टेबल, जिसके शीशे और पीछेकी दीवारके खाली स्थानमें मकड़ियोंने अनगिनत जाले बुन लिये थे, खिड़की और रोशनदानके बीचमें किसी हिरणके काले-काले दो सींग, दरवाजेके पास एक कीलपर टैगा वरसों पुराना एक कैलेंडर, कोनेमें रखी शहतूतकी लकड़ीकी बनी तीन पैरों वाली कुर्सी, जिसके

दोनों ओर शेरोंके मुँह बने थे—सब मानो अपने-अपने स्थानों पर बैठे एक-दूसरेकी ओर खुली आँखोंसे ताका करते थे। अभी पलगसे उठ कर क्या होगा ? गुदगुदे गद्दो और मुलायम कम्बलोंकी गरमाईमें पाँव पसारकर पलंगपर लेटे रहनेमें कितना सुख मिलता है या करवट बदल कर एक हाथ सिरके नीचे दबाये और दूसरेको अपने धड़कते सीने पर रखकर कितना सुकून मिलता है ! जब आँखें कमरेके एक कोने या एक वस्तुसे ऊब जाएँ, तो दूसरी देखने लगे और फिर तीसरी.. और फिर सबसे ऊब जाने पर आँखें बन्द कर लो तब एक नई दूसरी दुनिया दिखाई देने लगती है.. यह सोच कर हुस्नाके होठ मुसकरा उठे, मानो उस नई दुनियाकी एक लहर उसके बदनमें दौड़ गयी हो। और आखिर उठकर भी क्या होगा ? उसे कहीं बाहिर नहीं जाना है, शामको किसी का इन्तजार उसे नहीं करना है। उस्ताद्जीका तबला नहीं बजेगा, जमाल खाँ सारंगीके तारोंको नहीं छेड़ेगे और उसे.. उसे गाना नहीं पड़ेगा, कोई उससे फलाँ गजल गानेकी जिद नहीं करेगा। वे दिन बीत गये जब तीन बजेसे ही घंटों वह ड्रेसिंग टेब्लके सामने बैठी हीरे और पन्नेकी अँगूठियाँ, नौरत्नोंके चमकते हार, जड़ाऊ कंगन, सफेद मोतियोंके लटकते भूमर और खुदे हुए फूलोंसे सजा कमरबन्द पहनकर बार-बार शीशेमें अपना मुँह और शरीर देखा करती थी। वह कौन-से 'शेड' की लिपस्टिक लगाये ? गफूर मियाँको हल्की गुलाबी रंगकी लिपस्टिक पसन्द थी और टण्डन साहब गहरा सुखरंग पसन्द करते थे— चाहे वह होठोपर लगी लिपस्टिकका हो, चाहे नाखूनोंकी लालीका; चाहे गालोंके रुजका हो; चाहे गुलदस्तेमें सजे गुलाबके फूलोंका। बालोंमें वह कौन-सा तेल डाले ? 'यू डी कोलोन' या 'ईवनिंग इन पेरिस' या फिर सादा चमेलीका तेल जो मिस्टर दरको बहुत पसन्द था। और फिर उसका गाना शुरू होनेसे पहले उसकी महफिलके लोग आपसमें गरमागरम बहसे किया करते थे कि वो जिगर की 'काम आस्त्रिर जज्बये

वेहस्तियार आ ही गया ' गजल गाये या कोई दादरा या गालिव्रके शेर गुनगुनाये । वह मुसकराती हुई उन सबकी ओर कनखियोंसे देखा करती और उसका टिल वॉसो उछला करता । थोड़ी देर बाद उस्तादजी तबलेको धुमा-धुमाकर उसे ठोकते, जमाल खाँ सारगीके तारोंको सुरमे लाते और उसके गलेसे धीमी आवाज टिलकी गहराई में छवी हुई निकलती । मानो वे शराबके पहले धूट हो जिनका नशा धीरे-धीरे चढ़ने लगता है । महफिल जम जाती, लोग भूमने लगते । कोई ऑखे बन्द करके और कोई कमरेकी दीवारोंकी ओर ताकते हुए । उस्ताद जीकी उँगलियों तबलेपर तेजीसे थिरकने लगतीं और उसकी गजलके शेर धीरे-धीरे लोगोंके दिमागों और दिलोंमें उतरने लगते ।

वाहिर अंधेरे की चादर धीरे-धीरे गाढ़ी होती जाती और लोगोंकी दिनकी जिंदगीका शोरगुल सोई रातके सन्नाटेमें छूब जाता । आसमानमें तारोंका मेला लगाने लगता और कमरेमें जिंदगीकी गति प्रतिक्षण तेज होती जाती, मानो रातको चुनौती दे रही हो । दीवार पर लगी घडीकी दौड़ती सुइयोंकी ओर किसीका ध्यान न जाता । दो गानोंके बीच थोड़ी तफरीह होती, हिस्की और रमझी बोतले खुलती, पासकी हसन मियाँकी दूकानसे बर्फमें दबी सोडेकी बोतले मँगायी जाती और महफिलके लोग गजलपर बहस करते, हुस्ताके सोज-भरे गलेकी तारीफे करते । चॉटीके बरकोंमें लिपटे पान एक-दूसरेकी ओर बढ़ते और सिगरेटके धुएंसे कमरा भर उठता । हुस्ता अपने कमरेमें जाकर ड्रेसिंग टेब्लके शीशोंके सामने अपने चेहरेपर पाउडर और गालोंपर रुज लगाती, होठोंकी लालीको और गहरा करती और जूँड़ेमेंसे खिसकी हुई बालोंकी लटोंको फिर कघेसे पीछे धकेलती । फिर एक और नई गजल । सारगीके तार टिलके उठते तूफानोंसे टकराकर और भी जोर से बज उठते ।

"हुस्ता बेटी, अब उठ । क्या अभी तक सो रही है ? देख, सूरज

रेलकी लाइनोंके पीछे छिप गया है।” शहीदन हुस्नाकी बन्द आँखों की ओर क्षण-भर तक देखती रही और फिर उसने पासकी तिपाईपर चायकी ट्रे रख दी। चीनीके बरतनोकी खटाखट सुनकर हुस्नाने धीरे-धीरे आँखे खोलीं। शहीदनकी ओर देख कर उसके सूखे होठ एक बार थोड़ा-सा मुसकरा उठे। तकियेकों पीठके पीछे टिकाकर वह बैठ गयी, “चाची, यह तुम कैसे जान लेती हो कि कौन-से वक्त मुझे किस चीजकी जरूरत पड़ती है। मैं अभी-अभी चायके बारेमें ही सोच रही थी। शराब मुझे कभी पसन्द नहीं आयी। गफ्फूर मियाँ जबरदस्ती करके एक-आध पेग पिला देते थे। लेकिन मैंने अपनी तश्शीयतसे कभी नहीं पी। मुझे तो गरम-गरम चायका एक प्याला...”

शहीदन चुपचाप प्यालेमें चाय बना रही थी। उसके पके सफेद बाल उसकी ओढ़नीमेंसे झाँक रहे थे। हुस्नाकी बाते वह चुप-चाप सुनती रहती थी, जिसका सिर-पैर उसकी समझमें नहीं आता था। वह केवल इतना जानती थी कि पॉच साल पहले हुस्ना जो बाते करती थी अब वे बदल चुकी हैं। हुस्ना मानो उससे बाते नहीं करती थी। उसको कमरेमें देखकर वह जोर-ज्ञोरसे अपनेसे बाते करने लगती थी जो अकेलेमें खुद सोचती रहती थी।

“चाची, इस शामके सन्नाटेमें कमरेका सूनापन मेरे दिलके सूनेपनसे मिल जाता है और मैं सोचने लगती हूँ कि अब शायद इसकी बीरानगी कभी खत्म नहीं होगी।” थोड़ी देर चुप रहकर वह हँसने लगी और चायका घूँट पीकर उसने फिर कहा, “अभी लेटे-लेटे मैं देख रही थी—शायद वह मेरा खाब था—कि शामके झुटपुटेमें नीले आसमानमें लौटते हुए परिंदोकी टोलियाँ अपने बसेरोकी ओर उड़ी जा रही हैं। उन्हें अपने घर पहुँचनेकी जल्दी थी। शायद उनके नन्हे-नन्हे बिना परोंके बच्चे उनका इन्तजार कर रहे थे...लेकिन मेरा

बसेरा कहाँ है ?.. मुझे कभी उड़कर कहीं पहुँचनेकी जल्दी नहीं होती । बस, यह पलग और मैं, और मेरे कमरेकी दीवारे ।”

शहीदनने पलगसे नीचे लटकते हुए कब्ज़को ऊपर उठाते हुए कहा, “हुस्ना, मेरी रायमे हम कहीं बाहिर चले...इस शहरसे बाहिर... इस मकानसे बाहिर । यहाँ सारा दिन लेटे-लेटे तू अजीब बाते सोचा करती है; ऐसे कब तक जिन्दगी चलेगी ? हुस्ना, तू नहीं जानती कि तू कितनी बदल गयी है !”

शहीदनकी बात सुनकर हुस्नाने उसकी ओर बड़े ध्यानसे देखा और फिर प्यालेको ट्रेपर रखकर बोली, “चाची, ऐसी बात तुम्हारे दिमागमे कैसे आती है ? इतने सालोंसे तुम मेरे पास रहती हो, लेकिन अभी तक तुमने मुझे नहीं समझा ।” और भी एक लम्बी सॉस लेकर बोली, “कोई भी मुझे नहीं समझ सका, न गफूर मियाँ, न टंडन साहब, न मिस्टर दर । हर साल गर्मियोंमें सब मुझसे पहाड़ चलनेको कहते थे—कोई मंसूरी, कोई शिमला, कोई नैनीताल आनेकी दावत देता था; लेकिन मैं कभी इस शहरसे बाहर नहीं गयी और भला जा भी कैसे सकती थी !”

शहीदन चुपचाप हुस्नाके चेहरेकी ओर देख रही थी । उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखोंमें वह कौन-सी गहराई है जिसके भीतर वह कभी झौंक नहीं सकी । इन सूखे होठोपर यह कौन-सी उदासी या अतृप्ति सुख है, जिसे वह कभी समझ नहीं पायी । आखिर हुस्ना सारे दिन पलगपर लेटी क्या सोचा करती है ? वह कभी कोई किताब नहीं पढ़ती । कभी उसने बाजारसे अखबार नहीं मँगवाया । रेडियोके गानोंसे उसे नफरत है । तो वह कौन-से जाल बुना करती है !

हुस्नाने एक सिगरेट सुलगा ली । सिगरेटका धुआँ उसे पसन्द था और कभी-कभी एकके बाद एक सिगरेट सुलगाकर वह नाक और मुँहसे

धुओं ऊपर छतकी ओर छोड़ा करती थी। एकाएक उसने शहीदनकी औंखोंकी तरफ देखा, जिनके नीचे झुर्रियाँ अपने रास्ते स्पष्ट और गहरे बनाती जा रही थीं। “चाची, हम वाहर कहाँ जा सकते हैं? बवर्ड, कल-कत्ता, दिल्ली.. लेकिन हमारी जिन्दगी तो सब जगह हमारे साथ ही जायगी। उससे भला पीछा कैसे छुड़ा सकते हैं। यहाँ हम, अपने पुराने शहरमें हैं। यह मेरा कमरा है। यह मेरा पलंग है, जहाँ मैं सारा दिन लेटी सपने देख सकती हूँ। शहरमें हमारी इज्जत है। हमारे मकानके सामनेसे गुजरने पर लोग उँगली ऊपर उठाकर कहते हैं कि यहाँ हुस्ना बीबी रहती है, जिसकी गजलोंकी धूम दूर-दूर तक फैली हुई है.. और हमारे मरनेके बाद भी लोग हमारा नाम बड़ी इज्जतसे लिया करेंगे।” थोड़ी देर तक वह सिगरेटके कश खीचती रही और धुओं छोड़ती हुई सामने दीवारपर लगे चित्रकी ओर देखती रही—“अगर लोग मुझे गफूर मियाँ की मोटरमें या टण्डन साहबके साथ शहरमें घूमते हुए या पहाड़ोपर जाते देखते, अगर हमारी महफिलोंमें भी ऐरे-गैरे आने लगते, तो भला लोग क्या हमारी ऐसी इज्जत करते! आज भी हसन मियाँके रेस्तराँमें कभी लोगोंको बातें करते सुनो तो वे चाय पीते हुए हमारी गजलोंकी ही चर्चा किया करते हैं। उन पुराने दिनोंकी बाद करते हैं जब लोग हमारी खिड़कीके नीचे हमारी गजलोंको सुननेके लिए आधी-आधी रात तक इन्तजार किया करते थे...”

कमरे में अंधेरा बढ़ता जा रहा था। अपने ही विचारोंमें झुब्बी हुस्ना शहीदनकी औंखोंसे टपकते औंसुओंकी बूँदोंको नहीं देख सकी। हुस्ना ने सिगरेट, प्यालीकी बच्ची हुई चायमें डाल दी और अपने पॉव कम्बल के अन्दर पसार लिये। वह महसूस करने लगी मानो मीलोंका सफर पैदल पार करने के बाद इस तरह पॉव फैलाने से उसकी थकान धीरे-धीरे समाप्त हो रही हो। थोड़ी देर बाद दुपह्वेसे अपनी औंखे पोछकर चाय की ट्रे उठा शहीदन बावच्चीखानेकी तरफ चली गयी। हुस्नाने शहीदनके जाने

के बाद हिम्मत करके कम्बलको अपने पैरोंसे दूर फेक दिया और स्लीपर पहने। दुपट्टेको जैसेनैसे सीने पर धकेलकर वह कमरेकी खुली खिड़की के सामने जाकर खड़ी हो गयी। नीचे सड़कपर बिजलीके खभोकी धुँधली रोशनी थी। दूकानोंके सामने कुछ लोगोंके झुड़ धीमी चालसे राह चलती किसी औरतको धूरते हुए आगे बढ़ जाते थे। नुक़डपर हसन मियाँके रेस्टरॉमें लालटेन जल रही थी। शायद कोई इक्का-दुक्का चाय पी रहा होगा और हसन मियाँ उसे गालिब, जिंगर, फैज के शेर सुना रहे होगे। उन्हे कभी याद नहीं रहता कि कौन शेर या गजल किस शायर की लिखी हुई है। एक जमानेमें वह भी शायरी किया करते थे। तब शायद जवान रहे होगे लेकिन अब उन्हें अपना एक भी शेर याद नहीं है। फिल्मी गानोंसे उन्हे भी चिढ़ थी लेकिन अब वे उन्हे सुननेके आदी हो गये हैं क्योंकि सामने वाले 'गुलजार रेस्टरॉ' ने रेडियो-सेट लगा रखा है जिसमें दिनभर फिल्मी रेकार्ड बजा करते हैं। सड़क के पार ऊबड़-खाबड़ बस्ती थी, कही कोई छोटा-सा लाल पत्थरोंका टीला, तो कहीं कुछ पेड़ोंका छोटा-सा जगल। उस बस्तीके पीछे छोटी लाइन थी, जहाँसे रेलगाड़ी सवेरे आठ बजे, शामके पॉन्च बजे और रातके साढ़े दस बजे गुजरा करती थी। कभी-कभी ऐसे अकेले क्षणोंमें छुक-छुक करती रेलगाड़ीको जहाँसे गुजरते देखकर हुस्नाके मनमें आता था कि एक दिन वह यहाँसे गाड़ीमें बैठकर दूर, कहीं बहुत दूर चली जाये, जहाँ उसके पिछले इतिहासको कोई न जानता हो, जहाँ उसके संगीतका स्वर लोगोंके कानों तक न पहुँचा हो, जहाँ लोग उसके मकानको देखकर उसके अकेलेपनपर उससे सहानुभूति न दिखलाने लगे, क्योंकि खिड़कीके पास खड़े होकर सड़कपर चलते लोगोंको देखकर वह पड़ी सोचा करती थी कि लोग उसकी उजाड़ जिन्दगीके विप्रयमें परस्पर बाते करके उस पर दया दिखलाते हैं। लेकिन क्या किसी नये शहरमें जाकर उसका मन भी नयी जिन्दगी वसर कर सकेगा? क्या वह अतीतके सब

बन्धनों को तोड़कर एक नया अध्याय शुरू कर सकेगी ? हुस्ना सहम-सी जाती, उसका दिल जोर-ज्ञोरसे धड़कने लगता। क्या वीते दिनोंको आखिरी सौंसों तक वह कभी भुला सकेगी ? अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीचमे भला खाइयों कैसे खोदी जा सकती है। वह आज भी अतीत में जिन्दा है और उसीके सहारे भविष्यका निर्माण करती है, उससे रिश्ते तोड़ लेना तो अलग रहा। जिन्दगीमें उसने नये रास्तोंकी तलाश नहीं की। एक रास्तेपर आगे बढ़कर पीछे लौटना और एक नये रास्ते पर चल पड़ना उसे असम्भव प्रतीत होता था। लेकिन यह रेलगाड़ी दिनमे तीन बार यहाँसे गुजर जाती है, कितने ही अपरिचित शहरों, नदियों, विद्यावान जंगलोंको पार करती हुई न जाने कहाँ पहुँच जाती है। काश, जिन्दगी भी रेलगाड़ी-जैसी रफ्तार के साथ आगे बढ़ती !

दूर दायीं ओर रेलकी लाइन पार करनेका पुल था, जिसके बीचो-बीच एक बत्ती जगमगा रही थी। मानो अँधेरे आसमानमे कोई सितारा टिमटिमा रहा हो। हुस्नाने ऊपर आसमानकी ओर देखा, तारे धुंधले थे; परन्तु दिखाई दे रहे थे। हुस्ना खिड़कीके सामनेसे हट गयी। उसने दीवारपर लगा स्विच ढाया। रोशनीमें कमरेकी प्रत्येक वस्तु अपने पुराने इतिहासके साथ उभर पड़ी। वह इस कमरेके नक्शेको बदल देगी। आखिर इन सब सामानोंको यहाँ सजाये रखनेसे क्या फायदा ? यह हाथियों वाली कुर्सीं गफूर मियों शायद सात-आठ साल पहले ईदके दिन दे गये थे और उस वक्त वह इसे अपने कमरेमें देखकर खुशीसे पागल-सी हो गयी थी; अब इसकी एक टॉग टूट गयी है और चमड़ेके घिस जानेसे गदीका कपड़ा दिखाई देने लगा है। उसकी यहाँ भला क्या जरूरत है ! वह इसे हसन मियोंको दे देगी, वह इसे अपनी दूकानपर रख लेगे...चाची कहती थी कि पडोस की ‘कोहेनूर फरनीचर वर्क्स’ का मालिक उसके पचास-साठ रुपये दे देगा, लेकिन वह उसे बेचेगी नहीं, इस कमरेकी कोई भी चीज़ वह नहीं बेच सकती। और यह उमरखय्याम

का चित्र दस साल पहले मुनीरने बनाकर मेरे जन्मदिनपर मुझे दिया था...इस पर महफिलके लोगोंने कितने ही दिनों तक बहस की थी। चाच्ची कभी कमरेकी धूल नहीं भाड़ती...और ये हिरणके बलखाते हुए सींग, सोफा-सेट, ड्रेसिंग टेबल, चॉदीका पीकदान और फर्शपर बिछा तार-तार होता यह कालीन, मानो ये सब अजायबघरकी चीजें हो ! लेकिन वह कब तक इस अजायबघर के अन्दर बन्द रह सकती है ? कशा वह भी इन्हीं वेजान चीजोंकी तरह इस अजायबघरकी एक चीज नहीं बन गयी है !...

हुस्ना ड्रेसिंग टेबलके सामने रक्खी कुर्सीपर धपसे बैठ गयी। उसका सिर धूमने लगा था। उसे कमरेकी प्रत्येक वस्तु धूमती हुई नजर आ रही थी। थोड़ी देर तक शीशेमें अपना चेहरा देखती हुई वह स्तव्य, मूर्तिवत् बैठी रही। उसने झुककर पाससे अपना चेहरा देखनेकी कोशिश की, लेकिन शीशा धुँधला दिखाई देने लगा। उसकी काली ऑखे चुप थीं। वह मुसकराती लेकिन उसकी ऑखे खामोश रहीं और उसके होठ धायल पक्की भाँति फड़फड़ते ही रह गये। उसने क्रीमकी डिब्बी खोली, लेकिन क्रीम सूख गयी थी। खुरच्चने पर थोड़ा-सा चूरा हथेलीपर उंगलियों से रगड़कर उसने अपने चेहरेपर मला और फिर पाउडर लगाने लगी। लिपस्टिककी डिब्बी खोलकर सूखे होठोंको लाल किया और एक बार फिर झुककर उसने अपना चेहरा शीशेमें देखना चाहा। फिर उसने कंधी उठाकर अपने बालोपर फेरी, लेकिन दिन भरके ब्रिक्करे अस्त-व्यस्त बालोंमें वह उलझकर रह गयी। उसने अपनी चोटी खोल दी और मुलायम बालोपर कंधी करती हुई वह उन्हें सहलाती रही, रेशमी-भूरे बाल कंधी करनेसे चमकने लगे। उसने अपने बालोंको बड़े ध्यानसे देखा, परन्तु उनमें एक भी सफेद बाल उसे दिखाई नहीं दिया। नहीं-नहीं, वह अभी जवान है, खूबसूरत है, उसके चेहरेपर अभी तक एक भी झुर्री, एक भी शिक्कन नहीं पड़ी है। उसकी ऑखोंके नीचे

गड्ढोका कालापन अभी नहीं उतरा है, उसका एक भी बाल सफेद नहीं हुआ है। वह गा सकती है। उसकी आवाज अब भी पहले-जैसी ही सुरीली है। हुस्ना गुनगुनाने लगी—

तुम्हारी याद के जब ज़ख्म भरने लगते हैं

किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।

वह खुशीसे चिल्ला पड़ी, उसे अपने शरीरमें एक तेज-सी लहर दौड़ती जान पड़ी और उसने अपनी नसोमें ताजा खून दौड़ लगाते हुए महसूस किया।

“चाची...चाची...” हुस्ना जोरसे चिल्लायी।

शहीदन बावचींखानेसे दौड़ी। हुस्नाकी चीख सुनकर डरसे वह कॉप उठी थी। “चाची!” कहकर हुस्नाने दरवाजेके पास खड़ी शहीदनके गलेमें अपनी दोनों बाहे डाल दीं और उसकी ओंखोमें बड़े पाससे झोकते हुए कहा, “चाची, मैंने अभी-अभी महसूस किया कि इन पॉच सालोमें मैंने जिन्दगीसे प्यार करना सीखा है। हॉ चाची, मैं सच कह रही हूँ, मुझे यहाँकी हरएक चीजसे मुहब्बत है। तभी तो मैंने शफूर मियोंकी कुर्सी, उमरखय्याम की तसवीर, यह ड्रेसिंग टेबल, सारा सामान जो अपने कमरेमें रखका हुआ है...मैं अभी मरना नहीं चाहती...” शहीदनका मुँह हैरानीसे खुलाका खुला रह गया था। हुस्नाके चेहरे पर क्रीमके टुकड़े, होठोंकी लाली और उसके खुले बालोंको देखकर शहीदनके मुहसे भयके कारण आवाज तक नहीं निकली। वह जोरसे हुस्नाको अपने सीनेसे चिपटा लेना चाहती थी। जिससे वह उसके सीनें की धड़कनको सुन सके परन्तु उसके बूढ़े हाथोंकी सारी शक्ति मानो आज समात हो गयी थी।

“मैं अभी-अभी एक गजल गा रही थी चाची, मेरी आवाजमें अभी तक पहले-जैसा ही सोज है। मैं उस गजलका दर्द खुद भी नहीं सह

सकती। इसीलिए मैं कभी अकेलेमें नहीं गाती क्योंकि तब मेरा दर्द बँटाने वाला कोई नहीं होता...” हुस्ना मानो अपने-आप से ही बाते कर रही थी।

“हुस्ना, यह सब तू क्या कह रही है...” आखिर शहीदनके मुँह से आवाज निकली, “यह तूने अपना क्या भेप बना रखवा है, तभी मैं कहती थी कि कुछ समयके लिए हमें शहरसे बाहर चले जाना चाहिए। नहीं तो तू पागल हो जायेगी।” शहीदनने हुस्नाके चेहरेको अपने हाथोंमें पकड़ कर कहा।

परन्तु हुस्नाने ‘मानो शहीदनकी बात सुनी ही नहीं। वह सामने खुली खिड़कीकी तरफ देखती हुई कहने लगी, “आज मेरे गानोका दर्द बँटाने वाला कोई शहरमें नहीं रहा। वे सबके सब चले गये। मैं अकेली ही उनकी यादोके साथ इस अजायबघरमें रह गयी और रोज ही उन बीती बातोंको दुहराना मेरा काम रह गया है।” फिर शहीदनके अपने पास खड़े रहनेका अहसास पाकर वह चिल्ला पड़ी—“चाची, यह सब क्यों हुआ?” और वह शहीदनके गलेसे लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। शहीदनकी ऑखोंसे भी ऑसू टपक रहे थे। वह चुपचाप हुस्नाके रेशमी बालोंको अपने हाथोंसे सहला रही थी। ढाढ़सका एक शब्द उसके मुँहसे कोशिश करनेपर भी नहीं निकल सका। कमरेमें सन्नाटा था, शामका बीमत्स सन्नाटा। केवल हुस्नाकी सिसकियोंकी आवाज घरके सूनेपनमें एक भयानकता और उदासी भर रही थी।

उस रात काफी सर्दी थी। दिसम्बर का आरम्भ था। दिन भर वर्षा हुई थी और नीला आसमान बादलोंसे ढूँका रहा था। हुस्नाने दिन का खाना खाने के बाद अपने कमरेकी चिमनीमें शहीदनसे लकड़ियों सुलगवा ली थीं और उनकी गरमाईमें वह दिन-भर लेटी रही थी।

कभी उसे नीद आ जाती थी और कभी नीदमें देखे हुए सपनोंके विषयमें जागकर उस क्षण तक सोचा करती, थी जब तक उसकी ओँखे फिर बन्द नहीं हो जाती थी। सोते और जागते बत्ते वह सपने ही देखा करती थी। शहीदन उसकी दिनचर्यापर हैरान रहती थी और कभी-कभी उसकी चर्चा हसन मियोंसे भी किया करती थी; परन्तु वे चुपचाप शहीदन-की बातें सुनने के अलावा और कुछ भी नहीं कहते थे। वह बाबर्चांखाने में अकेली बैठी-बैठी हुस्नाके विषयमें सोचकर ऑस् बहाती रहती थी। जब कभी वह आटा, दाल, सब्जी वगैरह बाहरसे खरीदने जाती तो मुहल्लेके लोग और पुराने दूकानदार बड़ी गम्भीरतासे हुस्नाके विषयमें पूछा करते थे। उनकी गिरती हुई आर्थिक दशा भी इन लोगों से छिपी नहीं थी। जहाँ पहले मौसमके नये-नये फल और सब्जियों, भोलारामकी दूकानसे हिस्की और रमकी बोतले, हसन मियोंकी दूकानसे सोडेकी दर्जनों बोतले और बर्फकी सिले आती थी वहाँ अब शहीदन चुपकेसे लोगोंकी ओंख बचा कर दूकानोंके पाससे गुज्जर जाती थी। उसने कभी हुस्नासे इस विषयमें चर्चा नहीं की। हुस्नासे भी घरकी स्थिति छिपी नहीं थी, दो-तीन महीनेसे वह शहीदनके कहनेपर अपनी गहनोंकी सदूकड़ीमेंसे कोई गहना निकालकर उसे दे देती थी।

हुस्ना एक आराम-कुर्सीपर चिमनीके पास बैठी लकड़ियोंसे निकलती लपटोंकी ओर देख रही थी। उसके धुटनोपर एक कम्बल पड़ा हुआ था। हुस्नाने कमरेकी बत्ती नहीं जलायी थी। आगकी लपटोंमें चिमनी के आसपासकी जगह जगमगा रही थी। सामने दीवार पर लगी उस्ताद जीकी फोटोकी ओर हुस्ना कुछ देर से निहार रही थी, जिसका आभास उसे कुछ देर पहले ही हुआ था। उनकी छोटी-छोटी सफेद दाढ़ी, धनी-धनी मूँछे, सफेद कपड़ेका कुरता और गम्भीर ओंखे उसके सामने थी। दुनियामें शायद ऐसे ज्यादा इज्जत वह उस्तादजीकी करती थी।

पता नहीं, वे शहरमें हैं या कहीं दूसरी जगह चले गये। उनसे आखिरी मुलाकात कुछ महीने पहले हुई थी। समय उसे कभी याद नहीं रहता था, कब दिन महीनों, और महीने सालों में बदल जाते, उसका लेखा-जोखा वह नहीं रखती थी।

उस दिन तड़के ही शहीदन उस्ताद्जी को सीधे उसके कमरे में ले आयी थी। वह चारपाई पर लेटी हुई थी। उन्हे देख कर वह उठ कर बैठ गयी। उस्ताद्जी का कुर्ता जेबके पाससे फटा हुआ था। उनकी जूतीपर धूल जमी हुई थी मानो कितने ही दिनोंसे पालिशा न हुई हो, परन्तु चाहकर भी वह उन सबके विषयमें पूछ नहीं सकी थी। वह चुपचाप उनकी आँखों और हिलती हुई छोटी-सी सफेद दाढ़ीकी ओर देखती रही थी।

“मैंने सोचा कि बहुत दिनोंसे तुझसे मिला नहीं हूँ बेटी, सो आज यहाँ तेरे हाल-चाल पूछने चला आया, लेकिन तू बड़ी दुबली नजर आ रही है हुस्ना, बीमार तो नहीं है ?”

यही सवाल तो वह भी उस्ताद्जीसे करना चाहती थी। हुस्नाने हँसकर कहा था, “जिन्दगी कभी नहीं रुकती उस्ताद जी। कभी-कभी हम जिन्दा नहीं रहते। मेरा मतलब है कि सौंसे लेते हुए भी असली मायनोमें जिन्दा नहीं रहते। लेकिन जिन्दगी तब भी पुरानी रफ्तार के साथ आगे बढ़ती जाती है। मरनेसे पहले एक बार मैं हिसाब लगाकर देखूँगी कि मैं कितने साल जिन्दा रही हूँ।”

शहीदन चाय बनाकर ले आयी थी। हुस्नाने एक प्याला बनाकर उस्ताद्जी के हाथ में थमाते हुए पूछा था, “और आप अपनी कहिए।”

उस्ताद्जीने एक लम्बी सॉस खीचते हुए कहा था—“अपनी क्या कहूँ ? कट रही है, लेकिन उस ‘कटने’ में मजा नहीं आता। सफेदी में यह हालत होगी, यह कभी सपनेमें भी नहीं सोचा था। पहले लोग घरों

पर आकर गाना सिखानेकी खुशामदैं किया करते थे, तब लोगोंको असली और नकली सगीत की पहचान थी। लेकिन अब जमाना बदल गया है। आजकल लोग गीत पसन्द करने लगे हैं, फिल्मी ढंगके बाजार गीत, जिन्हें तोंगे वाला उनसे अच्छा गा सकता है। वस, जी चाहता है कि कमरा बन्द करके अन्दर बैठा रहूँ; लेकिन वह भी नामुमकिन है..”

उस्ताद्जी हुस्नाकी नजर बचाकर कमरेमें चारों ओर छिपी निगाहोंसे देख रहे थे। यही पलगके पास कोनेमें बैठकर वे तबला बजाया करते थे। लेकिन अब खिडकियोपर लगे पटोंके रंग धुंधले पड़ गये थे। एक कोनेमें तानपूरा, तबलोंकी जोड़ी और सारगी रखेहे हुए थे जिनपर कितनी ही धूल जमी हुई थी। उन्होंने अनुमान लगाया कि महीनोंसे उन्हें बजाया नहीं गया है। दीवारोंके ऊपर मकडियोंके जाले थे। जाते बक्त धीमें स्वरमें उस्ताद्जीने अपनी आँखें झुकाये कहा था, “हुस्ना बेटी, एक बात कहनी है।” हुस्ना उनके चेहरेकी ओर बढ़े ध्यानसे देख रही थी। “तू मेरे पोते सलीमको जानती है न? उसको दो महीनोंसे मियादी बुखार है, और मेरे पास इलाज करनेके लिए पैसे नहीं है...” और फिर वे एकाएक चुप हो गये थे। आँखें ऊपर उठाने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

हुस्ना चुपचाप उस्ताद्जीके चेहरेकी ओर देखती रह गयी थी। वह उन्हें बचपनसे जानती थी। जब वे उसे हारमोनियम पर ‘सा रे ग म’ सिखाया करते थे और कहा करते थे कि एक दिन वह हिन्दुस्तानकी सबसे मशहूर गायिका बनेगी। आज भी जब कभी वह उस्ताद्जीकी उन बातोंको याद करती है तो उसे हँसी आने लगती है। आज उनके पास सलीमके इलाजके लिए पैसे नहीं हैं। वह सलीमको दुनियामें सबसे अधिक प्यार करते हैं। उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा उन्होंने ही किया है और उसके अलावा उनका दुनियामें और कौन है?

## हुस्ना बीबी

उसने अपने कमरेको दीवारपर लगी 'आल्मारी खोली। नीचैके खानेकी काम वाली एक संदूकड़ीमे से उसने सौनेके दो कण्ज निकाले और लौटकर उस्तादजीके हाथोमे थमा दिये थे।

उस्तादजी गहनोको देखकर चौक उठे थे। "नहीं-नहीं हुस्ना, मै नहीं लूँगा। मैने तो सोचा था कि पचास-साठ रूपये तुम उधार दे देती.. मै तुम्हारे गहने..।"

हुस्नाके चेहरेको देखकर कुछ अधिक कहने का साहस उन्हे नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद वह स्वयं ही धीमे स्वरमे बोली—“रूपये मेरे पास नहीं हैं। अगर आपने ये कण्ज न लिये तो मै कभी आपको अपना मुँह नहीं दिखलाऊँगी...”

कभी-कभी कोई लकड़ी जलते समय चटाख-पटाख करने लगती थी। उस्तादजीकी फोटो देखते-देखते कव हुस्नाकी आँख लग गयी, उसका पता उसे नहीं चला। वह स्वप्न देखने लगी—वह एक गजल गा रही थी :

काम आस्त्रि जड़वये वे-इख्तियार आ ही गया ।

दिल कुछ इस सूरत पै रडपा, उनको प्यार आ ही गया ॥

यह शेर उसे बहुत ही पसन्द था और वह अक्सर इसे गाया करती थी। पास ही उस्ताद जी बैठे तबला बजा रहे थे और जमालखोंकी डॅगलियों सारगीके तारोपर भीड़ दे रही थीं। उसकी गजल सुननेके लिए सामने लोगोंकी बेतहाशा भीड़ थी, हजारो, लाखोंकी तादादमें एक दूसरे से सटे बैठे थे। वे चुपचाप उसका गाना सुन रहे थे, कोई 'वाह वाह' नहीं कह रहा था। कमरा वही था, दीवारपर वही सुनीरका उमर-खय्यामका चित्र था। हिरनके सींग थे, शेरोंके मुँहवाली कुर्सी थी। तभी भीड़मे उसे परिचित चेहरे दिखाई देने लगे। वे गफूर मियां थे और उनके पास ही टण्डन साहब थे—वे ध्यानसे आँखे फाड़-फाड़कर

हुस्नाकी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे गमगीन थे। गुस्सेसे तमतमा रहे थे। लेकिन आखिर यह भीड़ कहोंसे आयी? वह भीड़को देखकर घबड़ाने लगी और उसके माथेपर पसीनेकी बूँदे चमकने लगीं, उसकी आवाज़ कॉप रही थी, लेकिन फिर भी वह गाती जा रही थी। एकाएक तबला और सारंगी एक धमाकेके साथ बन्द हो गये। उसने अपनी नजर फेरी तो उस्ताद्जी और जमालखाँ अपने स्थान पर नहीं थे। उसने भी गाना बन्द कर दिया। वह अकेली रह गयी थी। भीड़में से कुछ लोग जोर-जोर चिल्लाने लगे, कुछने एक आध पत्थर भी हुस्ना पर फेका। उसने चीखना चाहा, लेकिन उसके मुँहसे कोई आवाज नहीं निकली। उसने महसूस किया, मानो कोई उसका गला दबा रहा हो।

“हुस्ना...हुस्ना..” शहीदन उसका कंधा पकड़ कर उसे हिला रही थी।

थोड़ी देर तक आँखे खोले हुस्ना अपने चारों ओर देखती रही, वह कहों है? उस भीड़का क्या हुआ?

“हुस्ना, तुम्हें क्या हो गया है? सोते-सोते तू गाने लगती है। मैं कल ही हकीमजी को बुला लाऊँगी। देख लेना, वे भी तुझे बाहर जाने की राय देंगे। हवा-पलटी तेरे लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। खुदा जाने क्या मंजूर है...” यह कह कर वह हुस्नाके छुटनेके पास बैठ गयी और उसने उसके कंबलमें अपने पॉव टॅक लिये। हुस्नाने कुछ नहीं कहा। वह चिमनीमें सुलगती लकड़ियोंकी ओर देखती रही। धीरे-धीरे स्वप्नकी दुनियासे उतर कर वह वास्तविकतामें आ रही थी। उसने अपने सिरमें दर्द महसूस किया, लेकिन शहीदनसे इस विषयमें उसने कुछ नहीं कहा, नहीं तो फिर वह कहती कि वह बीमार है। वह बहुत दिनोंसे सोच रही थी कि कोनेमें पढ़े उस तानपूरे, तबलेकी जोड़ी और

सारगीको इस कमरेसे उठाकर कही और खववा देगी या किमीको दे देगी। यहाँ तो रोज इन पर धूल जमती जाती है और शहीदनने कभी इनके महत्वको नहीं जाना, लेकिन उस कोनेको खाली देखकर उसका दिल फट जायेगा। उसने कभी सिर्फ अपने ही लिए नहीं गाया और शायद भविष्यमें भी कभी गा नहीं सकेगी। बचपनमें उस्तादजीको खुश करनेके लिए मेहनत किया करती थी, रागोकी सरगामे तैयार किया करती थी और फिर गफूर मिया, टण्डन साहब, मिस्टर दर और महफिलके दूसरे लोगोंके लिए गाया। अगर वे उसके गानोंकी दाद न देते, उसके एक-एक शेरपर दर्दसे उमड़ते सीनेको थाम न लेते, तो शायद कभी-कभी उसके गानोंमें इतना सोज़ नहीं आ सकता था। वह शामसे ही सोचा करती थी कि आज कौन-सी गजल सुनायेगी, लेकिन हमेशा उसकी ऑखोंके सामने महफिलके लोगोंकी मूर्तियाँ घूमा करती थीं। कौन किस शेरपर ‘वाह वाह’ करता है और कौन-सा शायर किसे सबसे ज्यादा पसन्द है। एक-एक शेर पर उसका दिल भी गहरे दर्द और कसकसे तड़पने लगता था, लेकिन उसके दिलकी सारी तड़पन उस संगीतके प्रेमियोंके घड़कते दिलोंके साथ सुरमें सुर मिलाकर ही उछला करती थी, अगर वे सब उसके सामने न बैठते या फिर उसके गानोंका उनपर कोई असर नहीं होता तब वह कभी गा नहीं सकती थी।

“चाची, क्या अब भी पानी बरस रहा है?” हुस्नाने पूछा। शहीदन खिड़कीकी ओर देखती हुई बोली, “शायद अब बूँदा-बूँदी हो रही है। आज दिन भर पानी बरसता रहा है। सरदी भी बाहर बहुत बढ़ गयी है।”

कभी-कभी आसमानमें बिजली चमकनेसे कमरेकी दीवारें भी चमक उठती थीं। बादलोंका गरजना जारी था। तभी बाहर रेलकी लाइनोंपर गाड़ी छुक-छुक करती हुई भागी जा रही थी। उसका स्वर तेज होकर फिर

धीमा होता गया और अन्तमें बारिशकी बूँदोंके 'टपाटप' में विलीन हो गया। "सर्दियों मुझे गर्मियोंकी बनिस्त्रत ज्यादा पसन्द है। गरम विस्तरेमें लेटते ही मैं अपने ख़्यालोंमें खो जाती हूँ, और आज तो कमरेमें आग भी जल रही है। सोनेसे पहले चिमनीमें और लकड़ियों डाल जाना चाच्छी। जब तक मुझे नींद नहीं आती तब तक कमरेमें मैं आगकी लपटोंको देखना चाहती हूँ...और यह खिड़की भी खोल दो।" फिर थोड़ी देर तक वह छृतकी ओर ताकती हुई कहने लगी—"टण्डन साहबको मसूरी बहुत पसन्द था। गर्मियों वहाँ बिताकर वे मुझे पहाड़ोंके हाल बताया करते थे। वे वर्फसे ढंकी पहाड़ोंकी सफेद चोटियों ! वहाँ शहरोंजैसे पीपल और जामुनके पेड़ नहीं होते। वहाँ चीड़के पेड़ोंकी घनी डालियों होती है। और.."

तभी किसीने नीचे ज़ीनेका दरवाजा खटखटाया। हुस्ना बाते करते-करते चुप हो गयी। शाहीदन भी अपने पैरोंसे कम्बल हटाकर चौककर खड़ी हो गयी—"इस रातमें कौन दरवाजा खटखटा रहा है? मैं नीचे जाकर देखती हूँ.." शाहीदनने अपने हुपट्टेसे सिर अच्छी तरह ढंक लिया और बालोंको हाथोंसे सिरपर जमाती हुई नीचे उत्तर गयी।

हुस्ना चुपचाप उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई खिड़कीके पास जाकर खड़ी हो गई। उसने खिड़की खोल दी और हवाके साथ-साथ बारिशकी कुछ बूँदें भी उसके चेहरेपर आ टपकीं। हवासे उसके बाल उड़ने लगे। बाहर धूप अँधेरा था। सड़कपर लगे विजलीके खम्भोंकी रोशनीमें गीली सड़कपर बने हुए बारिशके छोटे-छोटे तालाब चमक रहे थे। दूकानें बन्द हो गई थीं। हसन मियोंकी दूकानमें भी अँधेरा था। दूर अँधेरेमें पुलके ऊपर विजलीकी धूँधली रोशनी टिमटिमा रही थी।

शाहीदन हॉफती हुई दौड़ी आयी और कमरेका दरवाजा जोरके झटकेके साथ खोलकर अन्दर धूसते ही चिल्लाकर बोली, "हुस्ना गजब, हो गया! ग़फ़ूर मियों अपने एक दोस्तके साथ तशरीफ लाये हैं। कहते

थे कि आज ही बम्बईसे यहाँ थोड़े दिनोंके लिए किसी कामसे आये हैं।” यह कहकर उसने कमरेकी बत्ती जला दी। हुस्ना खिड़कीकी तरफ पीठ किये शहीदनकी ओर देख रही थी। गफूरमियोंके आनेकी खबरसे उसकी उटासीनतामें कोई अन्तर नहीं आया था। शहीदन उसके पास आकर कहने लगी, “मैंने उन्हे नीचेकी बैठकमें बिठा दिया है; लेकिन बैठकमें मनो धूल जमा हो गई है। मुझे पहले पता होता तो मैं उसकी सफाई कर देती। वे अपने मनमें क्या सोच रहे होंगे?” फिर हुस्नाका कन्धा पकड़कर बोली—“तू तैयार हो जा, हुस्ना। वे तुझे बुला रहे हैं। तू अपने कपड़े बदल ले। तुझे ऐसी हालतमें देखकर न जाने गफूर मियों क्या सोचने लगे। थोड़ी देरमें मैं उन्हें यही ले आऊँगी..”

हुस्ना धीमें स्वरमें मानो अपने-आपसे ही कह रही थी, “गफूर मियों तशरीफ लाये हैं। इस अँधेरी घरसातमें.. क्यों? पॉच साल बाट वे क्यों मेरे दरवाजेपर आजके दिन आये हैं? नहीं, मैं किसीसे नहीं मिलूँगी। मैं उन पुराने दोस्तोंमें से किसीसे भी मिलना नहीं चाहती। गफूर मियोंसे कह दो चाची, कि हुस्ना मर गयी.. उनसे कह दो कि उनकी हुस्नाको मरे पॉच साल बीत चुके हैं...”

शहीदनका मुँह आश्चर्यसे खुलाका खुला रह गया। बड़ी कठिनाईसे वह कुछ देर बाद बोल सकी, “तू क्या कह रही है हुस्ना? तू पागल हो गयी है। इन पॉच सालोंमें मैं जानती हूँ तूने कितनी बार गफूर मियोंको याट किया, उनकी बातें मुझसे करते कभी तेरी जुबान नहीं थकी।” और फिर हुस्नाके कन्धेको हिलाते हुए उसने तीव्र स्वरमें कहा.. “नहीं बेटी, यह नहीं हो सकता, चल, थोड़ा-सा क्रीम-पाउडर लगा ले, मैं नये कपड़े निकाले देती हूँ।”

तभी कमरेका दरवाजा खुला और गफूर मियों दरवाजेके बीचमें दिखाई दिये। वे सफेद चूड़ीदार पैजामा और काली गरम शेरवानी पहने थे।

उनकी टोपीमें से उनके अधपके बाल दिखाई दे रहे थे। डुड़ीके नीचे उनकी हल्की दाढ़ी नजर आ रही थी; क्षण भर तक वे दरवाजेपर खड़े-खड़े हुस्नाकी ओर देखते रहे और फिर तेजीसे आगे बढ़कर उन्होंने हुस्नाका हाथ पकड़ लिया...“तुम्हे क्या हुआ है हुस्ना ? क्या तुम बीमार थी ? तुमने मुझे खत क्यों नहीं लिखा ? मेरे खतका कोई जवाब भी नहीं दिया ?”

हुस्ना चुपचाप कालीनकी ओर देखती रही। उसकी सॉस जोर-जोर-से चलने लगी थी। वह महसूस कर रही थी कि अब शायद जोरसे विजलीके कंडकनेकी आवाज होगी और वह फर्शपर गिर पड़ेगी।

“जवाब दो हुस्ना, यह तुमने अपनी क्या हालत बना रखी है ?” हुस्नासे अधिक नहीं सहा गया। वह जोरसे रो पड़ी और गफूर मियाँसे लिपट गयी। उसकी सिसकियोंमे बाहरकी टपाटप गुम हो गयी। गफूर मियाँ चुपचाप उसे अपने सीनेसे चिपटाये उसके बालोपर हाथ फेरते रहे। उनकी आँखें भी भर आयी थीं और गलेसे आवाज नहीं निकल रही थी। वे कमरेकी दीवारोंकी ओर ताकते रहे, विजलीकी रोशनीमे खिड़की-पर लगे धुँधले परदे, फटा कालीन, मैले कम्बल, खाली ड्रेसिंग टेबल, मेजपर रखे फूलदानमे कागजके फूल और धूलसे भरा तानपूरा, तबले, सारंगी देखकर उन्होंने वास्तविकताका अनुमान लगानेकी कोशिश की।

थोड़ी देर बाद दोनों आगके पास बैठे थे। एक ही कम्बलमे दोनों के पैर छुटनो तक छिपे हुए थे। गफूर मियाँ सूनी आँखोंसे ध्यानसे हुस्नाकी ओर देख रहे थे। वही चेहरा था, वही बड़ी-बड़ी काली आँखे और पतले होंठ, लम्बी-लम्बी उँगलियाँ और उनके लाल नाखून थे, लेकिन फिर भी वे किसी और चीजकी तलाश कर रहे थे, जो पहले हुस्ना मे थी और शायद अब नहीं है ..“मैं तुम्हें इस तरह बरबाद नहीं होने दूंगा हुस्ना, मुझे कभी सपनेमे भी यह खयाल नहीं था कि तुम्हारी ऐसी

हालत हो गयी है। अगर मुझे पहले पता चल जाता तो कभीका तुम्हें वर्बई ले गया होता। तुमने मुझे भी गैर समझा हुस्ना, मुझे एक चिढ़ी तक नहीं लिखी। अगर मैं अभी न आता तो मुझे तुम्हारे बारे में कुछ भी पता नहीं चलता और तुम इसी तरह बुलती जाती.. मैंने तुम्हें समझनेमें भूल की हुस्ना...” और फिर दृढ़ताके साथ कहा। “अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मैं अभी चार-पाँच दिन तक यही हूँ। मैं तुम्हें जबरदस्ती बंबईले जाऊँगा। वहाँ तुम्हारा सारा इन्तजाम हो जायेगा..”

बाहर जोर की वारिश पड़ने लगी थी। खिड़कीमेसे सरसराते, हवा के झोके अन्दर आ रहे थे। लेकिन दोनोंमेसे किसीका व्यान उस ओर नहीं था। शहीदन रसोईमें जल्दी-जल्दी चाय बनानेकी तैयारीमें लगी हुई थी।

“आज यह कमरा पहचाना भी नहीं जाता। कोई देखे तो यही समझेगा कि इसमें बरसोसे कोई नहीं रहता। मैंने सोचा था कि वहाँ तुम्हारे गानों से जिदगी और जिदगीका प्यार बिखर रहा होगा। लेकिन देखता हूँ कि यहाँ मरघट-जैसा सन्नाटा है, जैसे यहाँ इन्सान नहीं, इन्सानोंके भूत बसते हो। तुम तो ऐसी नहीं थी हुस्ना। तुमने कभी कागज के नकली फूलोंको पसन्द नहीं किया। तुम्हारे फूलदानमें हमेशा ताजे फूल सजे रहते थे। यह सब क्या हुआ?” गफूर मियोंने एक लम्बी सॉस ली और चिमनीमें जलती लकड़ियोंकी लपटोंकी तरफ देखने लगे। शहीदन चायकी ट्रे ले आयी। उसने दूरसे ही गफूर मियों और हुस्नाको इस तरह चुपचाप बैठे देखा मानो वे अभी तक एक दूसरेसे परिचित ही न हुए हो। हुस्ना और दिनोंसे भी ज्यादा गम्भीर दिखाई दे रही थी, उसकी ये ही अस्वाभाविक चौका देने वाली चाते शहीदनकी समझमें नहीं आती थी। गफूर मियोंके साथ वह हुस्नाके हँसते

हुए होठोंका इन्तजार कर रही थी । “गफूर मियॉ, क्या आपके दोस्त को चाय नीचे ही ”

“अरे, मैं तो शहरारको भूल ही गया था । वह अकेला नीचे बैठा मुझे कोस रहा होगा ।” और फिर हुस्नाकी ओर देखते हुए गफूर मियॉ ने कहा, “मेरे साथ बर्वईसे एक टोस्त आये हैं हुस्ना ! बर्वईमे फिल्मे बनाते हैं । बर्वईमे मैं हमेशा शहरारसे तुम्हारे गानोंकी तारीफ किया करता था । शायद इस चर्चासे ही तुम्हारी याद मेरे दिलमे हमेशा ताजी बनी रहती थी । इस बार शहरारको भी मैं अपने साथ ले आया । तुम्हारे गानेकी तारीफे सुनते-सुनते इस बार उन्होंने तुम्हारा गाना सुननेका फैसला कर लिया और वे मेरे साथ यहाँ तक चले आये...” । हुस्ना को कुछ न बोलते देखकर गफूर मियॉने धीमी आवाजमे कहा... “लेकिन मैं तुमसे गानेके लिए नहीं कहूँगा हुस्ना ! तुमसे कुछ भी कहनेका मेरा मुँह नहीं है...” हुस्नाने बहुत देर बाद अपनी झुकी नजरे ऊपर उठाईं । गफूर मियॉ चाहते हैं कि वह गाना गाये और वह.. उसने तो हमेशा यही चाहा है कि कोई उसके सामने बैठ कर उससे कुछ गानेके लिए कहे और आज-जैसा मौका फिर नहीं आयेगा ।

“मैं गाऊँगी गफूर मियॉ...” उसने स्वयं ही महसूस किया कि उसकी आवाजमे स्वाभाविकता आ गयी है और गफूर मियॉको अचानक अपने सामने पाकर धीरे-धीरे जो ज्वार-भाटा बढ़ने लगा था, वह अब कम होता जा रहा है ।

“ओह हुस्ना !..” गफूर मियॉ चिल्ला उठे, “मैं इन ऑखोंको पहचानता हूँ । मैंने इन्हे जबसे देखा है तबसे इनमे ज्यादासे-ज्यादा छवने की कोशिश करता रहा हूँ । लेकिन जितना ही मैं इनमें छवा, इनकी

गहराई और भी गहरी होती रही और आज...आज तो उसकी कोई थाह नहीं है, कही किनारा दिखाई नहीं देता..."

हुस्ना थोड़ा-सा पहली बार मुस्करायी। उसने शहीदनकी ओर देखते हुए कहा, "इनके दोस्तको ऊपर बुला लो चाची।"

शहीदनके चले जानेपर गफूर मियाँ खडे हो गये और हाथोंको बगलोमें ढाककर कमरेका चक्कर लगाने लगे। कुछ देरके लिए वे खिड़कीके सामने भी जाकर खडे हुए, परन्तु बाहर उन्हे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर वे हुस्नाकी पीठकी ओर देखने लगे। हुस्नाके सिरपर दुपट्टा नहीं था। उसके बाल चोटीमें बैधे हुए थे और दोनों तरफ कानोंमें दो छोटी-छोटी सोनेकी बालियाँ दिखाई दे रही थीं। वह बुटनोपर अपनी ऊझी टिकाये वैठी थी। दीवारपर लगा बड़ा-सा गोल घटा टॅगा था, जिसकी आवाज कमरेके सब्बाटेमें गूँज रही थी।

हुस्ना गा रही थी :

कई बार हसका दामन भर दिया हुस्ने दो आलम से।

मगर दिल है कि इसका स्वाना बीरानी नहीं जाती॥

उसके पास न उस्तादजी बैठे तबलेपर ठेके मार रहे थे और न ही जमाल खाँ सारगी बजा रहे थे। लेकिन हुस्नाकी आवाज थी, धीमी लेकिन स्पष्ट आवाज, जो कमरेके सूनेपनको चीरती हुई सुनसान सोई गतमें उथल-पुथल मचा रही थी। हुस्ना धीरे-धीरे महसूस करने लगी कि वह अपने आपेमें नहीं है। किसी अँधेरी बीरान बाटीमें गुम होती जा रही है। गाते समय वह अपने हृदयको आन्तरिक शक्तिको तीव्रतम महसूस कर रही थी, जैसी उसने पहले कभी नहीं की थी। उसे जान पड़ता था मानो उसके गलेसे निफलते एक-एक शेरमें उसकी जिटगीकी सारी अनु-भूतियाँ, सारी कशमकरा, उसका सारा प्वार और टर्ड बाहर निकलकर वह रहा है। जिन अस्पष्ट और धुँधले विचारों और भावनाओंको वह

कभी शहीदनके सामने व्यक्त नहीं कर पायी थी, वे सबकी सब आज उसकी आवाजमें बड़ी आसानीके साथ बरसाती नालेकी भौति बाहर निकल रही थी। उसकी सारी जिंदगी और जिंदगीकी मान्यताएँ नंगी होकर उसके सामने खड़ी थी। उसे खयाल नहीं रहा कि सामने गफूर मियाँ और उनके दोस्त बैठे उसका गाना सुन रहे हैं। उसके गानेके साथ तबला या सारंगी नहीं बज रही है। यह उसका पुराना कमरा और चारों ओर उसकी दीवारें हैं। जिसकी हरएक चीजपर धूल जमी हुई है। उसकी आवाज कमरेमें से बाहर निकलकर हवाके झोकों और बारिशकी बूँदोंके साथ मिलकर एक होती जा रही थी।

गजल समाप्त हो गई और सबने महसूस किया, मानो कोई लम्बी, आसानीसे न बीतनेवाली रात खत्म हो गयी हो। गफूर मियाँने गानेके बाद कुछ नहीं कहा। उन्होने पीठ मोड़कर चुपचाप रूमालसे आँखें पोछली, हुस्नाके पिछले पाँच सालोंकी कहानी स्पष्ट रूपमें उनके सामने उभरकर आ गई थी। किसीको पता नहीं चला कि कमरेके बन्द दरवाजेके पीछे बैठी शहीदन गजल सुनते-सुनते इतना रोई कि उसके दुपट्टेका सारा छोर भीग गया। उसे हैरानी हो रही थी कि उसकी बूढ़ी आँखोंमें क्या अब भी इतना पानी है?

परन्तु शहरारको वास्तविक स्थितिका ज्ञान नहीं था। गफूर मियाँने यहाँ आनेसे पूर्व उसे हुस्नाके विषयमें बहुत-कुछ बतला दिया था, परन्तु यह कहानी पिछले कुछ क्षणोंमें जिस नये मोड़पर मुड गयी थी, उसके विषयमें वह कुछ भी नहीं जानता था। उसने हुस्नाकी ओर देखकर कहा, “ओह, खुदाने क्या गला दिया है आपको..। मैं सच कहता हूँ कि ऐसा गाना जिंदगीमें मैंने पहले कभी नहीं सुना। कितना ओज, कितना दर्द है आपकी आवाजमें। इसे म्यूजिक कहते हैं, जो तीरोंकी तरह सीधा दिलको चीरता अन्दर पहुँचता जाये . . .”

हुस्नाने कुछ नहीं कहा। उसके चेहरेपर परेशानीके चिह्न नहीं थे। वह शहरारकी तारीफ सुनकर उसकी ओर देखकर थोड़ा-सा मुसकराई।

शहरार फिर बोला, “शायद गफूर मियाँने आपको बतला दिया होगा कि मैं बवईमे फिल्मे बनाता हूँ। लेकिन इतनी बड़ी फिल्मी दुनियामे एक भी ऐसा गानेवाला नहीं है, जो गानेके साथ अपना दिल बाहर निकाल सके, वे सबके-सब मशीनोंकी तरह म्यूजिक डायरेक्टरके इशारेपर गाते हैं और म्यूजिक हिन्दुस्तानी फिल्मोंकी जान होता है। अगर वह फेल हो गया तो समझो कि पिक्चर फेल हो गई। इसीलिए मैं हमेशा अच्छे गानेवालोंकी तलाश किया करता हूँ...” और थोड़ी देर तक ध्यानसे हुस्नाकी ओर देखते हुए वे धीमे स्वरमे कहने लगे—“अगर आप फिल्मोंमे ‘प्लेवैक’ गाने लगे तो फिल्मी दुनियामे तहलका मन्च जायेगा। आपका नाम चन्द ही महीनोंमे सारे हिन्दुस्तानमे फैल जायेगा, लोग आपके गाने सुनकर दीवाने हो जायेगे। बाजारों और गलियोंमे लोग आपके गानोंको गाया करेंगे। एक-एक गानेके हजारों रुपये आपको मिलेंगे।” और गफूर मियाँकी ओर देखकर उसने महसूस किया कि शायद वह जरूरतसे ज्यादा बाते कह गया है जो उसे एकदम नहीं कहनी चाहिए थी। लेकिन वह अपने उद्गारोंको अधिक देर तक मनमे नहीं रख सकता था—वह वहाँ बैठे-बैठे उस दिनकी कल्पना करने लगा जब हुस्ना उसकी फिल्मोंमे गायेगी और उसकी फिल्मे ‘बाक्स आफिस हिट’ बनने लगेंगी। लोग उससे पूछेंगे कि यह हुस्ना बेगम कौन है? हुस्ना शहरारकी बाते सुनकर चौक-सी गई, उसकी समझमे कुछ आया और कुछ खो गया। उसने गफूर मियाँकी ओर देखा, परन्तु वे चुप थे मानो शहरारकी बाते उन्होंने नहीं सुनी थी। उनका बस चलता तो वे वहाँसे भाग जाते, इस कमरेकी दीवारों और बातावरणमे उन्हे अपना दम बुट्टा-सा जान पड़ रहा था। “आपकी क्या राय है गफूर मियाँ? क्या हुस्ना बीबीके फिल्मोंमे ‘प्लेवैक’

गानेसे उनका नाम रोशन नहीं हो जायगा ? हुस्ना वीवीका म्यूजिक इस चहारदिवारीके अन्दर बन्द नहीं रहना चाहिए । वह दुनियाके लिए है, लोगोंके लिए है और आजकी दुनियामें फिल्में ही आपकी आवाजको लाखों लोगों तक पहुँचा सकती है ।”

थोड़ी देर बाद कल फिर मिलनेका बायटा करके शहरार पहले सीढ़ियों उतर गया । उसका दिल और जोर-जोरसे उछल रहा था । उसे स्वप्नमें भी यह ख्याल न था कि हुस्नाकी आवाज इतनी आकर्षक हो सकती है । गफूर मियों कुछ भिनटोके लिए अकेलेमें हुस्नासे बाते करनेके लिए रुक गये । “हुस्ना, आज मैं तुमसे न मिलता और तुम गजल न गातीं तो तुम्हारी जिद्गीके जिस पहल्को मैंने आज देखा है वह कभी नहीं देख सकता था । लेकिन नहीं...” एकाएक उन्होंने हुस्नाका हाथ पकड़ लिया और उसकी आँखोंमें झाँकते हुए कहने लगे, “तुमने अपनी मनमानी इन पाँच सालोंमें बहुत की । अब मुझे अपना हाथ पकड़ने दो हुस्ना । मैं तुम्हें अपने साथ बर्बाद ले जाऊँगा । यहाँ तुम्हे आखिरी सॉसे गिननेके लिए नहीं छोड़ सकता । अभी तक दुनियाने तुम्हें तुम्हारी असली जगह नहीं दी । तुम्हारे गाने इस कमरेकी दीवारोंसे टकराकर खो गये । लेकिन अब यह नहीं हो सकता ।” उनकी आवाजमें एक दृढ़ता थी, सकल्प था । हुस्ना मुसकराती हुई उनकी ओर देख रही थी—“जमानेके साथ तुमने आगे बढ़ना नहीं सीखा हुस्ना, तुम बरसोंसे वहींकी वहीं खड़ी हो । लेकिन आज तुम्हारे पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक रही है और अगर तुम आगे नहीं बढ़ों तो एक दिन...”

“आप घबड़ा क्यों रहे हैं गफूर मियों ? मैं आपके साथ बंबई चलूँगी । अभी तो आप चार-पाँच दिन यहीं है ..” हुस्नाने अपने हाथोंसे उनका हाथ सहलाते हुए कहा ।

“शहरारकी बात भी बुरी नहीं है । तुम्हारा हुनर दुनियाके लिए

है, चन्द लोगोंके लिए नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हें फिल्मे पसन्द नहीं है, लेकिन तुम्हें तो सिर्फ़ 'लेवैक' गाने ही गाने होगे। जैसे यहाँ गाती हो, जैसे पहले हम लोगोंके सामने गाया करती थी.. ”

थोड़ी देर बाद गफूर मियों चले गये। वे हुस्नासे बर्बई चलनेकी योजना इस प्रकार बना रहे थे मानो शादीसे पहले कोई अपनी मगोतरसे शादीके बाद रग्नीन प्रोग्राम बनाता है और उसमे जितना सुख उसे मिलता है उतना शायद उन प्रोग्रामोंको क्रियात्मक रूप देते समय उसे नहीं मिलता। हुस्ना चिमनीके पास ही बैठ गयी। लकड़ियोंमे से आगकी लपटे निकलनी बन्द हो गई थी। कुछ देर तक हुस्नाकी विचार-शक्ति और चेतना छुस-सी हो गयी। वह गफूर मियों, शहरार, बर्बई, सबको भूल गयी। मानो उन सबका उसकी जिदगीसे कभी कोई सम्बन्ध न रहा हो। धीरे-धीरे उसका यह उन्माद खत्म हुआ और पिछले दो-दाई ब्रटोकी घटनाएँ स्वप्नकी भाँति उसकी ओँसोंके सामने घूमने लगी। शहरार कहते थे कि उसे फिल्मोंमे 'लेवैक' गाना चाहिए। वह परदेके पीछेसे गाये और फिल्ममे एक्रेस अपने होठ हिलाये। हुस्नाको हँसी आ गई। उसकी शोहरत होगी। उसे एक-एक गानेके हजारों रूपये मिलेंगे, लोग हुस्नाके 'लेवैक' गानोंकी चर्चा किया करेंगे। सड़कोपर चलते हुए ताँगेवाले, बैलगाड़ियोवाले अपना लम्बा रास्ता काटनेके लिए उसके गानोंको गुनगुनाया करेंगे। सामने 'गुलजार रेस्टरॉ'में लगे रेडियो से जिस तरह दूसरी फिल्मोंके रेकार्ड बजते हैं उसी तरह मेरी आवाज भी लोग सुना करेंगे। तो क्या मेरी पिछली जिंदगी झूठ थी? जिस पौधे को मैंने इतने प्यारसे पाल-पोसकर इतना बढ़ा किया, वह सब बेकार था? नहीं, झूठ नहीं था। मेरा एक रास्ता है और शहरारका दूसरा। मैं अपना रास्ता छोड़कर दूसरेके रास्तेपर नहीं चल सकती। और... गफूर मियों भी यही कहते थे। वे मुझे अपने साथ बर्बई ले जाना

चाहते हैं और अगर मैंने मना किया तो वे जबरदस्ती ले जायेगे। उनके सामने मुझसे उनकी बात टाली नहीं जायगी। उनके सामने मैं अपने-आपको एक कमजोर बच्चा समझ लेती हूँ, जो डॅगली पकड़कर चलता है। गफ्फूर मियॉको मेरी हालतपर तरस आ गया। मनमें शायद वह मेरी किस्मतपर रो भी रहे हैं और वे भी मुझे 'प्लेबैक' सिंगर बनाकर मेरी किस्मत बदलना चाहते हैं। वह मुझे दुनियासे वह जगह दिलवाना चाहते हैं जो अभी तक मुझे नहीं मिल सकी है। वह हँसने लगी... कोई मुझे नहीं समझ सका... लोगोंको मेरा गाना पसंद आता है क्योंकि उसमें दर्द होता है, सोज होता है। लेकिन आखिर यह दर्द और सोज कहाँसे आया? इसका भी तो मेरी जिंदगी और मुझसे गहरा ताल्लुक है। लेकिन मेरी जिन्दगीसे किसीने प्यार नहीं किया। उसे समझनेकी किसीने कोशिश नहीं की। क्या 'प्लेबैक सिंगर' बननेमें मेरी आवाजमें वह दर्द रह सकेगा? क्या परदेके पीछेसे मैं किसीको भी अपने गानोंसे अपनी जिंदगी और उसकी तड़पनको समझा सकूँगी? गाने वाले और सुनने वालोंके बीचमे बिना कोई रिश्ता जोड़े क्या कोई गायक लोगोंके मनके तारोंको छू सकता है? वे समझते हैं कि मुझे शोहरत प्यारी है। रूपयेका लालच वे मुझे देते हैं लेकिन क्या उनकी जरूरत कभी मैंने महसूस की है?... नहीं, मैं बर्बाद नहीं जाऊँगी, मुझे 'प्लेबैक' गाने नहीं गाने हैं।

अगले दिन सुबह तड़के ही शहीदनको जगाकर हुस्नाने उससे जल्दी-जल्दी सामान बॉधनेके लिए कहा—“तुम कही बाहर चलनेको कहती थी न चाची। तो चलो। मैं जल्दीसे जल्दी इस शहरसे बाहर चली जाना चाहती हूँ जहाँ मुझे कोई न जानता हो, किसीको मेरे मकानका पता न मालूम हो। जल्दी करो चाची। हमें पहली गाड़ी ही पकड़नी है। किसी भी शहरके लिए....”

## राय आनन्दकृष्ण

सुप्रसिद्ध कला-आलोचक और कला-मर्मज राय कृष्णदासके सुपुत्र राय आनन्दकृष्णको कहानियाँ लिखनेकी प्रेरणा कदाचित् अपने कथा-अनुरागी पितासे ही मिली। आपका जन्म बनारसमें हुआ और वहाँ आपने शिक्षा पाई। एम०ए० से प्रथम स्थान प्राप्त कर आजकल आप शोध-कार्यमें संलग्न हैं।

राय आनन्दकृष्णकी कहानियाँ यही निर्देश करती है कि कथाकारको सूत्र-रूपमें कथा कहना अच्छा लगता है। सक्षेपमें अपनी बात कहनेकी प्रवृत्ति सभी कहानियोंमें पायी जाती है, किंतु उनकी विशिष्टता यही है कि सक्षिप्त होनेपर भी वे अपनेमें पूर्ण होती हैं। आपके कथानक जीवनकी बहुत छोटी-छोटी-सी घटनाओंसे उठाये हुए होते हैं।

अनेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें छप चुकी हैं।

# ० माधवी और कर्णिकार

—राय आनन्दकृष्ण

मैं उन दिनों शाकुन्तल पढ़ रहा था—“कः सहकारमन्तरेण ज्योत्स्ना-भूजिकां सहेत, समुद्रमन्तरेण महानदी कुत्र वा अवतरति।” सामने खिड़की के नीचे दूर तक एक पुराने मकानका खेड़हर फैला था जिसके इंट-प्स्थर हट्ट दिये गये थे, केवल एक छह बच रहा था। प्रकृतिको केवल इंट-चूनेका साम्राज्य नहीं भाता। उसे मिछीसे प्रेम है और वह इंटकी दीवालमें भी मिट्टी खोजती है। उस मिछीके ढेरमें एक ओर पीपल, इमली और नीम, दूसरी ओर पारिजात, बेल इन सबने बीसों बरससे अपना साम्राज्य जमा रखा था।

बीचमें एक दिन मैंने देखा—उस दिनका मुझे भलीभाँति स्मरण है, एक कर्णिकार निकला है। उसके शैशव-कालमें ही लोगोंने उसका रूप सराहा और भविष्यमें सुन्दर फूल पानेकी आशा की।

“कः सहकारमन्तरेण.....”

आषाढ़में अनजान बूटियोंके बीच माधवीने जन्म लिया। वर्षाकी फुहार और ठड़ी बयार पाकर वह विकसित होती गई।

कर्णिकारने उसे पता नहीं देखा या नहीं, पर मैं, राजीवलोचन बी० ए०, अपनी खिड़कीपर बैठा एम०ए० के नोट तैयार करता और दोनों को देखता। परन्तु मैं भूलता हूँ—कर्णिकारने उसे पहले ही देख लिया था क्योंकि जब ठड़ी हवा चलती तब अपनी लम्बी डाले हिलाकर आमोद मनाता।

उन्हीं दिनों कहीं बाहर जाना पड़ा। महीने भरसे ऊपर बाहर रहनेके बाद लौटकर देखा—माधवी विस्तृत हो गयी, कर्णिकार नये पत्तोंसे टैक गया है। कर्णिकार बड़ी आकुलताके साथ ही अपनी डाले हिला-हिला-

कर माधवीको बुलता और माधवी जैसे अपना सिर हिला-हिलाकर कर्णिकारको हताश करती हुई कहती—‘नहीं, नहीं।’ तब कर्णिकार शिथिल होकर अपने सारे शरीरको झुका देता, उसकी सूखी पनियों गिर-गिरकर आँसूके समान विखर जाती—ठीक उसी प्रकार जैसे शकुन्तलाके वियोगमे आश्रम-लताएँ अपने सूखे पत्ते-रूपी आँसू गिराती—और उसे विकल देखकर माधवी भी अपना मुँह फिरा लेती। कर्णिकार अपनेमे सोचता—‘कः सहकारमन्तरण . . .’ माधवी सहकारको ही खोजती है। वह निश्चय ठान लेता कि अब माधवीकी ओर आँख उठाकर देखूँगा भी नहीं—जाने दो उसे, मैं अपनेमे ही क्या कम हूँ किसीसे ?

शरद बीत चुकी थी, मुझे कालेज जानेके लिए अब छुतरीकी आवश्यकता न पड़ती। मैं खिड़की खोलते ही देखता, सब कुछ सूना-सूना-सा है। जान पढ़ता है माधवी और कर्णिकारमे कुछ कहा-सुनी हो गयी है। पर माधवीको तो कभी कुछ कहते सुना ही नहीं। “चलो कुछ होगा”, मैं निश्चय करता और विगत कलके लिये हुए नोट दूसरी कापी पर उतारने लगता।

पीछे वरामदेमे भाई साहब अपने मित्रोंमें बैठकर बाते करते, “इंट इकट्ठी कर ली है, सीमेट और लोहा मिल जाय तो सामनेके खेडहर पर एक छोटा फ्लैट बना लें, आजकल अच्छे किरायेपर उठ जायगा।”

मेरी लेखनी वही अटक जाती जैसे तेजीसे सीढ़ी उतरते समय रेलिंगमें कपड़ा फँस जाने पर कोई रुक जाय। और, तब मैं अपने मनमे उठती हुई अनेक उलझनोंको फँसे हुए कपड़ेकी भाँति सुलझाने बैठ जाता। कालेजकी नोटबुक सामने खुली पड़ी रह जाती। मैं एक बार कर्णिकारकी ओर देखता और फिर भाई साहबके स्वभावपर विचार करता . . . फिर यह सोचकर सतोप कर लेता कि आजकल किसे सिमेट मिला है ?

उधर दिन छोटे होने लगे थे। उठते-उठते ही कालेज जानेका समय हो जाता। कालेजसे लौटकर मै अपने अध्ययनमें प्रवृत्त होता और रात दो-दो, तीन-तीन तक बैठा लिखा करता अथवा पहले लिखे हुए निवन्धोंको दुहराया करता। परीक्षाकी तैयारीमें मै कर्णिकार, माधवी, भाई साहब, सिमेट, लोहा, मकान सबको भूल चुका था। ठढ़ी हवासे बचनेके लिए भाई साहब पहलेसे ही व्यवस्था कर रखते—मेरे टेबुलके वरावरकी खिड़की शामको अपने सामने बद करा देते, नहीं तो मै अल्हड आदमी, अपने स्वास्थ्यका ख्याल न कर कही खिड़की खुली छोड़ पढ़ता रहूँ और बादमें न्यूमोनियो, ब्रॉकाइटिस जैसी किसी बीमारीका शिकार बनूँ।

एक रविवारको दोपहरके समय खा-पीकर मै अपना सासाहिक पारायण पूरा करनेके निमित्त पाठ्य-पुस्तके लेकर बैठा। शकुन्तलाके पृष्ठ उलटते-उलटते दृष्टि जाकर जम गयी—“कः सहकार.....”

“ओह कर्णिकार”, मैने सोचा, “तेरी कितने दिनों तक सुध भी न ली भाई मैने।”

तुरंत खिड़की खोली। खिलखिलाती धूप आकर मेरे पैरोपर पड़ गयी। सामने सुंदर कर्णिकार हवामें लहरा रहा था। माधवी उससे लिपटी हुई।

“बधाई भैया”, मेरे मुँहसे उसी प्रकार निकल पड़ा जैसे मै अपने किसी सहपाठीसे कह रहा होऊँ, “मिठाई कब खिलाओगे?”

और अपने प्रश्नपर मै स्वयं चौक उठा। कर्णिकार और मिठाई ! देखा, कर्णिकार फूलोंसे लदा था, वह माधवीको पाकर भूम रहा था।

मैने अपनेको मनमें धिक्कारते हुए कहा—इतने दिनों तक ऐसे प्रियको भूला रहा। उसकी ओर नजर उठाकर भी न देखा। पर उसी समय अपना बचाव भी भीतरसे ओठों पर आ गया—तो मुझे उससे क्या ? मेरे न देखते भी वह तो बढ़ता ही जायगा, माधवीके साथ मिलकर नाचना क्या मेरे न देखनेसे उसने एक क्षण भी बंद किया ?

वादीने व्यगके टोनमें उत्तर दिया, अच्छा ! सारा संसार तेरे लिए रुका रहे । यदि तुझे उसकी ओर देखना हो तो प्रकृतिके इस वरट पुत्रकी ओर देख ले । नहीं तो जैसे तुझे एम० ए० के नोट्स बनानेसे छुट्टी नहीं है वैसे उसे भी फलने, फूलने, नित पञ्चवित होने से नहीं ।

हाँ, कर्णिकार इस साल फूला था । सचमुच उसके लिए यह उक्ति सर्वथा समुचित है कि फूलके बोझसे वह दब जाता है ।

पर मुझे इस सबके लिए छुट्टी कहाँ । एक पक्षके बाद एम० ए० की परीक्षा देनी है, मैं परीक्षा शुरू होनेके पहले ही भलीभाँति कल्पना करने लगा कि परीक्षा समाप्त हो जानेके बाद अपनी पढाई, लिखाई, नोट्स, व्यस्तता, जिसमें खाना-पीना सब भूल जाता है, इन सबको कितनी तुच्छ दृष्टिसे देखँगा । एकाएक न जाने किस अनजान शक्तिने इन विचारोंकी ओरसे बलात् मेरा ध्यान हटाकर उन्हीं अक्षरोंकी लड़ी-लंबी पाँतों पर जमा दिया । बकरीके बच्चे दूध पीकर इधर-उधर क्रीड़ा करते हैं, पर जरा-सा खुटका होते ही माँके थनसे लिपट जाते हैं ।

अकालवृष्टिके ओलोंसे मार्चकी गर्मी और कर्णिकारके फूल गायब हो गये । बड़े भाई साहबने मुझसे कहा “चलो जी, ठढ़क हो गयी । परीक्षा देकर दोपहरीमें लौटते समय तुम्हें धूप न लगेगी ।”

मैं विनयसे नत हो जाता, कुछ उत्तर न देता । केवल कर्णिकारकी ओर देखता तो मुझे अपनी छोटी वहनके भुलसे मुखका स्मरण आ जाता जिसके कपड़ोंने दीवाली पर दीपक रखते समय आग पकड़ ली थी । कर्णिकारका रूप बिलकुल उसी जैसा हो गया था ।

उस दिन तीसरा पचाँ बहुत अच्छा हुआ । भाई साहबने आते ही अभ्यासबश पूछा—“कैसा परचा रहा ?”

“आपके आशीर्वादसे यदि दो-एक ऐसे ही अच्छे बन गये तो”... हर्पके मारे मेरा गला रुँध रहा था, “तो प्रथम आना निश्चित है।”

“आज अच्छा ही अच्छा सुननेको मिल रहा है, आज बड़े सौभाग्यका दिन है।” मेरी ओर उन्होंने इस दृष्टिसे देखा जैसे मैं अन्य शुभ बातोंके लिए पूछूँ और तब वे उन्हे सुनाये। पर अधिक रुकना उनके लिए सभव न था। उन्होंने कहा, “आज इतनी प्रतीक्षाके बाद सिमेट और लोहेका परमिट आ गया और मैंने काम लगवा दिया है।”

मैंने उत्साहसे खिड़की खोलकर नीचे देखा तो पाया, मजदूरोंका एक झुड़ पेड़ोंको काटनेमें लगा है। इमली कट चुकी है, नीमकी बारी है। और कर्णिकार, वह माधवीसे लिपटा हुआ भूल्ठित पड़ा है।

मेरे मुँहसे अचानक निकल पड़ा, “कर्णिकार.....माधवी”—.

पीछे भाई साहबके ही मुँहसे सुना कि मजदूरोंने बेल और पीपल काटनेसे इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हे नये फ्लैटकी लम्बाई-चौड़ाईमें बड़ी कमी कर देनी पड़ी। कितु कर्णिकार—माधवी—?



# कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

बत्तीस वर्षीय कृष्णकिशोर श्रीवास्तवकी मान्यता है कि जीवनमे ‘कुछ न कुछ’ ‘उछालना’ अवश्य चाहिए, और वह भी इतनी गम्भीरतासे कि सब लोग उस ओर सजीदगीसे आकर्षित हो जाये। कदाचित् यही कारण था कि कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने अपना उपनाम ‘श्रेष्ठ’ रखकर गणितके सिद्धान्तोपर कहानियाँ लिखी। कदाचित् यही कारण है कि भौतिक-शास्त्रमे एम० एस-सी०की डिग्री लेकर उन्होंने ‘साहित्यरत्न’ की परीक्षा पास की और अब ‘हिन्दी-साहित्यपर भौतिक विज्ञानका प्रभाव’ विषयपर अनुसधान कर रहे हैं। सम्प्रति नागपुर विश्वविद्यालयके प्रकाशन-अधिकारी हैं और डटकर हास्य व व्यग्यके नाटक लिख रहे हैं, जो रेडियो और रगमच, दोनों जगह, समानरूपसे लोकप्रिय हुए हैं।

अपनी कहानियोमे कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने यही चेष्टा की है कि उन्हे पढ़ते समय पाठकको दृঁঢ়বুরুओंके बजनेका आभास हो। और उन कहानियोंके विषयमे सोचते समय पाठकको यही लगे कि— गणित हमारे जीवनका अविभाज्य अग है, हमारे जीवनके समस्त सत्य गणितके सिद्धान्तोंके अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रस्तुत कहानीमे आपने सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि आनन्द = जीवन/इच्छाएँ, अपनी एक दूसरी कहानीमे आपने सिद्ध किया है कि प्रेम = वियोग + सुख। पाठक यदि साहित्य और गणितके इस लॉजिकल सम्म-श्रणसे प्रसुदित होगे तो कृष्णकिशोरजीको प्रसन्नता ही होगी। उन्हे वास्तवमे पाठकोंकी प्रसन्नता ही अभीष्ट है।

आपके एकाकी नाटकोंका एक सग्रह ‘रेखाएँ’ और तीन अङ्कोंका एक नाटक ‘नाटकका नाटक’ प्रकाशित हो चुका है। रेडियो रूपकोंका सग्रह ‘मछलीके ओँसू’ और रगमच-नाटकोंका सकलन ‘आस्तीनके सौंप’ यत्रस्थ है।

## • आनन्द

—कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

‘जीवन मृत्युकी शय्या है, अथवा मृत्यु जीवनकी पूर्णता?’ नीलेश कुछ निर्णय न कर पाया। वह मौनमें खोया था। उपेक्षित हृदय अपनी चिर साधना तथा अनुभूतियोंके मथनका फल उसके समक्ष प्रस्तुत कर रहा था—‘जीवन तो आनन्द और इच्छाओंका संतुलित सामंजस्य है।’

विचारमग्न नीलेश आसन छोड़ उठ खड़ा हुआ। मस्तिष्कमें विचारों का अंधड़ उमड़ रहा था। कमरेके फर्शको वह रौदने लगा। कुछ क्षणोंके बाद उसने वातायनसे भाँका—प्रहरीसे बृक्ष, फिर भूरे केशोंमें मॉग-सी पगड़डी, श्वेत सिकतामें उसका अवसान, सिकतासे लिपटा सरिताका कूल—नीरव और निर्जन! सरितामें झूबता-उत्तराता राकेश!...सौदर्य समेट दृष्टि लौटी! नेत्र ऊपर उठे। राकेशमें ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नामें राकेश! उनके मिलन-गीत गाती नीलिमामयी नीहारिकाएँ—हौं, नीहारिकाएँ पीडित आकाशकी अनन्त आशाएँ।

नीलेशके नेत्र ज्योत्स्नाका आँचल पकड़ राकेश तक कई बार पहुँचे और लौटे। नीलेशको लगा—ज्योत्स्ना जीवन, राकेश मृत्यु! जीवनमें मृत्यु, मृत्युमें जीवन? वह जीवनमें होकर मृत्युमें पहुँचा। मृत्युसे जीवनमें होकर लौट आया। तभी उस साधकका ज्ञान चिल्ला पड़ा—‘जीवन पथ है, मृत्यु लद्य।’, विजय गर्वमें राकेशको चुनौती देते वह मुसकराया। हृदयने दबे स्वरमें फिर कहा—“आनन्द एवं इच्छाओंका एकीकरण ही जीवन है।”

वह अपने आसनपर आ बैठा। स्मरण हो आया कि उसे प्रधान अमात्यके गणित-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोंपर विचार करना है। दार्शनिक तर्कके पश्चात् वह गणितकी तल्लीनतामें झूब गया। विपरीत रीतियोंके सघर्ष तथा

विभिन्न सख्याओंके समीकरण सुलभाते-सुलभाते हृदयकी वाणीकी प्रतिध्वनियोंकी प्रेरणासे उसने विचारा—‘क्या जीवन, उसके आनन्द तथा उसकी इच्छाओंमें कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं?’

अमात्यके प्रश्न अधूरे रह गये। विचारधाराने दिशा बदल दी। गणित की संख्याओंमें दर्शनके तर्क बौधने वह उद्यत हो उठा।

X

X

X

नीलेश तक्षशिलाका छात्र था। एक अनाथ बालककी भोंति उसने विद्यापीठमें प्रवेश किया था। सबकी सहानुभूतिका आधार था वह। रुचिके अनुसार उसने दर्शन एवं गणित शास्त्रोंका मनन एवं अध्ययन किया था। उसकी सफलता आयु एवं अनुभवके साथ बढ़ती ही गयी और अध्यापकोंकी सहानुभूति स्नेहमें परिणत होती गयी। सेवा उसका ब्रत था और स्नेह उपहार। अध्ययन जीवनको गति दे रहा था—अध्ययन अनुभव और मनन बुद्धिके सर्सर्गमें विकसित हो रहा था।

इच्छाएँ उसकी सीमित थीं और सीमित था आनन्द। पिताका प्यार उसके लिए कल्पनाकी वस्तु था। जब कपोती कोटरमें अपने नन्हेको दाना चुगाती अथवा जब मृत शिशुको पेटसे कई दिनों तक निपटाये वानरी अपने असभ्य स्वरमें चीखती-पुकारती-रोती, तब माताके स्नेहका भी वह अनुमान कर लेता।

उसे बताया गया था कि उसकी माता उसके जन्मके दूसरे ही क्षण सदैवके लिए अपना स्नेह घटोरे, अपनी ममता समेटे उससे दूर हो गयी थी। उस स्मृतिमें अपने जन्म-टिक्सपर वह हँसता और आँसू बहाता। हास्य-रुदन-पूर्ण वास्तविक जीवन उसका वर्पमें केवल एक बार हो पाता।

इस जीवनकी वाम्तविकताका तेइसबाँ अवसर समीप था कि उसे एक दिन सदेश मिला—‘उसका पुस्तकीय अध्ययन समाप्त हुआ।’ उसने सोचा, अब जीवनका अध्ययन वह प्रारम्भ करेगा। दूसरा सदेश मिला—

‘वह स्वतंत्र हुआ । अब उसकी जीविकाका भार उसीपर होगा ।’ वह सहमा । जीवनमें जीविकाका प्रश्न समस्याका रूप लेकर प्रथम बार उसके सामने आया । कुछ क्षणोंकी तल्लीनता तथा तर्क-जनित चिन्ताके पश्चात् उसके मुखसे निकला —“चिन्ताओंका समूह ही तो जीवन है ।” वह हँस पड़ा, जैसे उसने सब कुछ पा लिया हो ।

कुछ समय पश्चात् ही गुरुजनोंके आशीष एव साधनोंके फल स्वरूप कोशल राज्य की वेधशालामें गणितसम्बन्धी प्रश्नोंके लिए वह नियुक्त किया गया । अपनी विलक्षण प्रतिभाके कारण कुछ ही दिनोंमें वह प्रजापतिके निकट सम्पर्कमें पहुँच गया । बूढ़े प्रधान अमात्य उसे पुत्रतुल्य समझते । युवक नरेश कभी बन्धु, कभी मित्र कहकर सम्बोधित करते । वह गद्गद हो जाता । गणितसे राज्यमें आया था, दर्शनसे राज्यके हृदयों पर राज्य करने लगा । गणित उसकी जीविका बना था, दर्शन उसके जीवनका लक्ष्य था—आनन्द था ।

X

X

X

उत्सवोंके लिए कोशल सदासे प्रसिद्ध है । भिन्न-भिन्न ऋद्धओंमें वहाँ भिन्न प्रकारके उत्सव होते और अनेक आमोद-प्रमोदके साधन एकत्र किये जाते । उनके मध्य कोशलाधीश प्रजा-हित की कुछ बातें कहते ! प्रजाजन अपने कलाविद् प्रतिनिधियोंका आधार ले अपनी कामनाएँ अपने पालक की पलकोंमें सुला देते । ऐसे उत्सवोंमें वसन्तका उत्सव सर्वश्रेष्ठ था । बाल-रवि की प्रथम रश्मि जब तुहिन-बिन्दुओंको समेटती, पुष्पोंका चुम्बन करती, तभी कार्यक्रम प्रारम्भ होता । इसमें खेल-कूद, अश्वारोहण, वेधवाण मुख्य थे । मव्याहमें उत्सव विश्राम करता, सध्याको रंगमच ऐश्वर्य पाता । नृत्य, रूपक आदि देख ‘प्रजा ‘धन्य धन्य’ पुकार उठती । जब स्वर्णिम परिमल अपने अकमे अधिक शीत बौद्ध लाता तब उत्सव सिहरकर समाप्त हो जाता । कितने ही लोग पुरस्कार पाते । कितने अपनी कामना-पूर्तिका आश्वासन पाते ।

इस वसन्त उत्सवमें नीलेशको अमात्योंके समकक्ष आसन मिला था । उत्सवकी समाप्तिपर अन्य उच्च राज-कर्मचारियोंके साथ वह भी राज-भवनमें भोजनार्थ आमन्त्रित था । अपने-आपमें सकुचाता-सा नीलेश भाग्य सराह रहा था ।

भोजके उपरान्त प्रबन्धकने क्षमा-वाचना की—“नर्तकी नीहारिका अचानक अस्वस्थ हो जानेके कारण आज उपस्थित न हो सकी । वह लजित है ।”

कोशलाधीशने कहा, “मित्र नीलेश, दुर्भाग्य ! अनृत रह गये तुम्हारे नेत्र । तू पुरोके स्वरमें बैधकर तुम रसमय न हो पाये । मुझे खेड है ।”

“देवके अनुग्रह एवं स्नेहने मुझे रस-सागरमें बोर दिया । द्यामय, यह कामना तो होलिकोत्सवमें भी पूर्ण हो सकेगी ।”

प्रजापतिने मुसकानमें हर्ष प्रकट किया । तत्पश्चात् कवि ‘निर्भर’ ने ‘जीवन’ पर कुछ छुट पढ़े । सबने उसकी भाव-प्रौढता एवं कल्पनाकी नवीनताको सराहा । नीलेशने प्रश्न किया, “जीवनको कविने पूर्ण माना है । फिर मृत्युके हिमानी अकका प्रयोजन ?”

“तर्क रसका विश्लेषण कर उसके उन्मादका विनाश कर देगा नीलेश । इसे स्थगित कर दो ।” प्रधान अमात्यने कहा ।

नीलेशका सिर नत हो गया । प्रजापतिने विसर्जनकी आजा दी ।

उस रात नीलेश सो न सका । वह जागता रहा । बीवनपर वह विचार करता रहा । वसन्तोत्सवका शृगार उसके तर्कसे पीला पड़ रहा था ।

X

X

X

कृष्ण पक्ष प्रारम्भ हो चुका था । इस तिमिरमें नीलेशके मस्तिष्कमें गणितका प्रकाश अधिक आ दुसा था । जिजासाके कारण वह ग्रहोंकी गति पर विचार करना चाहता था । वेधशालामें एक प्रहर रात्रि गये नीलेश दूरदर्शक यत्र लगाये आकाशमें धूम रहा था । ग्रहोंके बाह्य रूप-रगमें

उसे स्पष्ट भेद दीख रहा था। वह आनन्दमग्न था। नीलेश यह भेद अपने सहायकको भी दिखाना चाहता था। प्रसन्नताका भार अकेले कैसे बहन करता? कुछ सोच यंत्रको स्थानान्तरित कर उसने पुकारा—“पुष्कर! बन्धु पुष्कर!”

“आज्ञा।”

“मैंने यंत्र स्थानान्तरित कर दिया है। कल वतलाये हुए ग्रहको उसके नामिस्थानमें लाओ तो कुछ नवीनता दिखाऊँ।”

पुष्कर कुछ देर यत्रको हिला-डुलाकर बोला, “स्वामी, अबलोकन कीजिए।”

नीलेश यत्रमें देखकर बोला, “पुष्कर, अभी तक तुम्हें ग्रह तथा नीहारिकाओंमें भेद नहीं ज्ञात हुआ। खेद।”

“स्वामी, नीहारिका तो कोशल राज्यमें है। गगन-मंडलमें कहाँ?”  
नीलेशकी सहृदयताका लाभ उठाकर पुष्कर बोला।

“नीहारिका।”

“हाँ स्वामी। वह नर्तकी नीहारिका। इन अनन्त नीहारिकाओंके सम्मिलित सौदर्यसे बढ़कर सौदर्य समेटे। इनके नर्तनसे अधिक उन्माद अपने नुपूरोंमें बौधे और इनसे हमारे अधिक समीप रहनेवाली नर्तकी नीहारिका।” और पुष्कर अपने स्वामीकी मुद्राका निरीक्षण करने लगा।

नीलेश चित्रलिखित-सा खड़ा रह गया। भोज-दिवसके प्रजापतिके शब्द उसे स्मरण आये। फिर सेभलकर बोला, “पुष्कर, मुझे गगनपर रहने दो। धरापर सम्भवतः मुझे सुख नहीं मिल सकेगा।”

कार्य स्थगित हो गया। नीलेश वेधशालासे लगे अपने गृहकी ओर चला। उसने विचारा—क्या नीहारिका वास्तवमें ऐसी है? अबलोकन करूँ उसका भी? दूरदर्शक यंत्रसे अथवा सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे? फिर वह स्वयं ही हँस पड़ा।

दिन अपनी कालिमा लिये हँसने को उतावले भाग रहे थे। नीलेश उनकी दौड़में प्रायः नीहारिकाके विप्रयमे कुछ न कुछ सुन लेता। उसका मानव-मस्तिष्क, उसका सजल हृदय अब इच्छाएँ पालने लगा। दूरसे नहीं, समीपसे—जहाँसे नूपुरोंकी ध्वनि सुन सके और उसकी भाव-भगिमा देख सके, वहाँसे—वह नीहारिकाको देखना चाहता था। नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसके स्थायी जीवनका आनन्द घट रहा है। इच्छाएँ बढ़ रही हैं। पर वह विवश था, क्योंकि मानव था।

X

X

X

अग्निज्वाल चद्रके चुम्बनार्थ ऊपर उठ रही थी। ज्वालकी उसासे अपनी असमर्थतामे विलीन हो रही थीं। चद्र उसके हृदयकी इच्छाओंका अनुमान कर अपने इदुकरोंसे शीतलता प्रदान कर रहा था। ससार कह रहा था—“यह होलिकाकी ज्वाल, वह पूर्णिमाका चद्र।”

समीप ही उद्यानमे कोशलाधीश राज्यके प्रमुख कर्मचारियों सहित नीहारिकाके नृत्यमे खो जानेको उतावले हो रहे थे। वातावरण शान्त था। एकत्र व्यक्ति अशान्त। पक्षियोंके शब्द कभी-कभी शान्ति भग करते। नीलेश कहता, “दयामय। पक्षियोंके भी हृदय होता है।” अधिपति मुसकानमें नीलेशकी बात मान लेते।

प्रबन्धकने सूचना दी और नूपुरोंके जीवनमे क्रान्ति मचाती नीहारिका रगमचपर थिरक पड़ी। मचल पड़े दर्शकोंके हृदय। वाद्योंकी व्वनिमे पग-पायलोकी रनझुन-रनझुनमें जिजासा, कौतूहल, आनन्द, प्रशसा-टकरा-टकराकर विखरने लगे। रगमच पुष्पोंसे ढक गया और नीलेश एक अनोखी अनुभूतिसे, जो उसके लिए सर्वथा नवीन थी। ल्यके आरोह-अवरोहमें वह छूता और उत्तराता, रनझुनमें वह मुसकराता और नर्तकीकी मुद्राओंमें वह खो जाता। इच्छा थी, नृत्य ही जीवन बन जाय।

यौवनकी अन्तिम उसौंस-सा नृत्य समाप्त हुआ। करतल ध्वनिके तुमुल कोलाहलमे प्रशसा के शब्द भटकने लगे, जिनमेसे कुछ ही नीहारिका तक पहुँच पाये।

“मेरा कथन असत्य तो नहीं था नीलेश ?”

नीलेश तन्मयतासे जागा, “सर्वथा सत्य था दयामय। मैं विचार रहा था, हमारा जीवन भी तो ऐसी ही तन्मयतासे ओत-प्रोत इच्छाओंका नृत्य देखता है—आनन्दके लिए।”

“तो आओ, इस जीवनको इच्छाओंसे मिला दूँ—आनन्दके लिए।” अधिपतिका विनोद अधरोंसे झौंक उठा।

प्रजापतिके आगमनकी सूचना पा नीहारिका यवनिका हया सामने आ गयी। सौदर्य और कलाने समिलित भावसे नत होकर वैभवको प्रणाम किया।

“ये नीलेश हैं। हमारे कर्मचारी। दर्शनके पडित, गणितके विद्वान् और कोशलकी वेधशालाके अध्यक्ष। तुम्हारी प्रशसा किया चाहते हैं।” प्रजापतिने परिचय दिया।

“एक प्रशसनीयसे अपनी प्रशसा सुन मैं कही बाबली न हो जाऊँ महाराज !”

“कदापि नहीं देवी।” प्रशसा तो इच्छा-विशेषका व्यक्तीकरण है। इच्छाएँ दबकर विकार करती हैं।” नीलेश बोला। उसके विचार डगमगा गये थे।

नर्तकी उसे देखती रही। नेत्रोंसे श्रद्धाञ्जलि उँडेल बोली, “कल मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। कृतार्थ होउँगी। पावन चरणोंके स्पर्शसे मेरा निवास भन्य हो उठेगा।”

नीलेश विचारमग्न हो गया। उत्तर देना चाहता था, पर न दे पाया।

“नीहारिके ! नीलेश कल तेरा अतिथि होगा ।” प्रजापतिने कहा । नीलेशने एक-एककर उन दोनोंकी ओर देखा । वैभवका प्रभाव, सौन्दर्यका आकर्षण ।

X

X

X

गोधूलिके पश्चात् नीलेश नीहारिकाके निवास-स्थान पर पहुँचा । वह स्वागतार्थ प्रतीक्षामें खड़ी थी । सम्मान, सहदयता एव निकटताने उसे उस सौन्दर्यका और भक्त बना दिया । नीहारिका आज नीलेशके ज्ञानको अपनी कलासे तौलना चाहती थी । इसी कारण भोजनके उपरान्त नृत्यकी व्यवस्था हुई । नीलेशकी इच्छाने हृदय गुदगुदाया । अपना स्वानिल सौदर्य लिये, रत्न-आभूपर्णोंसे सुसज्जित पायलोके शब्द करती, उस एकाकी कद्में मदिराकी मादकता-सी वह छा गयी । नीलेश देखता रहा—उसी प्रकार जैसे शैशव अपना स्थान ले लेने वाले यौवनकी क्रीड़ा निहारता है ।

नृत्य-समाप्तिपर नीलेशने कहा, “देवी, नूपुर तुम्हारे चरणोंसे लिपटकर अमर हुए । मुद्राएँ तुममे बैध असीम बन गयी ।”

नीहारिकाने नेत्रोंकी मूँफ भापामे आभार माना । वह समीप आ बैठी । नीलेश सकुचाया, ज्ञान सहमा भाल भूमिकी ओर झुक गया ।

नीहारिकाने प्रश्न किया, ज्ञान और कलामे क्या भेट है ?

“ज्ञान मस्तिष्क का उन्माद है और कला हृदयकी पीर ।”

“इनका लक्ष्य क्या है ?”

“दोनोंका लक्ष्य आनन्द है ।”

“आनन्द क्या है ?”

नीलेश रुक गया । एक क्षण बाद उसने कहा, “देवी, इसका उत्तर कुछ दिनों बाद दे सकूँगा ।”

नीलेश आज्ञा ले चल दिया । परिवाका चन्द्र कुछ खोकर नीलेशको अपनानेका प्रयत्न कर रहा था ।

X

.

X

X

नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसकी इच्छाएँ बढ़ रही हैं। वह प्रतिदिन चाहता कि नीहारिकाका नृत्य देखे। वहुधा समय खोज, बहाना ढूँढ पहुँच जाता। नीहारिका समझ जाती। ज्ञान और कला मिल बैठते। हृदय और मस्तिष्कमें समझौता होने लगता। वृक्षकी कटी डाल-सी नीलेशकी इच्छाएँ अनेक मार्ग खोज पनपने लगी। इच्छा-पूर्ति न होनेपर उसे दुःख होता। आनन्द उसे दूर भागता दिखायी देता। वह सोचता—“मैं वही नीलेश। वही मेरा जीवन। फिर केवल इच्छाओंके आधिक्यपर आनन्दकी यह न्यूनता क्यों?”

जब हृदय इन सघर्षोंमें लय हो जाता, तब दर्शन गणितकी आड़ ले कहता—जीवनमें इच्छाओं और आनन्दका निश्चित सम्बन्ध है। इच्छाएँ बढ़कर आनन्द घटा देती हैं। नीलेश वास्तविकतासे उठ कल्पनामें खो जाता।

नीहारिका नीलेशके ज्ञानपर मुग्ध थी। नीलेश उसकी कलाका भक्त था। दोनों आराधक थे, आराध्य थे। साधक थे, साध्य थे। आराधना और साधना इच्छाओंका परिणाम था।

समय समझौतेमें बीत रहा था। अचानक नीहारिकाको कुछ समयके लिए कोशल छोड़ना पड़ा। अश्रुओंमें वह विदा हुई। आहोमे नीलेशने यह देखा। नीहारिकाकी उपस्थितिमें उसकी इच्छाएँ बढ़ती रही। आनन्द घटता रहा। वह एक अजात वेदनाका अनुभव करने लगा। अनुसन्धान-कार्यमें उसने मन लगानेकी चेष्टा की, किन्तु असफल रहा।

उस दिन दूरदर्शक यन्त्र ग्रहकी ओर नहीं निहार रहा था। उसकी दृष्टि कही और थी। पुष्करको आश्चर्य हो रहा था, “स्वामी, आपसे यह भूल !”

“नहीं पुष्कर, ग्रहोंका यह क्या भौकँहै ? मैं तो नीहारिकाओंकी तुलनामें लीन हूँ।” नीलेश वेधशालके ऊपरी खड़से शूल्यमें ताक रहा था। फिर न जाने किस मानसिक भारसे दबकर उसने नेत्र मूँद लिये।

## आनन्द

पुष्कर देख रहा था अपने प्रधान को, उसकी दशाको । अङ्गीनक पुष्कर चिल्ला उठा । नीलेश उस खण्डसे लुढ़ककर दूसरे खण्डपर जा गिरा था । पुष्कर बवराकर उस खण्डपर पहुँचा । अचेत नीलेशका रक्त-रजित शीश देख वह चिल्लाया । नगर-निवासी दौड़े । प्रजाको, प्रजापतिको डुःख हुआ ।

राज्यवैद्यके निरीक्षणमे नीलेशका उपचार आरम्भ हुआ । दूसरे दिन सन्ध्याको नीलेशने नेत्र खोले । स्नेही सामने खड़े थे । उसने सूखे अधरो की मुसकानसे उनका आभार माना । राज्यवैद्यने कहा, “शीघ्र ही आप स्वस्थ हो जायेंगे ।” स्नेहियोने उनका साथ दिया । नीलेश मुसकराकर शान्त हो गया ।

प्रातः सेवकसे नीलेशने प्रश्न किया, “नीहारिका नहीं आई ?”

“नहीं स्वामी । समाचार मिला है कि शीघ्र ही आयेगी । आपकी इस दुर्घटनाका समाचार उन तक पहुँच चुका है ।”

नीलेश चुप हो गया । सन्ध्याको प्रजापति भी आये । नीलेशने फिर वही प्रश्न किया । सन्ताष्टजनक उत्तर पाकर भी उसे शान्ति न हुई । कहा, “दयामय, कामना थी कि जीवनकी समाप्तिके पूर्व उसके प्रश्नका उत्तर दे दूँ ।”

नीलेश प्रतीक्षामे सासे गिन रहा था । उसकी दशा बिगड़ रही थी ।

लगभग एक सप्ताह पश्चात् नीहारिका निर्भर-सी उपचारगृहमें गिरकर कराह पड़ी । नीलेशके अधरोपर मुसकानकी रेखा खिच गई, “आ गड़ देवी । कामना थी तुम्हारे दर्शनोकी । चाहता था तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता जाऊँ ।”

“ऐसा न कहो देव ! मेरी इच्छाओका क्या होगा ?” वह बिलख पड़ी ।

नीलेश कुछ क्षण मौन रहा, फिर शक्ति समेट बोला, “देवी, उत्तर देने दो। विलम्ब हो रहा है। तुमने आनन्दका परिचय चाहा था न! आनन्द एव इच्छाओंका गुणनफल ही जीवन है। अथवा यो कहो कि जीवन भाज्य, इच्छाएँ भाजक और आनन्द भजनफल हैं। स्थायी जीवन में इच्छाओंका आधिक्य आनन्दकी न्यूनताका द्योतक है। बस अब विदा दो.....”

“नहीं देव, मुझे आज्ञा दो। आज मैं उस देवालयकी पाषाण-प्रतिमा की सहृदयताकी परीक्षा लेंगी। मृत्युपर्यन्त उसके समक्ष नृत्य करूँगी। सम्भव है वह मेरी सुन ले।”

नीलेश मुस्कराया। नीहारिका बावली हो देव-मन्दिरकी ओर भागी। राज्यवैद्यने औषधका पात्र उठाया और कहा, “ग्रहण करो नीलेश !”

“पूज्य, जीवनकी पूर्णतामें अवरोध उपस्थित न करो। इच्छाएँ शून्य हो चुकी हैं। उन्हे आनन्दसे मिलाकर जीवन शून्य कर लेने दो अथवा इच्छाओंसे जीवनमें भाग देकर आनन्दको अन्तर कर लेने...” और नीलेशके प्राण अलौकिक आनन्दकी ओर उड़ गये।

उधर देव-मन्दिरमें नीहारिकाके नूपुर देव-प्रतिमाकी सहृदयताको पुकार रहे थे। कदाचित् उनकी ध्वनि नीलेशकी चेतनाका स्पर्श करने भागी आ रही थी। मार्गमें ध्वनिने प्राणोंको पाया और उसीसे लिपटकर अनन्तकी ओर चल पड़ी।

कहते हैं, आज भी नीहारिका नृत्य कर रही है, पर उसके नूपुरोंमें ध्वनि नहीं।



## जीवन नायक

‘वीनसके पैर’ कहानी ( ‘प्रतीक’—१२ में प्रकाशित ) लिखते समय तरुण कथाकार जीवन नायकने कदाचित् यह नहीं सोचा था कि शीघ्र ही वह वीनसके हाथोपर भी कहानी लिखेगे । इन दोनों हृदय-स्पर्शों कहानियोंको पढ़ उस समय यहीं सोचा गया था कि जीवन नायक अब कदाचित् वीनसके नेत्र, वीनसकी नासिका और वीनसके केशपर कहानियाँ लिखेगे, किन्तु पाठ्य-पुस्तकोंने इस प्रतिभावान् कथाकारको कहानी-क्षेत्रसे परे खींच लिया तथा हिन्दी-कथा-साहित्य जीवन नायकसे कुछ और अच्छी कहानियाँ पानेसे वचित रह गया ।

जबलपुरमे जन्मे और नागपुर, लखनऊमे शिक्षित जीवन नायक सम्प्रति भोपालमे अधीक्षक, पाठ्यपुस्तक और प्रकाशन है । नियमित रूपसे नहीं लिखते—कदाचित् इसलिए भी, कि पत्र-सम्पादक मोंग नहीं करते । अब तो पाठ्य-पुस्तकोंकी ओर हो ध्यान अधिक है ।

# • दो हाथ'

—जीवन नायक

सोने-जैसे पीले टो सेंपोले फन फैलाये निश्चेष्ट पड़े हो, या धरतीपर गिरे, मुर्झाये, चमकीले पत्ते बुणाक्षर न्यायके अनुसार हाथोंके अग्रभागके आकारमें आ जमा हुए हो, या फिर किसी संगतराशकी कृतिके, कोहनीसे नीचेके दो हाथ किसी आधारके सहारे रखे हुए हो और एक-ब-एक किसीकी निगाह उनपर पड़ जाय..... !

तो एक दिन ऐसा ही हुआ। लल्वानी संस एड कंपनीका मालिक बीस-बाईस वर्षका मनोहर किशोर ऐसे ही दो हाथोंको अपनी दूकानके काउंटरपर रखा देख स्तम्भित रह गया ! उसने देखा, मोमकी तरह चिकने, तीव्र जॉडिससे त्रस्त किसी बहुत ही गौराग मरीजकी त्वचाके सदृश पीले, छेनीके कलाकारकी मति-गतिके सूचक, प्रतिभावानके उत्कृष्ट प्रयोग-जैसे दो हाथ, केवल दो हाथ-अपनी मद्दिम रोशनीमें आप ही चमक रहे थे.....

लल्वानीकी दूकान इधर सिविल लाइसमें शायद सबसे बड़ी दूकान है। टॉफी और खिलौनोंसे लेकर बढ़िया विलायती तम्बाकू और वाकिंग-स्टिक तक तमाम चीजें वहाँ बिका करती है; और जिसकी बात कह चुका हूँ वही किशोर आजकल दूकानपर बैठता है। सुबह आठ बजे घरसे चलता है तो दूकान तक रास्ते भर केले खाता आता है। कीमती कपड़ेकी गरम पतलून, उसपर जगह-जगह सिकुड़ी हुई रेशमकी कमीज, जो हमेशा पैटके बाहर लटका करती है और उसपर नेवी-ब्लू पुलोवर। सिरके बाल हमेशा बेतरतीव्र, बिखरे हुए, कवियोंकी तरह बढ़े हुए, पर छल्लेदार, जैसे यूनानी वीरोंकी मूर्तियोंके होते हैं। किशोर लापरवाह नहीं, बेपरवाह है, खूब ही मनमौजी, मस्त। आस-पासकी चीजोंको छूकर वह उनमें

मत्तीका सचार करता जान पड़ता है। दिन-भर दूकानपर रहता है, सामान बेचकर पैसे जमा करता है, ग्राहक न होनेपर कॉचकी बड़ी-बड़ी शीशियोंसे चॉकलेट निकालकर चबाया करता है और अक्सर 'महल' फिल्मका गाना बिलकुल कलाकारकी तरह गाता रहता है—'आयगा. आयगा'। पूरा गाना गाते हुए मैंने उसे नहीं सुना, पर हॉ, आप कभी उसे गाते हुए सुने तो जरूर मान लेगे कि इन्सानके इस गलेसे 'इलीजियम' की रूमानी डुनियाके किसी अनजाने किन्नरका विरह-गान प्रस्फुटित हुआ करता है, जिसकी ध्वनि छब्ब जानेपर भी आपको बैचैन करती रहती है। वह एक अजब 'हॉन्टिग ट्वून' है जो गृजती रहती है...। ललवानीकी दूकान कानूनी तौरपर सप्ताहमें एक दिन बन्द रहती है। सुबह आठ बजे खुलती और आठ बजे बढ़ जाती है। ठीक दूकानदारकी तरह वह छोकरा हिसाब-किताब मिलाता है। सिर हिला-हिलाकर तिर-तिर-तिर नोटोंका टेर गिनता चला जाता है। फिर बत्तियों गुल होती है, दरवाजे बन्द होते हैं, भारी तालोंमें चावियों घूमती है और तब सुन पड़ता है... 'आयगा... आयगा'। इसके बाद लगभग ८-३० बजे इसी रास्तेपर प्रायः रोज ही तेज रफ्तारसे एक मोटर-साइकिल निकला करती है जो रातमें कोई ११, ११-३० बजे फिट्, फिट्, फिट्, करती लौट पड़ती है। इस बस्तीमें आम तौरसे लोग इस मोटर-साइकिलकी रफ्तार और आवाजको खूब पहचानते हैं। वह छोकरा कुछ है ही ऐसा। बहुत लोग उसे अकारण भी जानते हैं। लड़का शायद इस बक्क भी गुनगुनाया करता हो और मोटर-साइकिलके शोरगुलमें उसका कलनाट समा जाता हो।

चैत्र माहके पूर्वार्धकी सुनहली धूप जो सर्दासे पूरा-पूरा बचाव नहीं करती तो भी भली मालूम होती है, और वसन्तकी हवा जो शरीरको रोमांचित करती है फिर भी सुखदाई लगती है, ऐसे ही एक सुप्रभातमें मैदानी नदीके शान्त और स्तब्ध प्रवाहमें तैरती हुई दीपशिखाको तरह स्थिर,

निराधार वेत्रलतिकाके समान अवसर्न, वीरानेमे खड़ी वेआव्राद भूतोप-  
सुष्टु इमारतकी तरह ढुब्बोंध, परियोके देशकी शाहजादीकी तरह सुन्दर  
एक लड़की, एक प्रौढ़ाके साथ ललवानीकी दूकानपर चढ़ी और उसके  
चढ़ते ही ललवानीकी दूकानमे जैसे उजाला फैल गया। वेपभूषासे पजाबी  
दिखनेवाली ये माता-पुत्री इस दूकानमे पहली दफा दाखिल हुईं।  
दूकानमें आये ग्राहकोकी आहट पाकर और काउटरपर रखे हाथोके उस  
खूबसूरत जोड़ेको देखकर लड़का ठगा-सा रह गया, सम्हल ही न सका।  
आदतके मुताबिक, रोजकी तरह ल्पककर वह काउटरपर भी खड़ा नहीं  
हुआ। कुछ देर बाद मुँह और ऑखोपर हाथ फेर, होश सम्हालता हुआ,  
शो केसके पीछेसे वह काउटरकी दूसरी बाजू आया। सामान लेकर ग्राहक  
चले गये। पर लड़का जहाँ खड़ा था, खड़ा रहा, खड़ा ही रहा और  
शाम हो गई। किसी प्यारी चीजके खो जानेपर मन तमाम और बातोसे  
खिचकर जब उसी एक चीजपर अटकता है तब इन्सान कुछ भूला-सा  
नजर आता है। लड़केकी भी यही हालत हुई। उसकी भस्ती, उसकी  
वेपरबाही उस क्षणसे गायब हो गई, रोजकी तरह उसका विरह-गान भी  
नहीं सुनाई दिया।

ललवानीकी दूकान रोजकी तरह खुलती रही। छोकरा भी जाता,  
सामान बेचता, पैसे लेता, हिसाब करता और दूकान बढ़ाता रहा, पर  
गाना भूल गया। वह किसी गहरे सोचमे पड़ गया। वे दो खूबसूरत हाथ  
उसकी निगाहोसे ओझल न होते। हजारो लोग इस दूकानपर आते हैं  
पर वैसे हाथ कभी नहीं देखे। खूबसूरत हाथोका जोड़ा तरह-तरहके  
रंगोमे और अजीब-अजीब शक्लोमे उसकी ऑखोके सामने नाचता रहा।  
कभी उसे बीले-पीले सॉप दीखते, कभी हाथ फैलाये संगमरमरकी विशाल  
मूर्ति दिखाई देती, कभी मोमका पुतला दीखता और पुतलेकी शङ्क  
मिटकर केवल दो हाथ ही रह जाते। सड़कपर चलते हुए या दूकानमे

काम करते हुए लड़केको हरदम हाथोका वही खूबसूरत जोडा तग किया करता । कभी-कभी उसे लगता उसके चारों तरफ सैकड़ों, हजारों हाथ धूम रहे हैं । कई बार ऐसा होता कि दूकानमें आनेवाले ग्राहकोंके केवल हाथ ही उसे दीखते । सामान उठाते हुए, सामानको थैलियोंमें रखते हुए, पैसे गिनते हुए या दाम चुकाते हुए, कभी-कभी भूतकी तरह हर वक्त पीछे लगे रहनेवाले इन हाथोंसे तग आकर लड़का अपनी आँखें बन्द कर-लेता पर तो भी शायद उसकी बेचैनी दूर न होती ।

कोई आठ-दस दिन बाद वही लड़की फिर दूकानपर आई । आज वह अकेली थी । लड़का उस समय दूकानपर न था । सुर्ख लाल रंगके स्वेटरमें ढके हुए हाथ काउटरपर रखे लड़की प्रतीक्षा कर रही थी और दूकानके नौकर बाअदब खड़े हुए थे, इतनेमें लड़का आ पहुँचा । लड़की ने चार-छः दबाइयाँ माँगीं । फिर कहा ..“इलेक्जियर पैपीन और पैनि-सिलीन इजेक्शन ।” बाकी सब सामान नौकरोंने लाकर हाजिर किया । लड़का बोला, “इजेक्शन चुक गये ।”

फिर उन हाथोपर उसकी निगाह जम गई । बादको घनी लम्बी और सिंची हुई भौंहोंके नीचे बड़ी-बड़ी और नीली आँखोंसे उसकी आखे चार हो गईं । लड़केने देखा उनमें मायूसी और बेवसीका रंग गहरा होता जा रहा था ।

“कहीसे दिला दीजिये, सख्त जरूरत है, ममीको दौरा हुआ है...” लड़कीके इन शब्दोंने लड़केको विचारोंमें खो जाने न दिया । वह अभी आसपासकी दुनियासे बेखबर होने जा रहा था, पर स्वस्थ हो गया, बोला—

“कोशिश करता हूँ, उम्मीद कम है, पता दे जाइये, भिजवा दूँगा ।”

“मेहरबानी” कहकर लड़की जानेको हुई । इसी वक्त उसे कुछ ख्याल हुआ । कहा.. “नमस्ते” । काउटरपर रखे हुए अपने हाथ छणभर

देखनेके बाद वह पीछे हटी। हाथ धीरे-धीरे काउटरसे खिसककर दोनों बाजुओमे लटक गये। लड़कीने धीरेसे सिर उठाया और कहा...“माफ कीजिये, हाथ काम नहीं करते।”

सामान रिक्षेपर रखा जा चुका था। लड़की बाहर आ गई। रिक्षेवालेने सहारा दिया। वह बैठ गई, रिक्षेवाला दूकानमे आकर दाम चुका रहा था। लड़केने पूछा...

“मिसी बाबाका मकान जानते हो ?”

“हाँ हुजूर, बारह नम्बर, नई बस्ती, विल्कुल आखिरी बँगला है।”

रिक्षा चला गया। लड़केकी आँखोंके सामनेका नीला आकाश धीरे-धीरे बदलने लग गया। उसे लगा, वह किसी विशाल, गहरे नीले समुन्दरके बीच खड़ा है। जहाँ तक उसकी निगाह पहुँच पाती है वहाँ तक समुद्र-ही-समुद्र है, एकदम शान्त, न लहरे उठती है, न ज्वार आता है, न हवा सनसनाती है, चारों ओर भयावह स्तब्धता है। सन्नाटेके स्वर मौनको बुला रहे हैं। वह देख रहा है, अथाह जलराशिके बीचोबीच समन्दरकी सुन्दरीके दो अनुपम हाथ पानीकी नीली सतहपर धीरे-धीरे उभर रहे हैं, यह आसन्न प्रलयका सकेत है। अब वह झूबने लग गया है, नीचे, नीचे और नीचे... ...

जाने किस आहटने लड़केको चैतन्य कर दिया। वह तनकर खड़ा हुआ मानो किसीने उसे चोरी करते पकड़ लिया हो लेकिन.. बारह नम्बर, नई बस्ती। हाथ काम नहीं करते... क्यों? क्या कुछ भी नहीं करते? नमस्ते भी नहीं? क्या हुआ है इन खूबसूरत... खूबसूरत पर बेजान, विल-कुल हरकत नहीं होती उनमे? ऐसी सजा खुदा किसीको न दे...

इंजेक्शन खरीदकर उस दिन लड़का स्वयं बारह नम्बर नई बस्ती जाकर दे आया। बुढ़ियाकी तबियत सुधर गई। पहले दिनकी मुलाकातके बाद लड़का वहाँ अक्सर जाने लगा। बातों-ही-बातोंमे एक दिन

उसने जान लिया कि ये लोग पंजाबी शरणार्थी हैं। प्राण लेकर भाग आये हैं। दग्गाइयोने वापको मॉवेटीके सामने कल्प किया। इन दोनोंके हाथ पीछे बॉध दिये गये थे। वापके मरनेपर मॉवेहोश हो गई थी। हाथ रहते हुए भी ये दोनों बेबस, लाचार थी। कुछ कर नहीं सकी। फिर वारी थी लड़कीके छोटे भाई, टाई सालके निटोंष बालककी। मॉ तो पहले ही होश खो बैठी थी। हाँ, वहिन देखती रही, दग्गाइयोने चूहेकी तरह कान पकड़कर कितने ही बार बच्चेको ऊपर-नीचे झुलाया। फिर एक लकड़ीसे पैर बॉध उसे उल्टा लटकाया। दो ने मिलकर उस नन्ही-सी जानको लकड़ीके चारों तरफ जी भरकर धुमाया।

इस नृशस कृत्यसे बच्चा अधिक देर तक नहीं लड़ सका। लड़की जरूर अपनी सख्तीसे बैधे हाथोंके बन्धनोंसे लड़ती रही पर बेकार उसकी सारी ताकत हाथोंमें खिचकर समा गई तो भी दीवालसे सर टकराने और अन्तमें मुर्देंकी तरह लटके रह जानेके सिवा लड़की कुछ नहीं कर सकी। बेहोशीकी हालतमें उनपर क्या कुछ बीती सो खुदा जाने। होश आनेपर मॉ को ढौरे आने लगे और लड़कीके हाथ अजगलस्तनके समान लटक गये और बेकाम हो गये। हाथ रहते हुए भी लड़की कुछ न कर सकी, इस अफसोसने भी उन हाथोंको स्पन्दनहीन बना दिया। लड़केको ऐसा मालम हुआ कि बीती बातोंकी याद हरी होनेपर या अत्याचारकी कहानियाँ सुनने-सुनानेपर, अथवा दुःख सुखके तीव्र आवेशमें कभी-कभी हाथोंमें एकाएक जोरसे सनसनी पैदा होती है। वे एक दूसरेके साथ जोरसे कस जाते हैं और एक-दो मिनट बाद फिर ज्योंके-त्यों गिर पड़ते हैं।

किस कदर मुसीबतमें मॉवेटी बतनसे वापस आकर इस शहरमें रुक गई, उन्होंने कितने फाके किये और कितने ही अविश्वसनीय घटना-चक्रोंमें फैसकर वे जिन्दा निकल आईं और आज तक जीवित हैं। पाकिस्तानमें जमा हुआ उनका रूपया अब मिल गया है और किसी तरह जरूरते पूरी

हो रही है। सारा हाल लड़केने जान लिया। इधर लड़केका बारह नम्बर नई बस्तीमे आना-जाना बढ़ता गया। उधर ग्राहक उससे कहते रहे...“मॉ-वेटी जादू जानती है। छोटे बच्चोंको पकड़ लेती है। बड़ी भयानक औरते हैं। उनके यहाँ कोई जाता-आता नहीं। मनोरमागंजमे रहती थी, टेले मार-मारकर लोगोंने निकाल दिया। लड़की। वह तो बिल्कुल चुड़ैल है। अगरचे ये लोग रिफ्जी हैं तो रिफ्जी बस्तीमे क्यों नहीं मरते जाकर? रहतीं किस ठाट्से हैं, जैसे राजघरानेकी हो। तुम्हारे जैसा आदमी कैसे उनके भाँसेमे आ गया...! कौन जाने कैसे उनका खर्च चलता है और कौन उनकी मदद करता है? तुम खुद समझदार हो, अपना भला-बुरा समझते हो। उनके यहाँ जाना तो दूर उस रस्ते निकलना भी बन्द कर दो इसीमे तुम्हारी भलाई है। कहना काम हमारा, मानना न मानना तुम्हारी मर्जी।”

दूसरे कहते.... ...

“इन सालोंका क्या भरोसा, आजको रिफ्जी है कलको हमारी गर्दन नापने लगे। इनकी चाल ऐसी है कि कितनोंके घर बिगाड़ जावेंगे। व्यापार-रोजगार इनकी बजहसे अलग चौपट हो रहा है। थोड़ी पूँजीसे धन्धा करनेवाले इन महाजनोंके मुकाबलेमे हमारी बधिया बैठ जायगी एक दिन। हूँ! मुँहमे दही जमाये क्या बैठे हो, भाई साहब?”

इधर लड़केको अपने आपसे ही फुरसत नहीं.. लड़कीसे पहचान होने के बादकी घटनाओंके चित्र एकके बाद एक उसके दिमागमे मँड़राते रहते. उन बेजान हाथोंमे कभी-कभी अनायास बिजली टौड़ जाती है। शो केसमे रखी गुड़िया को वे पाना चाहते थे, पर वह उनकी पहुँचके बाहर थी। एक दिन गुड़िया बिक गई।

‘फ्लैग-डे’के दिन झण्डे बेचनेवाले छोटे-छोटे स्कूली बच्चे दूकानपर आये। उस दिन भी वे हाथ बच्चोंको प्यार करनेके लिए उठे थे। बच्चे इधर-उधर टौड़ते फिर रहे थे, पकड़मे नहीं आये। पिर दोनों हाथ गिर पड़े—

जैसे वधिकके बारसे अपराधीका सिर धड़से अलग हो जाता है, जैसे बन्दूक के छुरें लगनेपर उड़ता हुआ पक्की हठात् जमीनपर आ जाता है, जैसे विजलीका झटका आदमीको एकदम ठेल देता है... .

और उस दिन अपने माँ-बापके साथ आये उस सुन्दर अग्रेज बच्चेको तो उन हाथोंने पकड़ ही लिया था, लड़का दौड़कर अपने माँ-बापसे लिपट गया, वे दोनों हाथ जैसे विजलीसे चलते हो, एकाएक उठे, मनचाही वस्तु न पाकर, एक दूसरेसे लिपट रहे। फिर गिर गये, ज्योंके त्यों।

लड़का सोचता रहा। इसी बेबसीको दुनिया जादू कहती है? इतनी बाते सुननेपर भी जब लड़केके मुँहसे शब्द न निकला तो बोलनेवालेने उसे भक्खोर डाला, गोया लड़केको उसकी खयाली दुनियासे बाहर खींच लिया। लड़का बोला—

“हाँ, जी”

ऐसे बेमेल जवाबको सुनकर लोग अक्सर भल्ला जाते और दूकानसे उतरकर अपनी राह लेते।

अब तो लड़केकी हर शाम बारह नम्बर नई बस्टीमें कटने लगी। माँ-बेटीसे मुलाकात होनेके बाद वह खोया-खोया-सा रहने लगा। उसके सारे काम पूर्ववत् चलते रहे, पर जो चीज बन्द हो गई वह था उसका गाना, जिसे पड़ोसी अब न सुन पाते।

करीब दो माह बाद पता लगा लड़केने इसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। लड़कीको भी यही करना पड़ा, और माँ के बहुत रोकनेपर भी एक दिन गिरेमें जाकर दोनों पति-पत्नी बन गये।

हाँ, शादीके दिनकी बात है। लड़का करीब ग्यारह बजे दूकानपर आया और लोगोंने दृतने दिनों बाद फिर सुना... .“आयगा.... . आयगा... .”

उस रात उनका 'हनीमून' था । मॉ, वेटी और दामाद बारह नम्बर नई बस्तीमें मेहमानोंका स्वागत कर रहे थे । शहरके बाहर इस बस्तीमें मुश्किलसे पॉच्च एंगलो-इण्डियन कुटुम्ब थे । वे ही कुछ लोग आये, बैठे, खुश हुए और लौट गये । इसके बाद बुढ़ियाको दौरा आ गया । बमुश्किल तमाम रात बारह बजे, लड़का और लड़की बुढ़ियाको सुलाकर चैनसे बातोंमें लग गये...

".. आज मैं बहुत खुश हूँ ।"

"...मैं भी ।"

"...मेरे हाथ बेकाम न होते तो आज मैं तुम्हें अपने हाथोंसे याँ पहनाती ।"

"खैर, जाने भी दो इन बातोंको । तुम मेरे पास हो, यही मेरे लिए बहुत है । आजकी रात तुम्हे अजीब-सी नहीं लगती क्या ? मुझे लगता है आज मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं है । मेरा गानेको जी होता है । तुम नहीं गाती क्या ?"

"नहीं, तुम गाओ, मैं सुनूँगी ।"

लड़का गाता रहा । उसने लड़कीके दोनों हाथ अपने दोनों कधोपर रख लिये और बैठा रहा । लड़की खड़ी हुई सुनती रही ।

'आयगा...आयगा...' जिन्दगीमें पहली बार इस खुशनसीबीने उसका दामन थाम लिया था । उसके रोम-रोममें खुशी समाई थी । फिर सोती हुई दुनियामें केवल दो ही जागनेवाले, तीसरा कोई नहीं । और लड़केका जादुई कंठ, जो आज बहुत दिन बाद खुला और दूरतक गूँजता रहा ।

लड़का गाता रहा, लड़की सुनती रही, गीत गूँजता रहा । दुनिया सोती रही और दो हाथ, दोनों हाथ, गरदनसे दोस्ती करते रहे । फिर वे पास-पास आनेको उतावले हुए, मिलनेको बेचैन हुए, लड़केकी गरदन बीचमें

थी, वह दवने लगी। लड़का खुश हुआ कि आज उन नाजुक, खूबसूरत मर्मरी हाथोंके स्पर्शका सुख कैसे सयोगसे मिल रहा है!

पर अब गरदन जोरसे दब रही थी। लड़केने गाते-ही-गाते अपने बलिष्ठ हाथोंसे उन नाजुक हाथोंको मिलनेसे रोकना चाहा, पर वे कहौं रुके? लड़केकी सारी ताकत भी उन दो हाथोंको रोक नहीं सकी। वे मिल गये, पर किसीका दम घोटकर।



## मिसला मिश्र

१९५१ मेरे लखनऊ विश्वविद्यालयसे राजनीतिमें एम० ए० कर मिसला मिश्र एक स्थानिक कॉलेजमें प्राध्यापिका नियुक्त हो गई थी। तबसे वहाँ राजनीति पढ़ाती है और वाइस-प्रिंसिपल होनेके नाते दफ्तरका काम-काज भी देखती है। “वस, और कुछ नहीं। लिखना बहुत चाहा है, लेकिन लिखा बहुत कम है, शायद इसलिए कि आदतन ईमानदार बहुत है। जिसका पूरा यकीन नहीं, वह लिखना नहीं चाहती।”

मिसलाजीका यह अनावश्यक आत्म-चेत और तीखी आत्मालोचना, जो उनके साहित्य-सुजनमें अवरोध बन चली है, गुणग्राही पाठकोके लिए निश्चय ही खेदका विषय होगी, क्योंकि उनकी लेखनीमें एक ऐसी सरल मानवीय सवेदना और स्पष्ट ईमानदारी है जो अनायास ही मनको आलोड़ित कर जाती है। साम्प्रदायिक दर्गोकी पृष्ठभूमिपर पत्र-शैलीमें लिखी हुई उनकी इस खरी और मार्मिक कहानीको पाठक सहज ही विस्मृत न कर सकेंगे।

# ० तीन खत

—मिसला मिश्र

[ एक ]

सलमा !

एक अरसेसे तुम्हें नहीं देखा, खबर भी नहीं मिली । जिन्टर्गांकी जदो-जहट इस हृदयक पहुँच चुकी है कि अब रात-दिन इस पेटकी पड़ी रहती है । तुम्हें तो मालूम है, हम अब तीन व्यक्ति हैं—राजेन्द्र, मैं और अशोक । अशोक हमारा बच्चा है, पाँच सालका, बड़ा समझदार । कभी-कभी तो मुझे ताज्जुब होता है, यह बच्चा इतनी बुद्धि कहाँसे लाया है ? पर राजेन्द्रका दावा है, उसका खानदान ही Intelligent लोगोंका है ।

बच्चोंकी चाहना उस ऐशके युगमें तो कर ही नहीं सकती थी । पर उनके पालनेके दृग, रहन-सहन, हजारों बातें थीं । कितनी बड़ी-बड़ी स्कीमें थीं, पर आज इस अशोकको कुछ नहीं दे पा रही हूँ । कभी-कभी दुख होता है, हम मामूली-सी चीजें भी अपने बच्चेके लिए मुहस्या नहीं कर पाते ।

तब राजेन्द्रने हाल ही कॉलेज छोड़ा था । युद्ध छिड़ चुका था । नौकरी मिल गई, और अब हाल यह है कि तनख्वाह है, भत्ता है, पर सबेरेसे शामतक घसीटते-घसीटते बजट खतम हो जाता है । कहाँसे उसकी पढाई निकले, कहाँसे और खरचे ? अपना बचपन याद आता है, और इस अशोकका । कितना प्यारा-सा बच्चा है, और इसे जरा-जरा-सी चीजेके लिए डॉट देती हूँ । बाजारमें निकलता है तो दुतरफा खिलौनोंको यों ताकता है कि वरबस हँसी आ जाती है और डॉट भी दो तो खिसिया जाता है । जरा-सा बच्चा है, पर रोता नहीं । हम कल्कोंके बच्चे आखिर इतना समझते हैं । मन्चलना तो उनका काम है । कितने अरमान हैं मेरी दोस्त,

इस अशोकको आदमी बना देनेके। और अगर यही हाल रहा तो क्या हो सकता है? 'जिन्दगी तो एक खेल है' अहमद भाईका फिकरा याद आ जाता है। और उनके लिए वह खेल ही था। और अब भी जिन्दगी एक खेल है उनके लिए।

आज ही जरा बाजार जाना था और बाजार, तुम जानती हो, मुश्किलसे जरूरत भर रुपया जुटा पाते हैं, बाजार जाते हैं, वह चीज मिलती नहीं और रुपया खत्म हो जाता है। ऐसे हैं यह बाजार। और दिनभर हैरान होते हैं सो अलग। और उस दिन पूरे पाँच घटेकी हैरानीके बाद जब चीज दिखाई पड़ी, तो लगा पीछे भीड़में कोई विलकुल कन्धे तक झुक रहा है।

मैं धूमी। यो तो आजकल इस आम भगदडके जमानेमें सबने तह-जीवका ख्याल बालाये ताकरख दिया है, पर फिर भी। धूमी तो अहमद my God! मैं ऐसे चौकी, और आप बड़े इतमीनानसे बोले, "मैं तो दरवाजेपर ही देख रहा था, पर तुम धूमी ही नहीं।" और मुझे सिर्फ एक ही बात सूझी, "आप मुझे पहचान गये?" अहमद मुसकराये, "तुम्हे भूला ही कब था!" और मैं सामान लेना भूल गई। बिना लिये लौट आई। मैंने उन्हे उस दिन देखा था जब वह इंग्लैड जा रहे थे। उसके बादसे आज देखा था, एक जौ भर भी तो नहीं बदले हैं। बाते करते रहे दुनिया भरकी, अपनी, तुम्हारी, मेरी—और सलमा, तभी आज तुम्हारी याद आ गई है। याद आते हैं वे दिन, जब हम एक थे। तुम तो आज भी बड़ी हो, कभी हम भी थे। तुम तो आज भी जमीदार हो, राजा बाबू हो। सुना है—मियाँ बड़े लीगी है। हमारी क्या, एक कलर्की आदमियत ही कितनी? पर सलमा, जिन्हे भुलाते पाँच सालका जमाना निकल गया, वे दिन अहमदने एक झटकेसे याद दिला दिये। इस जिन्दगीके रोज-नामचेके कुछ पन्ने कितने प्यारे होते हैं सलमा, जिनकी याद इन्सान अपने

सीनेमें किसी गहरे राजकी तरह छिपाये फिरता है, और फिर एक जरा-सी ठेसपर धाद विखर जाती है। अहमदने आज उस दबी यादको यो ही कुरेट दिया—सोचो तो। एक लम्हेमें इतने सालोंका अन्तर मिट गया। मुझे आज भी अहमदको पाकर उतनी ही उलझन थी, उतनी ही झिझक। पर अहमद अब खुल गये है। दिन बीत गये। उस जजवाती तूफानका दौर अब खत्म हो चुका है—अब तो हम इसपर बात कर सकते हैं। कलकी-सी याद है। जो बात तुम्हारे लाख पूछनेपर भी कभी इकरार नहीं कर सकी थी वह आज मान लेती हूँ। खुट बता भी दूँगी—तब जो एक हगामा खड़ा हो गया था, अहमदको घर छोड़ना पड़ा, यह सब्र कैसे हो गया यह तो आज भी नहीं समझ पाती हूँ।

वह दिन याद है जब यकायक आकर एक दिन तुमने कहा था, “सुनो प्रीति, यह अहमद भाई है न, बड़ा गडबड कर रहे हैं।” “क्यों?” और तुमने बड़े बुजुर्गोंकी तरह सजीढ़ा होकर कहा था, “वह किसीसे ‘यार करते हैं।” मैंने भी अनजान-सी पच्चीसों बाते पूछी थी। पर आज पूछती हूँ, क्या था जो वह किसीको प्यार करने लगे। उन्होंने कोई गुनाह तो किया नहीं। ‘यार जब होता है, हो ही जाता है। अगर नाप-तोल, जॉच-पड़-ताल लायक ससारी बुद्धि काम ही करे तो कोई ‘यार न कर, व्यापार ही क्यों न करे। और प्यार। वह शायद तब मैं भी नहीं जानती थी।

उन दिनों जब नये-नये आये थे घरके लोग, नई जगह थी, रोज घूमने चल देते थे। घर भरमें अकेली पड़ी रहती थी। टाइफायडसे हालमें ही उठी थी—कमज़ोर, चिड़चिड़ी। उस दिन शायद किसीकी दावत थी। पार्टीका इन्तजाम हो रहा था। बहुत बड़ा इन्तजाम था। और मैं बाहर, उपेक्षित-सी पिछले बरामदेमें यूँ ही कुर्सीपर पड़ी थी। सारे दिन बादल घिरे रहे। ऐसे दिन जाडोमें कितने प्यारे लगते हैं। सनसनाती हुई हवा, घूमते हुए सूरजमुखी! और वह बारह-तेरह सालकी टाइफायडके बाद कमज़ोर,

चिढ़िचिड़ी लड़की जब लड़कर किसीकी परवाह न पाकर वरामदेमे खीजकर पड़ रही तो बरबस अपनी असमर्थतापर रुलाई आ गई। पड़ी-पड़ी रोती रही। पॉव हिलाती रही और यकायक एक फुटवाल दनसे आकर पेटमें लगा। एक क्षणको सब ऊपर-नीचे नाच गया। तिरछी होकर उलट रही कुर्सीपर। जब दुनिया धूम चुकी तो खिलाड़ी भी ढीखे। फेकनेवाला लड़का तब आकर अपनी बॉल ले गया। उतना बड़ा लड़का, क्या कहती? और तबसे अक्सर वह शायद उस कसूरके एवजमें खैर-खबर ले लेता, तस्वीरे ला देता, तितली पकड़ देता, और यह देना-पावना सालोमें बढ़कर किस दिन इतने पैमानेपर अदल-बदल करनेको तैयार हो गया, कोई न जान सका।

तुम्हारी चचीको अहमदका मजाक बनाते मैंने भी देखा था, पर तब तक मुझे खुद पता कहाँ था? वह तो उस दिन तूफानके बाद जब लगां कम्पाउण्डका कम्पाउण्ड तक हिल उठा। चलते बक्क अहमद आये। अपने कमरेमें बैठी मैं तब किसी काममें लगी थी। खिड़कीपर छाया पा, 'सर उठाकर देखा अहमद थे। "मैं चला जा रहा हूँ..." "मैं उन्हें ताकती भर रही... "तुम्हे हिन्दू-सुसलमानमें फर्क लगता है प्रीति?" लेकिन मुझे तब नहीं लगता था, और अब तो वे सब दीवारे ढह ही चुकी है। मैंने कहा, "नहीं!" और उस दिन पहली दफा अहमदने अपनी जुबानसे कहा था, "प्रीति, तुम्हे प्यार करता हूँ, कबसे करता हूँ यह नहीं जानता। पर करता रहूँगा जिन्दगी भर, यह अच्छी तरह जानता हूँ।" और दूसरे दिन अहमद चले गये। मुझे मालूम था उनके रहते भी और उसके बाद भी। मेरे पिता और तुम्हारे अब्बामें रोज बाते होती रही। मैंने खुद विलायती डाकके लिफ्फाफे पिताके कमरेमें धरे देखे; पर वे खत क्या हुए मुझे नहीं मालूम, हँडनेपर भी नहीं मिले। और अहमदने मुझे लिखा! इतनी खत-किताबत के बाद पहलूका रुख मालूम हो ही गया होगा! मुझे खुट नहीं समझ

पड़ता था कि आखिर यह इन्सान-इन्सानमें भेट कैसा ? . इन्सान इन्सान को चाह न सके, प्यार न कर सके । हफ्तों उलझी रही । फिर तो यक्कायक हमारी किश्ती उलट गई । वह मैंभधारमें तो थी ही जैसी कि सभीकी रहती है । जिन्दगीकी उस भाग-दौड़में किसे इतना ख्याल था कि कल कैसा आयगा । और एक दिन जब जिन्दगीकी गाड़ी उस अपनी चिकनी सपाट राहसे चूक गई तो आज भी वहींकी वही है । और क्या बुरा है, एक हद तक खुश भी हूँ । जिन्दगी भरकी उस अनिश्चित राह—न जमीनपर पॉव, न सतहपर कावू—उस दुलमुल ज़िन्दगीसे हट अब हम एक टिकाने तो आ लगे हैं । हौं जमीन है, सो भी ककरीली, नम, वेहया । एक कर्ल्ककी आट-मियत ही क्या । मगर खैर । मुझे पता था सलमा, खूब समझती थी । सोसायटीके खम्मे पोले हैं, खोखले, जमानेकी हवाका एक झोका भी इन्हे भरभरा देनेको काफी है । हजारों दफा सोचा, समझनेकी कोशिश की, पर आश्र्वय आज भी है । वह बड़े-बड़े दिमाग, वह सरगना दुनिया भरकी सोचा किये, अपनी कभी नहीं सोच पाये । तडक-भडक, नाच-रग, सैर-सपाटे, दोस्त-दावत कौन नहीं समझता था, वह वहिया मौसम भरकी है । क्लाइमेक्स आया—वह दफ्तीकी आलीशान इमारत ढही भी तो शानके साथ ! हर चातमें बड़ोंकी नकल भर थी । हम मध्य-स्थितिके लोग तब भी पोले थे, आज भी हैं । मुझे ताज्जुब है किस हिम्मतपर यह ऐशका ताजिया पग-पग पर हिलता-चलता था । मिनट-मिनटकी खैर मनानी पड़ती थी । वह अनिश्चितता, आये दिनका वह शशपञ्ज उनका दम क्यों नहीं धोट देता था ? और एक तहलका मचा—मॉका हार्टफेल हो गया । खबर ही ऐसी थी । पिताने खुदकशी कर ली । उनकी वह शक्ति, रग-रगकी ऐठन, खिचा हुआ चेहरा, उस ऐशपसन्दीका अन्जाम, एक मशहूर इज्जीनियरकी ट्रेजेडी, चन्द अखबारोंकी कटिङ्ग और बस, हमारे सर-सब्ज धोसले जो लू-लूपटमें भी फूलते-फलते थे अपनी नमी खो बैठे । एक तूफान आया, किश्ती उलट

गई । यह समयका तकाजा था । एक अल्टीमेटम—हम तुम्हें बदलनेको मजबूर हो इसके पहले तुम बदल जाओ वेहतर यही होगा, नहीं तो नेस्तनाबूद होगे और नेस्तनाबूद ही हुए ! आह सलमा । अब तुम्हीं कहो—उस गुजरी कहानीमें ऐसा है भी क्या जो सहेजा जाय...तबसे सब भुलाने की कोशिश की । जीवनके उस अन्धडमे जब सब बीरान हो चुका था, जीवनके उस अनजान चौराहेपर इस राजेन्द्रने राह सुझाई । मेरे भाग्यकी प्रचण्ड-धारा जब किनारे-कगारे ध्वंस करनेपर तुली थी तो यही राजेन्द्र किनारेका वृक्ष वन साध बैठा था । तबसे यही आश्रय है सलमा । इस राजेन्द्रने मुझे क्या नहीं दिया; अब तो घर है, द्वार है, पति है और यह अशोक है—

तुम हँसोगी, यह राजेन्द्र अब तक मुझमें, अपनेसे फर्क मानता है । बरसों तक भेप गई नहीं । घरके खत दबाये रहता है । हमारे पुराने सस्कार अब तक उसपर हावी है । अपनेसे वह मुझे जँचा समझता है । यह वह घाव है जो हम दोनोंको कोचता है । काश मेरा वह जमाना कुछ न होता, राजेन मुझसे खुल सकता । अब तो इस जीवनके हम आदी है । छः साल बीत चले, पर आज भी कभी उसका व्यवहार खुल जाता है । मैं चुप रह जाती हूँ । आज ही अहमदसे बाते करते-करते देर हो गई : अहमदका इसरार था मैं उन्हें स्टेशन तक छोड़ने चलूँ, और आपे रास्ते मुझे जैसे ख्याल आया, “अहमद, मैं नहीं जाऊँगी । तुम्हारी बेगम साथ होगी । मुझे न जाने कैसी उलझन लगेगी ।” लेकिन अहमदको सब खिलवाड है—तुम्हारे तो भाई है, तुम्हें क्या बताना । मुझे बेवकूफ बनाने लगे—“हॉ है तो बेगम साथ, पर चलो तुम तो देखने लायक हो प्रीति, मियॉकी जान मुसीबत बना देनेवाली तुम्हीं हो । उसे देखना चाहिए ।” लचार जाना पड़ा । वहॉ कोई न था । मैं उन्हें पहुँचाकर लौट आयी । चलते-चलते बोले, “कभी आऊँगा प्रीति, तब तुम्हारे यहॉ

ठहरेंगा। हिन्दुस्तानका इतिहास लिख रहा हूँ। इस लखनऊकी जगह नये इतिहासमे - भी होनी चाहिए, और मेरी दिलचस्पी इन बातोमे तुम जानती हो, नहीं के बराबर रही है।” मैं चुप रही। देर हो रही थी। मुझे ख्याल हो रहा था, अशोक लैट आया होगा। अकेला बैठा होगा। पर घर पहुँचकर देखा—बाप-बेटे दोनों पडे हैं। मुझे सच ही बुरा लगा—देर हाँ गई थी। चुपचाप अन्दर चली गई। जल्दीसे खाना तैयार किया। अशोक लगा अहमदके बारेमे पूछने। मैं तुम्हें कह चुकी हूँ सलमा, यह अशोक इतना जिजासु है कि मेरी अकल हवा हो जाती है। कहौं तक जवाब दूँ। राजेन्द्रसे ही खूब पटती है। बराबरवालों जैसा तो वर्ताव करता है। मौज होती है तो ‘राजेन सुनो दांस्त’ और नहीं तो चुपचाप भी पड़ा रहता। आज अहमदमे न जाने क्यों फिर उसकी दिलचस्पी जाग उठी। उसे क्या बताऊँ, मैं तय नहीं कर पाती। अपने अतीतमें सिर्फ एक ही राहत है, राज है, वह खोल देना मुझे उचित नहीं लगा। चुप रही। और राजेन्द्रका और भी बेटब शुकाबला था। राजेन्द्रके इस रूपकी कल्पना भी नहीं की थी। मैं लौटी तो चुप पड़ा था। मैंने समझा, यका है, सो लेने दो। पर जब पड़ा ही रहा, मनमे एक खटक उठी। ‘आखिर है क्या?’—मैंने आवाज दी तो चुप। और अशोक बोला, “दिक न करो भाई, राजेन बीमार है। क्यों राजेन?” मैंने सिरपर हाथ रखा, गर्म नहीं मालूम हुआ। मुझे ताज्जुत था, क्या मामला है। छृटनी तो एक तरह जानी हुई है। “क्या बात है राजेन?” मैंने हिलाया आखिर। “कौन था तुम्हारे साथ आज?” करबट बदलकर पहला सवाल राजेनने किया। ओह सलमा, तुम राजेनकी वह सूरत देखती। बेबसी कभी इतनी सजीव हो सकती है। राजेन कभी सुन्दर था ही नहीं। उसकी कुरुपता आज कितनी भयानक लग रही थी। मैंने आज तक किसीको सफाई नहीं दी और आज जरूरी था कि दूँ। नहीं तो इस कमजोर इन्सानकी हत्या होगी।

मेरा हाथ आप-से-आप हट गया । वह अब भी ताक रहा था मुझे । एक क्षण भरमे मैंने जवाब दिया, “राजेन तुम्हे मुझपर अब भी यकीन नहीं है ?” और जिन्दगीमे पहली टफा राजेन खुला, “प्रीति, सवाल यकीनका नहीं है । समाजमे आज मेरी हैसियत क्या है ? मैं जो कुछ हूँ, जानता हूँ । सूरत नहीं है, हैसियत नहीं है; मेरी कमजोरी कभी उतावली हो जाती है । तुम्हें क्या दे सका हूँ ? मेरे पास पैसा भी नहीं है प्रीति, अगर मैं . . .”

“पैसा तुमसे बड़ा हो सकता है राजेन ?” मैंने कहा—

“हाँ, मैं शरीर हूँ, मजबूर । और प्रीति, आज मुझे यह माननेमे शर्म नहीं आती कि मुझे भी जिन्दगीकी हविस है । यह कुत्तोकी जिन्दगी ! तुम यकीन पूछती हो, मुझे खुदपर यकीन नहीं । कल मैं अभावोमे क्या कर बैठूँ ?”

उसके ऑसू भर आये । मुझे जब्त करना आता है । पर जब्तकी भी हद होती है । वहाँसे उठकर कमरेमे आकर पड़ रही । मैंने खानेको नहीं पूछा, पीनेको नहीं पूछा, जिन्दगीकी भयानकता मेरे आगे साफ़ हो गई । इन्सान क्या पा रहा है सब खोकर । कभी-कभी जीमे एक हलचल मच जाती है; कहाँ जा रही है यह नाव, खेवैयापर भरोसा नहीं । मुझे ऐसी जगह रोना नहीं आता । जिन्दगीमे वेह्यापन दिन-दिन बढ़ रहा है । आये दिनकी मुसीबतों और खटखटोने जीवनकी भावुकता सोख ली है । बाकी है सोचनेकी किया, और वह जब तुम ख्याल करोगी, लगेगी कितनी भयानक है ! जवान इन्सान अगार जीवनकी निस्सारता ही सोचने लगे तो जिन्दगी बेरौनक होनेमे क्या बाकी रह जाता है । पर इन हकीकतोपर पर्दा डाल इन्हें रगीनियों मान लेनेके लिए वह अज्ञान, वह मूढ़ता, कहाँसे लाऊँ ? समझ-दारोंकी भी कैसी मुसीबत है ! राजेन उठ आया, मगर माफी नहीं माँग सका । एक दिन आता है सलमा, जब भावुकता चुक जाती है, मान-मनौवल

की गुजाइश नहीं रहती, सुनने-समझने किसी चीज़की गुंजाइश नहीं रहती। बाकी रहता है एक बोझ ढोना।

“अपनी कमज़ोरीके लिए दुःखी हूँ प्रीति। प्रीति, तुम उसे समझ सकती हो। तुम ही तो एक मेरा सम्बल हो। जितना ही कमज़ोर होता जाता हूँ उतना ही तुम्हें कसकर थामना चाहता हूँ।”

अब तुम्हीं कहो, उसे माफ करनेको क्या बचा था? और क्या कट्ट-कर वह माफी माँगता? और इस तिल-तिलकर घुलनेवाले मानवपर मेरा दुःख तुम क्या समझोगी? मैं कितना रोईं। अहमदके बारेमें वह सुन चुका है मुझसे ही। पर अचानक एक वक्त जन जिसकी तमाम कुछतोंसे जवाब पा वह घर लौटे, उसे उसका वेदा बतावे—उस आदमी-की याद दिलावे—जो उसका घर बसनेसे पहले, उसके और उसका घर बसानेवाली हस्तीके बीच आ चुका हो, जिससे उसे जल्न न हो, हार मंजूर हो। मजबूरी सोचो सलमा, एक मिनट। कितनी बड़ी ट्रैजेडी है! मैंने उसे माफ कर दिया। यह तो उसने मुझे बाढ़मे बताया, ऑफिसमे उस दिन आम नोटिस आया था तीन महीनिका, और यह नई बात नहीं है। यह तो जाना हुआ था। जब लडाई खतम होनेकी प्रार्थनाएँ की जाती थीं तो कुछ ऐसे भी थे जो इस लगी आगमे पेटके टिक्कड़ सेक रहे थे। इसलिए लडाई खतम होनेपर सदमा भी उनको जरूरी था। और तुमसे सलमा क्या चोरी! उस दिन छुट्टी थी, और हम कहीं जानेको तैयार खड़े थे, जब यकायक गहरे शौरके साथ साइकिलपर अखबारवाला चिज्जाता चला गया था—लडाई खतम हो गई। सुनकर एक मिनटको हम खुश हो गये और दूसरे क्षण राजेन फक्क चेहरेसे बोला, “मैं नहीं जाऊँगा। मेरी तवियत टीक नहीं।” सच बात है सलमा, हमें धक्का लगा था। कितना बड़ा स्वार्थ!.. अदर आकर फिलेंसफरोकी तरह बुझी मुसकान विस्वेरकर राजेन बोला, “धोसला समेटो प्रीति, दिन बीत गये।” देखा

सलमा, उस दिन जब दुनिया खुशीके आँसू रोई, विछुडोकी मुराटे वर आई, सियासतकी दम घोटनेवाली आवोहवामे जवानी-मस्ती भर गई, हम जल्डादोंसे सहमकर रह गये ।.. यह है हमारी जिंदगी । और तबसे ही यह घर, यह छोटा-सा घर, यह छोटी-सी गृहस्थी—इसका क्या होगा, यह चिन्ता सवार है । जब दुनिया भरके भत्ते मिलते थे तभी पहलीसे तीसतक सौ दफा मरकर जीते थे, तो अब क्या होगा ?.. दुनिया वही, तेजी वही, सिर्फ नौकरी नहीं होगी । सही मसला तो अब आया है । अब तक किनारोकी जंग थी, अब घरेलू है । मुझे तो कुछ सूझता नहीं । यह भी सब अहमद ही बता रहे थे । अब बैठे-ठाले आदमीको सोचनेको वक्त मिलता है तो जमीन-आसमानके कुलांधे मिलते हैं । हमें तो क्या बताये चैन नहीं, आराम नहीं, और सच पूछो तो तकलीफोंका हिसाब लगानेको वक्त तक नहीं मिलता । मगर फिर भी यह खत लम्बा हो गया, इतना कि मुझे खुद ताज्जुब है । पर सात साल बाद लिख रही हूँ और तुम्हे कमसे कम पढ़नेका वक्त तो मिलेगा ही सही, पढ़ लेना । सुबह तक ख्याल न था और दोपहरमे अहमदने मिलकर तमाम सालोंका फर्क मिया दिया । और लम्बा होते हुए भी खतमे सब हिसाब साफ़ है, बाकी कुछ नहीं । वस.

तुम्हे मेरा यार

—प्रीति

[ दो ]

नजीर मजिल,

नजर बाग,

लखनऊ,

सलमा ।

खत पाते ही तुम खुराफात उगलोगी, मुझे यह यकीन था । तभी तो सब पहले ही लिख दिया था । अब और क्या बाकी है ? रोमास !

नहीं, अब और नहीं सूझती। तुम्हें सोचो और तुम्हेंको मुदारक हो। जिन्दगीमें आराम है और वेफिकी, खूब खुगफात सोचो। मुझे क्या कहना है, और अहमदके लिए क्या बताऊँ। एक रुहानी प्यार, या जो कुछ कहो मुझे उनसे रहा है और रहेगा भी। कुछ बाते हैं जिन्दगीमें सलमा, जिन्हें हम भुला नहीं पाते। वह सैलाब, वह जुनून और अहमद, . पर जाने दो वह बात उन दिनोंकी है जब हम जवान थे, रंगीनियों थीं, बहारे थीं, अब तो जिन्दगीमें फक्त एक प्यास वाकी है—न साकी है, न शराब है, और हविस भी तो मिट गई है। अब तो महज एक कोरम पूरा करना है। जिन्दा है, इसलिए कि और कोई काम नहीं सूझता !

आजकल न जाने कैसी नहूसत छाई रहती है। एक अजीब उधेड़-बुनमें दिन कटते हैं। राजेन अजीब हैरान है। नोटिस पद्रह दिनमें खतम हो जायगा और नौकरी अब तक नजर नहीं आती। सुबहसे शाम तक भागदौड़में। रात गये घर लौटता है। मुँह दिन-दिन सूखता जाता है। कल कह रहा था, कहीं एक मिलमें किसी एक मेकैनिककी जरूरत है और राजेन तैयार है। अभी काम कहीं सीख लेगा और काममें लग जायगा। रात गये काला-धुध होकर लौटेगा। मुँह अँधेरे भागेगा

देखा सलमा ! क्या तेजीसे सीढियों उत्तर रहे हैं। कभी हम पैसेवाले थे। कभी दिमागकी कमाई खाते थे। आज हम श्रमजीवी हैं। ठीक ही है। जो होना है, होकर रहे। इंतजार क्या ? दबाव जितनी जल्दी पड़ता है, जितना गहरा पड़ता है, प्रतिक्रिया उतनी ही टिकाऊ होती है। और इस दबावकी भी कहीं न कहीं तो हठ होती है।

सलमा। पिछले खतमें तुम्हें लिखा भी था कि फिक्र सवार है ‘क्या होगा ?’ दिमाग उयादा काम नहीं करता। सोचनेकी आटत तो कभी नहीं थी। पर अब यह दिन विवश कर रहा है। कैसे एक-एक दिन करके हम

मुसीबतजदा एक हो रहे हैं। जमाना लाचार कर रहा है—कुछ सोचे। और तुम जानती हो, मेरा दिमाग राजनीति नहीं समझता है। ज्यादा बातें तो नहीं आती! क्यों हुआ? क्या हुआ? और क्या होगा? यह मेरी बुद्धिके बाहर है। फिर भी जिन्दा रहनेका अधिकार हमको चाहिए ही। इंसानियतका तकाजा है, ऐश-आराम मयस्तर न हो, जिन्दगी कायम रखनेको रोटी तो चाहिए ही, जब इतना भी न मिले तो इंसान क्या करे?

मुझे कोई समझाये सलमा, ( तुम्हारा तो सियासतसे खानदानी रब्त-जब्त है, अब भी एक लीगी नेताकी बीबी हो ) आखिर इस भुखमरीका, कगालीका भी इलाज है? अब यह वर्दाश्तसे बाहर है। घर खाली है, बक्स खाली है, पेट खाली है, जेब खाली है, और किसीके भरनेकी उम्मीद नजर नहीं आती।

वेकारीका राक्षस मुँह खोल चुका है। फटेहाली गजभर फासलेसे धूर रही है। दफ्तरोंके स्थाफ पतझड़के वेकार पीले पत्तोंसे झड़ रहे हैं, ऑफिसकी डबल-रुटीन जिनकी जिदादिली चूस चुकी है। आये दिन 'रोटी दो, कपड़ा दो' का शोर मचता है, मचकर रह जाता है। तगी दबाती चली आ रही है, हमारी आदमियत इस बोझसे दबो दम तोड़ रही है .... और वतनके लीडरोंको हमारी फिक्र नहीं, उन्हे अपने झगड़ोंसे फुरसत नहीं। अपनी टेक ( कितना स्वार्थ है सलमा! ), अपनी बात रखनेके लिए यह प्यारा लहू, यह इसानका लहू इन ककरीली सड़कोकी दरारोमें भरा-जाता है..... पैरों रोदा जाता है.....

वह कौन-सी वहशत है जो अच्छे-भले इन्सानको खूँखार बना देती है? सदियोंसे सीखी हुई तहजीब एक लमहेमे भुलाकर इन्सानमें खुदगर्ज खूँखार इन्सान जाग उठता है। लाशे तड़प उठती है। घर बीरान हो जाते हैं। बच्चे यतीम हो जाते हैं। बीबियाँ लावारिस हो जाती हैं।

टिलोपर पड़ जाते हैं वह गहरे नासूर जो फूटते नहीं, रिसते रहते हैं। यह टरारे, यह वह खाइयाँ हैं सलमा, जो पूरी नहीं जा सकतीं। कैसे पुरे मरने वालेकी यादे? कैसे सुमकिन है मिट जाय उनकी तसवीर!

यही एक ख्वाजा साहब रहते हैं। नजमा उनकी एकलौती लड़की है। खासी सुन्दर लड़की है। उस दिन बम्बईके दर्गेमें बेचारीका पति मारा गया। सलमा, सलमा! उसका दुःख, उसका विलाप मुहल्ला हिलाये देता है।

जानती हो क्या कहती है—“हाय अब्बा, जमील मारा गया! मैं जमीलको खोकर इस पाकिस्तानसे क्या भर पाऊँगी!” और सलमा। हम अपने खुन और जिन्दगीकी कीमतपर पालकर उन आरोको इस खूँरेजीके हवाले कैसे कर दे... ...और इस पाकिस्तानसे लोगोंको नाराजी क्यों है, मैं समझ नहीं पाती। बच्चे नादान रहते हैं, साथ-साथ निभ जाती है। वही जब बड़े हो जाते हैं, स्वार्थोंकी टक्कर होती है। हकोपर चोट पड़ती है। एका चटख़ा जाता है।

बुजुर्गोंका टिल गवाही नहीं देता। पर वे बच्चे तो अलग होकर रहते हैं। जवान लड़के जब घर-द्वार लेकर अलग रहना चाहे तो उन्हे रोकना कहॉंकी अब्लमन्दी है। अपने पसन्दका घर, अपने पसन्दकी जिन्दगी, यह तो हरेकका हक है। उसको दबाना कहॉंका इन्साफ है? मुझे ज्यादा बातें तो नहीं आती है। राजनीति जाननेको फुरसत ही कब मिली? फिर भी इतना तो समझ पाती हूँ कि जब्रतक समाजके इस सदियों पुराने दोंचेको बढ़ला नहीं जाता नये इन्सानकी नई माँगे, नई उमरे उसमे फिट नहीं कर सकतीं। यह तो जरूरतके मुताबिक नई चीज़में ही मिल सकती है।

जमीनका बट्टवारा ही खुशहाली नहीं ला देगा। उसके लिए तो नया हिन्दुस्तान बनाना पड़ेगा और यह नया हिन्दुस्तान क्या इन पुराने दिमागोंसे हासिल होगा जिन्हें आज हम जवानोंकी

दिखाई राहपर चलनेमें एतराज है ? ज़मानेके साथ इन्सानकी जेहनियत बदलती है, सभ्यताके हरवे-हथियार बदल जाते हैं और सदियों पुराने दिमाग उस सत्यको भी नहीं मानना चाहते । वे माने या न माने, जब जल्लरत होती है राह बन ही जाती है, और आज जल्लरत है तो राह आप बनती जा रही है । लीडरोंको तो अपनी-अपनी है, और इस बीच हमारी हालत बट्से-बदतर होती जाती है । दम तोड़ने को आ पहुँची है । आज हमलोग किस तूफानसे गुजर रहे हैं, उसे न पूछो सलमा ! तुम रईस हो, रईसजादी हो । रोमान्स और हकीकतका कोई मुकाबला नहीं है ।

मेरा तुम्हारा भेद खतोंसे जाहिर है । मेरी इतनी दास्तान सुननेके बाद भी मुझे बताती हो अहमद मेरे बारेमे क्या कह रहे थे । बख्शो मेरी जान । मुझे सब पता है । वह सैलाब्र, वह जुनून । कभी मैं भी जवान थी । दुनियाके जर्रे-जर्रे मेरो रोमान्स नजर आता था ..और आज मन इन्सानियत खोजता है । राशनकी दूकानपर कपड़ेकी धक्कम-धक्कामे जब कोई टकरा जाता है तो बेचारेपर तरस आ जाता है । उसकी नजरोमे रोमान्सकी खोज । वह दिन बीत गये...मैं कह रही थी...ठहरो.. देखो कोई आया है दरवाजे पर । दो मिनट, अभी...

हों राजेन था । इसे क्या हो रहा है सलमा ! मुझे बड़ा डर लगता है—राजेन वह लकड़ी है जो झुकती नहीं, टूट जाती है...और इतने मासूम दिलोका आजके हिन्दुस्तानमें क्या गुजारा है । चुप पड़ा है । कल पूछ रहा था कितने रुपये हैं मेरे पास । तुमसे भी नहीं छिपाऊँगी.. कुल ५७॥=) है । मैं इस राजेनको बहलाना चाहती हूँ, पर कैसे ? यह नहीं समझ पाती... . और आज तो कलसे यह अशोक भी बीमार है । रह-रह कर कहता है, गला जकड़ रहा है । न मालूम इसे भी क्या हो रहा है । हरारत तो ज्यादा नहीं है... ..

इसकी जरा-सी बीमारीपर मेरे होश बिगड़ जाते हैं। न जाने क्यों  
यह राजेनका अशोकपर हदसे ज्यादा प्यार कभी-कभी डरा देता है।  
राजेन इतना बदकिस्मत क्यों है सलमा, जिसका दुनियामें मुझे और  
अशोकको छोड़कर कोई नहीं! .एक मिनट देखो, फिर खॉस रहा है..  
अशोक. अशोक...

अच्छा सलमा, फिर लिखूँगी। इधर वक्त कम मिलता है, इसलिए  
सोचा आज ही लिख लिया जाय, फिर जाने कब फुरसत हो।

यह अशोक न जाने कैसा-कैसा कर रहा है। फिर सलमा, मुझे अब  
कुछ कहना चाकी नहीं है। तुमने अब सब जान लिया।

फिर लिखूँगी, यह अशोक आज न जाने क्या कर रहा है जवाब देना!

सलमा मेरा प्यार।

—प्राति

[ तीन ]

नजीर मजिल,

नजरवाग,

लखनऊ

सलमा !

कहर घरपा हुआ सलमा इस नाचीज इमारतपर, और वह ढह  
गई, बिना किसी शोर-गुलके। अशोक मर गया। आज दो दिनसे राजेनका  
भी पता नहीं है। उस रात जब तुम्हे खत लिख रही थी, हल्की हरारत  
थी। गलेमें खराश बता रहा था। सवेरा होते होते डिपथीरिया हो गया  
सलमा। पर मैं यह तब न जान सकी। राजेनकी ओखमें एक बूँद नहीं आई।  
आखिर वक्त जब उसे रह-रहकर ऐठन हो रही थी उसने यकायक हाथ  
फैला दिये। मैं भुकी, सोचा शायद कुछ मुझसे चाहता है, पर अशोक  
चारों तरफ देख रहा था, राजेन भुका। अशोक गलेपर भूल गया।

आखिरी बार (अशोक !) राजेन अपने दोस्तसे मिला और निर्जीव शरीर विस्तरपर रह गया।

जिन्दगी क्या है सलमा ! कल तक जो हममे से था आज दुनियामे उसका कोई हिसाब बाकी नहीं। लोग घर बदल देते हैं, सामान फेंक देते हैं...जो बीत गई सो बात गई...और मैं यहाँ क्या-क्या हटाऊँ ? जरें-जरेंमें अशोक रम रहा है। इस घरमे हमसे ज्यादा उसकी सॉस रौशन थी।

बीमारीकी हालतमे उसकी सॉस जब घुट-घुट जाती, गलेमे खर-खर कफ खरखराता, और वह छृटपटाकर सॉसके लिए विस्तर पर तडपता। उसके धारो आँसू वह चलते और हम असहायसे पास खड़े थे बिलकुल लाचार....और हमारा बच्चा हमारे सामने तडप रहा था।

हम उसका इलाज भी न करवा सके सलमा ! यही कलंक रह-रहकर आता है। हम उसे जिन्दगीमे कुछ न दे सके तो सलमा वह मौत भी अकेला ही भेल ले गया।

हमारे पास कुल ५७॥=) थे और एक इजेक्शन २५) का आता है। छः इजेक्शन ! हम इतना कहाँ पाते सलमा ! मेरे पास जेवरके नाम एक छल्ला नहीं है, तुम्हे तो मालूम है। अमीरी लुट चुकी थी जब घर छोड़ा। और यह राजेन कर्ल्क-पेशा, पेटकी रोटी ही नियामत थी। पैसेकी कीमतका आज ख्याल हुआ जब मैं अशोककी जानसे हाथ धो बैठी। आह पैसा ! मेरा अशोक पैसे-पैसेको तरस गया। मामूली खिलौने तक न दे सकी। उसके कपड़े दबा-दबाकर रखती रही और वे अब तक पढ़े हैं। पहननेवालेकी ठरकार खत्म हो गयी। मेरा यह बच्चा सलमा तस्वीरों चाली किताब तकको तरस गया...

खीचा पैसा उसके भी काम न आ सका। हम उसका इलंजि भी न करवा सके सलमा। राजेन पागल होकर दौड़ा। घर-घर मॉगा और

मायूस होकर लौट आया । उसका प्यारा अशोक तकलीफसे छुटपटाता था और राजेन बापका दिल लिये बुत-सा खड़ा ताकता रहा ।

दिया बुझ चुका था । घर भरपर मौतका अँधेरा छा गया था । अशोकके जिसमें अब भी गर्मी वाकी थी । मुझे यकीन नहीं हो रहा था । यह ख्याल कि जिसे हम प्यार करते हैं वह अब नहीं है, कितना डरावना होता है । Ah God ! what a fearful thing, to see a human soul take wing

सलमा, मौत किसीके वसकी बात नहीं । जो पैदा होता है वह मर भी जाता है । पर जो बीमार टवा भी न पा सके उसके मॉ-ब्राप वह सदमा नहीं भूल सकते । मैं सोचती हूँ सलमा, काश हम उसकी टवा करा पाते तो वह बच ही जाता । रह-रहकर यही ख्याल मुझे बेचैन कर देता है । एक हूँक-सी कलेजेमे उठती है । लगता है, पकड़ते-पकड़ते कोई चीज हाथसे निकल गई ।

जरा-जरा-सी बात । उस दिन उलझ रहा था—‘मुझे बाल ले दो ।’ रो-रोकर रह गया और सलमा नहो ले दी बाल । सारा बाजार धुमा, बेव-कूफ बना लौटा लाये । घर तक पूछता आया, ‘कब तक मँगा दोगी ?’ कह दिया, अगले महीने ले देंगे और अगला महीना कहाँ आया, खिलाड़ी पहले ही चल दिया ।

राजेनका दुःख मामूली नहीं है । उसका बच्चा जरा-जरा-सी चीजें तरस गया और जिन्दगीमें ही नहीं, वह विचारा तो कफन भी नहीं पा सका ।

किसी ल्योहारकी छुट्टी थी । ओंफिस बन्द थे । न परमिट मिली, न कफन । यह अशोक इस तरीमे यों “कज्ञा ले चली चले” . . सा बीत गया ! औरोंके बच्चे खाते थे, पहनते थे, वह देख-देखकर रह जाता था । अपना बचपन याद आता था । यह बदकिस्मत अशोक तरी और तेजीमें

ही चल दिया । और इसका चला जाना यो जिन्दगी बीरान कर जायगा यह तो उस वक्त् समझ ही नहीं पड़ा था ।

एक गजभर सफेद पापलीनमे—जो उसीके कमीजके लिए पड़ी थी—उसे लपेटकर लोग जब चल दिये तो लगा कि ढिलमे दरार पड़ती चली गई ।

मौतकी जुडाई तो रातके सन्नाटेमे, कमरेकी नहूसतमे, समझ पड़ी । हिमोटाइज-सा राजेन पीछे-पीछे चला गया...और उसे जब बच्चेको झुलाकर फेंक देनेको कहा गया तो वह रो पड़ा । नहीं फेंक सका । किसी और ने फेंक दिया । मुर्दा । जो अपना नहीं, उसका क्या मोह ? ...

सलमा । आज तीन दिन बीत गये । जिन्दगीकी घर्डी चार बजकर दस मिनटपर रुक गई । फिर तो आगे-पीछे सब शून्य है । दिमागमें सोचने की क्रिया जारी थी वह खत्म हो गई । कुन्दे-सी पड़ी थी । अब लिखने बैठ गई । क्या करे, कुछ अकल काम नहीं करती ।

राजेन दूसरे दिन ही चुपकेसे कहीं चल दिया । दो दिन-रात पागल-सी हूँढ़ा की, पर वह न जाने कहाँ है । कब लोटकर आई नहीं मालूम । होश आनेपर अपनेको घरपर पाया ।

यादगारोकी कब्र । यह मकान मेरा दम घोट रहा है । अकेली हूँ—बिल्कुल अकेली । दुनियामे अपना कोई नहीं । जिन्दगीकी गाड़ी मजिलके उस सुनसान मोडपर आकर बिगड गई जहाँ बीरानगी और खाकके सिवा कुछ नजर नहीं आता । अब बाकी राह पूरी भी नहीं होगी । सफर पूरा करनेको दम कहाँ पाऊँगी सलमा । वह खडहर हूँ जो भाँय-भाँय कर रहा है । बसनेवाले चल दिये । ढह जाना बाकी है ।

जो कभी नहीं सोचा आज उसके बिना कोई चारा नहीं । खुदकुशीको इतना बुरा क्यों बताते हैं ? जब रौनक न हो, चहल-पहल न हो, तो सुन-सान हूँठ चाहे खडा रहे, चाहे गिर जाय । दुनियामें जब कोई इस्तेमाल

न हो, तो कोई क्यों जिये ? जिन्दगी चहान-सी बौमिल्ला<sup>१</sup> सुहृलिंग<sup>२</sup> लिदे  
फिरनेकी हिम्मत चुक गई है । वेसुरा राग जिन्दगी भर अलापनेसे अच्छा  
है, वह लय खतम कर दिया जाय .जिन्दादिली ही जिन्दगी है, वरना दुनिया  
वेरौनक बनानेका हमे क्या हक है ?

मै खुदकुशी कर ही लूँगी । यह चमन बेवक्त उजड गया । अब और  
कोई हसरत वाकी नहीं, और कौन-सी तमन्ना घर आई ? अपनेको मिटाकर  
भी घिसटनेके सिवा क्या मिला ? मै राजेनसे भी बदकिस्मत हूँ—जब तक  
मै और अशोक उसके आश्रित थे । राजेन यो चल देगा इसका सुभे  
गुमान भी न था ।

सलमा । राजेन अशोकको जलराशिके हवाले कर लौटा तो यही आकर  
चुप पड गया । अशोककी बीमारी, उसकी मौत और बेकारीकी तबाहीमे  
तोन दिनसे उसे खाने तकका ख्याल न था । रात हो आई थी । सरसे  
पॉव तक पसीनेसे भीगा जमीनपर यहीं पड़ा था । दोनो हाथोपर  
सिर टिकाये ऊपरको ताकता रहा । उसकी वह वहशियाना सूरत । मेरी  
हिम्मत नहीं पड रही थी । पास जाकर पूछा “क्या सोच रहे हो राजेन ?”  
“सोचनेको बाकी क्या है ?” उसका जवाब था । मैंने सोचा, उसे ख्याल  
बदलना चाहिए, वरना राजेन-सा कमजोर दिल यह सदमा बरदाश्त नहीं  
कर सकेगा ।

धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरा तो वह एकदम उठकर बैठ गया ।  
बैठा रहा । फिर यकायक बोला, “प्रीति ! अशोकके बगैर मै जिन्दा नहीं  
रह सकता । जिन्दगी धकेलनेमे अशोकका बड़ा हाथ था । यह अशोक  
मुझे जिन्दा रखे था... अब...अब क्या करूँगा ?” बेबसीकी कसक आँखों  
मे उमड आई । मै समझाने लायक भी न थी । एक बेहूदा-सी बात  
मैंने कही, “राजेन, तुम खुदको सँभालो । बच्चा तो बड़ी बात नहीं ।”

मैं आपेमें नहीं थी सलमा। चाहती थी, राजेन फूट पड़े। वरना यह आग धधक-धधककर उसे स्वाहा कर देगी। और वह पागल हो रहा था। मुझे इसका पता न था। एक ही धुन थी उसे—“मुझे बच्चा चाहिए।”

राजेनके लिए मुझे इनकार नहीं हो सकता था सलमा! मैं आपेमें नहीं थी। दिमागमे लकवा लग चुका था। मतलब समझनेकी ताव शायद हम दोनोंमें नहीं थी।

उसका पसीनेसे भीगा बद्बू मारता जिस्म जब नजदीक आया, मुझे अपने इस नारी-शरीरपर एक भारी छी-छी अंतरमें जान पड़ी। अशोककी लाशपर मानव-निर्माण!...मैं छिट्ककर दूर जा पड़ी। और उसका तो दिमाग खराब हो चुका था। मैं पड़ी-पड़ी सिसकती रही। एक बेहोशी, थकान। कव सो गई, नहीं मालूम। यकायक राजेनकी चीखसे नींद उच्चट गई। वह भागता दरवाजे तक चला गया। मैं बैठीकी बैठी रही। वह लौटकर चौखट पकड़कर खड़ा हो रहा। फिर आकर करीब बैठ गया। मुझसे बोला, “अशोक था। मैं दरवाजे तक गया। वह न जाने किधर चला गया।”

परिस्थितिकी भयङ्करता चिजली-सी दिमागमे कौध गई। यह राजेन पागल हो गया था! और सलमा, जिन्दगीका सारा दुःख, अभाव, तकलीफे भयानक रूपसे आँखोंके आगे फिर गई। मुझे रोना आया। जीवन भर कभी इतना रोना नहीं आया। और अब तो सारी जिन्दगी ही चुक गई।

राजेनकी चेतना लौट पड़ी। बोला, “प्रीति मेरा दिमाग खराब हो गया। तुमसे अभी बच्चा माँग रहा था। पर मुझे हक क्या है? मैंने अपना बच्चा मार डाला! खाना, कपड़ा, दवा, मैं तो कफन भी न दे सका!”—गला भर आया। एक गहरी सॉस लेकर बोला, “मैं नालायक हूँ प्रीति। इस कमज़ोरीपर मुझे घर बसा तुम लोगोंको घसीटनेका क्या

अधिकार था, और उसको.. ” उफ सलमा, मेरा कलेजा मुँहको आ रहा था । मेरी पीठपर हाथ रखकर बोला, “प्रीति, तुम्हें क्या दे सका ? अब तो यह अशोक मुझे खत्म कर गया । मेरा दुनियासे रिश्ता टूट गया । उस असहाय वच्चेको कुछ न दे सका । तुम तो समझदार हो, तुम मुझे माफ कर देना । कुछ दे न सका, पर वह लाचारी थी ।”

वात खत्म हो गई । रोई भी, जितना रोया जा सका । अब तो घॉस् भी चुक गये । बाकी है एक जलन । चुपकेसे वह कब कही निकल गया, नहीं मालूम । और अब मेरे पास इस जिसके सिवा कुछ नहीं है ।

पेटमे एक दाना नहीं, पास एक कौड़ी नहीं । भाग्य मानती नहीं हूँ । फिर भी वह जो इस हरे-भरे घरको उजाड़कर बरबादीकी खाक उड़ा गया उसके प्रति एक प्रतिहिसा है । मेरा पति, मेरा लड़का, इस तर्गी और कगालीके शिकार हुए, यह घर खड़हर हो गया । एक मेरा नहीं, लाखो घर यो ही तबाह हो रहे हैं । अशोक जब बीमार था, राजेन इजेक्शनके लिए सारे दिन दौड़ता फिरा, लेकिन नहीं पा सका । चोर-बाजारकी कीमत हम अदा नहीं कर सके । हमने हाथ-पैर भी जोड़े । वह दूकानदार, हमारा ही पड़ोसी, एक खासा मशहूर लीडर है । पूरा केमिकल वर्क्स चलता है उसका । और उसका दिल नहीं पिघला । सौदा सौदा ही था । हमारा बच्चा तड़पता रहा । बगलके घरमे हेरों दबा पड़ी रही । राजेनका खून खौल रहा था । दूसरा कोई वक्त होता तो वह हाथ चला बैठता । पर रह गया, और अब न जाने कहाँ है सलमा ? क्या लिखूँ, सब तो लिखा जा चुका । जिन्दगीका ड्रामा खत्म हो गया । तड़प-तड़पकर मुझे मरना बाकी है । हम मर जाय तो सलमा, हम गरीबोको याद कर लिया करना । मेरी यादको तुम बच्ची रहोगी, मुझे यकीन है । लीडरों तक मुफ़्लिसी और मौत नहीं पहुँचती ।

मेरा आखिरी प्यार सलमा—आखिरी ही है। मेरा पार्ट बुरा या भला अदा हो गया। कोई हसरत, कोई तमन्ना वाकी नहीं है। राजेन कही भी हो, मुझे यकीन है उसके पहले मैं ही चल दूँगी इस दुनियासे।

—प्रीति

सलमा !

अभी-अभी लहू-छहान राजेनको लोग पकड़ लाये हैं। उस दवा-फरोशसे वह फौजदारी कर बैठा। बच्चेकी मौतके उस गुनहगारको राजेन माफ़ नहीं कर सका। बस,

मेरा दिमाग...मेरा दिमाग धूम रहा है...हाथ जवाब दे रहे हैं...  
मै...मै...मेरे...



## राधाकृष्ण प्रसाद

आरा ( विहार ) मे जन्मे राधाकृष्ण प्रसादकी प्रारम्भिक शिक्षा बगलामे हुई । पटना विश्वविद्यालयसे एम. ए. कर आपने 'बालक' पत्रका सम्पादन किया और तदनन्तर विहार सरकारके प्रचार विभागसे सम्बद्ध हो गये । सम्प्रति आकाशवाणीके इन्टौर केन्द्रमे ड्रामा-प्रोड्यूसर है । पर्यटन और पठन-पाठनकी ओर विशेष रुचि रखते हैं ।

वातावरणका सजीव चित्रण, सरल कितु प्रभावपूर्ण अचूक व्यग्य, और कहानी कहनेकी सीधी-सहज आडम्बरहीन शैली राधाकृष्ण प्रसादकी कहानी-कलाकी प्रमुख विशेषताएँ है । आपकी छोटी सक्षित और मार्मिक कहानियोको पढ मन एक गहरी उदासीसे भर उठता है और मनका सोया दर्द जैसे जाग उठता है । अनेक कहानियोका विभिन्न भारतीय भाषाओमे अनुवाद हो चुका है ।

सात कहानी-संग्रह ( 'देवता', 'विभेद', 'अन्तरकी व्रात', 'खरा और खोटा', 'कटे पख', 'समानान्तर रेखाये' और 'केश-बहारका एजेण्ट' ), तीन उपन्यास ( 'आदि और अन्त', 'दूर्दी कडियों' और 'हे मेरे देश' ) और लगभग बीस बालोपयोगी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं । चीनी उपन्यास ( 'रिक्षावाला' ) का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है ।

## • फुलबरिया

### —राधाकृष्ण प्रसाद

उदास, मट्टमैला वातावरण वहाँ निरन्तर छाया रहता है। गाँवपर मानो मनहूसियत बरसती है। कच्ची पगड़ियाँ हैं। गर्मीमें धूल उड़ती है। बरसातमें कीचड़की बाढ़ आ जाती है। यदि आप किसी कारणवश उस गाँवमें पहुँचे तो वहाँकी स्तव्यता आपके हृदयको थका देगी। बॉसके लम्बे और घने बृक्ष आपका स्वागत करेगे और एक रहस्य भरी मर्मर आवाज आपके प्राणोंको आतंकित कर देगी।

गाँवके चारों ओर गढ़हे हैं और बरसातका पानी उनमें जमकर सड़ जाता है। उस सड़े हुए, दुर्गन्धयुक्त जलपर अनेक रोगोंके कीटाणु पलते हैं और वे कीटाणु रङ्ग-विरङ्गके हैं।

यहाँके निवासियोंको देखिए। मलेरियासे पीड़ित इनकी पीली औंखोंमें जीवनके प्रति एक उपेक्षाका भाव मिलेगा। एक ऐसी थकान इनके चेहरे पर है जिसे देखकर मनमें सिहरन हो उठती है।

ऐसे गाँवमें आकर शहरका कैसा भी आदमी उदास हो सकता है। फिर निरजनने तो कभी देहात देखा हो नहीं। जन्मसे ही केवल शहर देखता आया। बाप किसी ऑफिसमें किरानी थे। मरे तो सचमुच निरजन को भी मार गये।

लड़कपनसे ही वह उडनछू प्रकृतिका आदमी रहा है। तीन बार मैट्रिकमें फेल हुआ। बीज-गणितके बीज पहिचाननेकी अपेक्षा फुटबॉलकी बारीकियोंसे वह अधिक परिचित रहा। फलतः परीक्षा नामक चीजसे उसकी जन्म-जात शत्रुता रही।

बूढे अनुभवी बापने अपनी जिन्दगीमें बहुत कोशिशों की ताकि लड़का वशको न हुवो दे। निरञ्जनके और दो भाई थे जो उससे समझदार थे और जिन्होने मैट्रिक रूपी वैतरणी पारकर वशकी किरानी-परम्पराको सजीव रखा था। एक निरञ्जन ही ऐसा हतभागा निकला जो किरानी होनेका सौभाग्य न प्राप्त कर सका। कायस्थ-परिवारके अकिञ्चन, मैट्रिक फेल लड़केको कौन ऐसा उदार श्वसुर मिलता जो अपनी लड़लीको सौप धन्य मानता ? अतः निरञ्जनके हाथ पीले नहीं हो सके और इसी शोकमें उसकी बूढ़ी माँ मर गई। पिता भी थोड़ा आगा-पीछा सोचकर मर गये।

बड़े भाईके आसरे निरञ्जन आखिर कबतक रह सकता था ? बड़ी भौजाईका चेचकसे भरा गोरा मुँह निरञ्जनको देखकर बैलून हो जाता था और समय-असमय, परोक्ष-अपरोक्षमें जो बातें वे कहती थीं उनमें श्लेष और वक्रोक्तिकी मात्रा बहुत अधिक रहती थी।

हार मानकर निरञ्जनने होमियोपैथी पढ़नी शुरू की। किरानी न हुआ—न सही, होमियोपैथ डॉक्टर तो हो सकता है ! और कुछ ही दिनोंमें लम्बी-चौड़ी एक डिग्री भी उनसे खरीद ली। अब वह डॉक्टर निरञ्जन था और हमेशा दवा और रोगियोंकी बातें सोचता था।

पर डॉक्टर हो जानेसे ही क्या होता ? उसके लम्बे-चौड़े साइन-बोर्ड और उधार माँगी हुई कुर्सियों किसी मरीजको आकर्पित करनेमें असमर्थ सात्रित हुईं। जब टो-तीन महीनेका दूकान (या डिस्पेसरी ?) भाड़ा भी घरसे देनेकी नौवत आई तो भाई-साहबका धैर्य छूट गया। बोले—“साइन-बोर्डको किसी बढ़ईके हाथ वेच दो निरञ्जन, और दवा सब अपने लिए रख छोडो। और कुछ नहीं कर सकते तो कमसे कम इतनी मेहरबानी करो कि चुपचाप जैसे थे, वैसे पढ़े रहो। तुम जानते हो कि कुल मिलाकर मुझे ७६॥) महीना मिलता है। तुम्हों ये रुपये लेकर बजट बनाओ। नन्हेंकी स्कूल-फीस दो महीनेसे बाकी है और नन्हेंकी माँकी साड़ी. . .”

निरञ्जन सिर झुकाकर वापस लौट आया । गलानि और चिन्तासे उसका मन जर्जर था । चौबीस वर्षका जवान होकर भी वह कितना पगु है... कितना अपदार्थ !..

X

X

X

गॉवका नाम है फुलचरिया । यह नाम कैसे पड़ा, यह अनुसन्धानका एक विषय है । पर इतना सत्य है कि फूलोंकी कोई पृष्ठभूमि इस गॉवके इतिहासमें नहीं ।

निरञ्जन कैसे इस गॉवमें आया, यह भी एक नाटकीय घटना है । अपने ही पेशेके एक प्रौढ़ सज्जनने उसे सलाह दी, “भले आटमी, शहरमें कहीं होमियोपैथी चलती है ? भागो यहाँसे, नहीं तो तुम्हारी दवाओंमें जग लग जायगी ! जानते हो, एक दिन मैं भी तुम्हारी ही तरह नादान था । तुम तो शायद मैट्रिक तक पढ़े हुए हो । मैं अपर फेल हूँ । धर्मपत्नीके गहने गिरवी रखकर मैंने भी शहरमें प्रैक्टिस शुरू की थी । पर सालभर तक जब धेलेकी आमद नहीं हुई तो मेरी नीद दूटी और गॉव भाग गया । आज जानते हो, भगवान्‌की दयासे मेरी क्या औकात है ? तुम्हारी ही उम्रका मेरा एक बेटा एम. बी. बी. एस. में पढ़ रहा है । शहरमें एक दुमंजिला मकान मैंने खरीदा है . . . ”

इसी प्रौढ़ सज्जनने उसकी मदद की । दूकानका भाडा चुकता किया गया और उनकी ही सलाहसे वह घरसे तीन सौ मील दूर एक अनजान देहातमें आ धमका ।

प्रारम्भके दिन तो बहुत ही दुःखदायी रहे । निपट गॉवारकी जिन्दगी ! निरञ्जन सचमुच रुआसा हो गया । अपने भाग्यपर उसे झुँझलाहट आई । यदि वह भी मैट्रिक पास कर पाता !...फिर ये दिन उसे क्यों देखनेको मिलते ?

पर धीरे-धीरे निरञ्जन अभ्यस्त हो चला । फुलबरिया गाँवका उदास, धूमिल वातावरण जैसे उसका चिर परिचित हो । उस गाँवके जीवनकी शून्यतासे जैसे उसका आश्चर्यजनक मेल हो ।

उसकी प्रैक्टिस जमने लगी । गलेमे चमड़ेका स्टेथस्कोप लगाकर गम्भीर मुद्रामे जब वह भयभीत और आतकित चेहरेवाले मूढ़ ग्रामीणोंकी ओर देखता, तो उसके ओठोपर एक अजीब तरहकी मुसकान ढौड़ जाती ।

पता नहीं, यह उसकी टवाका परिणाम था या मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाका, जिसके फलस्वरूप उसके रोगी शीघ्र ही अच्छे हो जाते । निरञ्जनका नाम आस-पासके गाँवोमे भी फैलने लगा । एक-डेढ़ महीनेकी प्रैक्टिसमे ही उसके पास इतने पैसे हो गये कि उस प्रौढ़ अथव दयालु सज्जनका कर्ज उसने चुक्ता किया और पचीस रुपयेका मनीऑर्डर भाई साहबके नाम भेजा । लौटती डाकसे वेदूनकी तरह समय-असमय फूल उठनेवाली नन्हे की मौंने आशीर्वादीकी झड़ी लगाते हुए पोस्टकार्डमे लिखा था कि निरञ्जन जैसे लायक लड़केसे यही उम्मीद थी ।

X

X

X

दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया था । भारत आजाद हो चुका था पर उसके दुर्गुण जैसे दुगुने हो गये थे ।

निरञ्जनने देखा—सारा फुलबरिया जैसे और भी धूमिल हाता जा रहा है । खेतोंका अनाज पता नहीं कहाँ चला जाता था । पीले, दुर्बल और अज्ञानमे झूंबे इन हताश ग्रामीणोंको देखकर निरञ्जनका मन जैसे वर्फ हो जाता ।

यहाँ रास-रगकी किसे फुरसत थी? सन्ध्या होनेके साथ ही मिट्टी-तेलके अभावमे सारा फुलबरिया जैसे एक शवका रूप ले लेता । यदा-कदा रग्घू साऊ या ऐसे ही दो-चार महाजन या जमीदारके कारिन्देके घरसे धुँआती लालटेनोंका मटमैला प्रकाश चमक जाता ।

घर-घरमें रोगी । सन्ध्या होते ही सियारोंका कोरस-गीत शुरू हो जाता और निरञ्जन अपनी छोटी-सी लैम्पके सहारे दवाओंका सूचीपत्र अन्यमनस्क होकर पढ़ा करता । कभी-कभी झुँझलाकर सोचता—यह भी कोई जिन्दगी है ?... शहरमें और न सही कम-से-कम सिनेमा-हाउसके पास खड़े होकर शामके समय घण्टे-दो-घण्टे लता और सुरैय्याके रेकार्ड तो सुने जा सकते हैं । . कहाँ लताकी मीठी आवाज और कहाँ सियारोंका कोरस ?....

X

X

X

ऐसी ही एक रातकी घटना है ।

उस रात उसे नीद नहीं आ रही थी । अपने भाग्यकी विडम्बनापर वह उधेड़-बुन कर रहा था । यह बात ठीक है कि उसके पास कुछ पैसे आ रहे हैं, और शहरका आवारा, अपदार्थ निरञ्जन आज डॉ० निरञ्जन है । पर उसके मनको शान्ति कहाँ है ? एक देहाती नौकर उसने सस्तेमें रख लिया है । कच्चा-पक्का बनाकर वह चला जाता है । पर क्या उसके दिन ऐसे ही बीतते जाँशगे ? नीरस, एकरस, शुष्क ? बजर जमीनकी तरह क्या उसकी जिन्दगीमें हरियाली नहीं आयगी ?... और तब थोड़ी सेक्सकी अनुभूति उसे बेचैन कर जाती है और वह बिछावनपर करवटे बदलता है ..

“डागटर बाबू !” अँधेरी रातको छेदती हुई एक भर्ती, बूढ़ी आवाज थर्रकर निरञ्जनके कानोंसे टकरा गई । कुछ देर तक निरञ्जन सहमा रहा । फिर दरवाजा खोल दिया । अपने टार्चके प्रकाशमें देखा—एक पचास-साठ सालकी बुढ़िया आँसू बहाती हुई ठंडमें कॉप रही थी ।

रोती और कॉपती बुढ़ियाने जो बाते रुक-रुककर बतलाइ उनका आशय यह था कि उसके जवान, इकलौते वेटेको आज कई रोजसे बुखार आ रहा है । इस समय उसकी हालत बहुत खराब है और बुखारमें वह मूर्छित पड़ा हुआ है । वह जातिकी दुसाधिन है और खेतोंमें मेहनत मजूरी करके जीती है । घरमें ऐसी कोई मूल्यवान चीज नहीं थी जिसे बेच

कर वह डॉक्टर बाबूकी फीस जुटा सकती थी। घरमें एक पीतलकी थाली थी जिसे वह रग्धू सावके यहाँ बन्धक रखकर कुछ पैसे लाई थी। वे पैसे भी पथ्य इत्यादिमें खर्च हो गये। इस समय उसका वेद्य विना दवाके मरने को है।

बुद्धिया निरझनके पैर पकड़कर कॉप रही थी। उसके शरीरकी मैली और जर्जर साड़ीके छिद्र उसकी दशाके परिचायक थे।

निरझन अन्तमें लाचार होकर और कुछ झुँझलाकर दु साध-पाड़ाकी ओर चला। एक हाथमें दवाका बक्स था, और दूसरे हाथमें धन्वं। सारे गाँवपर अलकतरे-सी काली और गाढ़ी अँधियाली छाई थी। निरझनका मन उस अन्धकारमें और भी खीज उठा। विना कुछ प्रातिकी आशामें, ऐसी अँधेरी रातको घरसे बाहर निकलना एक भावुकताकी ही तो बात थी। डॉक्टर यदि भावुक हुआ तो उसका काम चला। भावुक तो कवि होते हैं। पता नहीं, निरझनके अजात मनमें यह कौन-सा कवि बैठा था जिसने उसको चलनेपर बाध्य किया।

छोटी-सी फूसकी झोपड़ी। बुद्धियाकी झोपड़ीके आँगनमें पहुँचकर उसने टार्चका प्रकाश दुमाया विजलीकी गतिकी तरह एक नग्न, सॉवली युवती उठ खड़ी हुई और फटी टाटसे अपनी लाज छिपाती हुई बीमार रोगीके पाससे हट गई।

निरझनका सिर जैसे धूम गया। रोगटे खड़े हो गये और हाथ कॉपने लगा।

बुद्धियाने दबी आवाजमें कहा, “यह हमारी पतोहू है बाबू!”

रोगीके पास वह पहुँचा। जमीनपर एक फटा-पुराना कथा बिछा था और उसपर ककालके समान एक दम तोड़ता हुआ युवक पड़ा था। उसकी आँखें भयानक रूपसे धुँधली थीं और वे क्रमशः पथराती जा रही

थी ! प्रकाश देखकर रोगीके ओठ फडफड़ाये—जैसे वह कुछ कहना चाहता हो !

बुद्धिया निरञ्जनके पैर पकड़कर चीख रही थी, “डागटर बाबू, मेरा बेटा !.”

निरञ्जन जैसे किसी भाव-समुद्रमें डूबा था। जल्दी-जल्दी एक दवा निकालकर बोला, “इसे खिला दो। फिर सुबह मेरे पास आना।” और इसके बाद वह तेजीसे निकल आया।

X

X

X

उस रात फिर निरञ्जनको नींद नहीं आई। यह उसके जीवनकी कैसी अनुभूति थी ! वह उस रोगीको देखते ही समझ गया था कि यह कुछ मिनटोंका मेहमान है। फिर व्यर्थ ठहरकर क्यों अपना समय नष्ट करता ?..

सुबह बुद्धियाके बेटेकी मौतकी खबर मिली। जैसे इस खबरकी वह प्रतीक्षा कर रहा था। इस खबरने उसको उतना विचलित नहीं किया।

पर विजलीकी गतिके समान भागती हुई वह नग्न युवती, और प्रकाशको पाकर एक मरते हुए क्कालके ओठोंकी फडफडाहट ?.

कपड़ेके अभावमें लज्जाका इतना वीभत्स रूप उसने कब देखा था ? और मिट्टी-तेलके अभावमें मरते हुए व्यक्तिके ओठोंकी फडफडाहट ?... मरते हुए बेटेका मुँह अँधेरेमें, तेलके अभावमें माँ नहीं देख सकी होगी और अपने सुहागको लुटते हुए देखकर उस अन्धकारमें निराभरणा पत्नीने क्या सोचा होगा ?...

X

X

X

यह फुलबरिया ग्राम ।

निरञ्जनको महात्मा गाँधीकी वहं उक्ति याद आ गई जिसे अपने कभीके किसी पाठ्य-ग्रन्थमें उसने पढ़ा था—‘भारतकी आत्मा गाँवोमें बसती है !’

“तो क्या भारतकी आत्मा यही फुलबरिया जैसा ग्राम है ?”—निरञ्जनने माथेपर बल डालते हुए सोचा ।

## सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

उनतीस वर्षीय सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कवि रूपमें इतने विख्यात हो चुके हैं कि अब अनेक पाठकोंको यह जानकर कदाचित् आश्चर्य हो कि वह प्रतिभाशाली कहानी-लेखक भी है। आपने बस्तीमें जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी वही हुई। अनन्तर अध्ययनार्थ वाया वनारस, प्रयाग पहुँचे। एम० ए० करनेके बाद पॉच वर्ष तक स्थानिक ए० जी० कार्यालयमें कल्की की, फिर ओल इडिया रेडियोके समाचार-विभागमें नियुक्त होकर दिल्ली पहुँचे। तबसे स्थूल रूपेण वहीं है—मन तो त्रिवेणी-तीर ही छोड़ आये हैं।

प्रारम्भमें कविताएँ लिखी, फिर कहानियाँ, अनन्तर फिर कविताओंका दौर शुरू हुआ। अब लघु-उपन्यासोंकी ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। ‘निकष-१’ में प्रकाशित उपन्यासिका ‘सोया हुआ जल’ की वहुत चर्चा रही। अग्रेजीमें भी अनुवाद हुआ। क्या कविता, क्या कहानी—हरेकमें विद्रोह-सूचक विषय-स्तुके दर्शन होते हैं।

## ० कमला मर गई

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

“सुना है कमला मर गई।” माँने अपने उस लम्बे-चौड़े खतमे, जिसमे उसने तमाम इधर-उधरकी चाते लिखी है, एक कोनेमे यह भी लिख दिया है। जैसे इसके लिखनेकी उसने कोई जरूरत न समझी हो, और पता नहीं कैसे यह लाइन उसकी कलमसे निकल पड़ी हो। आकाशके अनन्त नक्षत्रोंके बीच जैसे किसी तारेके दूटनेपर कोई कह पड़े “देखा नहीं तुमने, अभी एक तारा दूया था” और फिर अपने काममे लग जाय। एक चात थी जो सूचनाके रूपमे निकल पड़ी। उसके पीछे कोई विचार, कोई गहरी अनुभूति नहीं, केवल एक सूचनामात्र।

मैंने यह पक्कि पढ़ी। कई बार पढ़ी। कई ढगसे पढ़ी, विभिन्न स्वराधात दे देकर पढ़ी। सभव है कोई टर्ड, कोई हल्की सहानुभूति इसके पीछे मिल ही जाय, पर लगता है सब निरर्थक है। इस पक्किके पड़े रहनेमे या निकाल देनेमे खतका कही कुछ बनता-बिंगड़ता नहीं, वह अपनेमे पूर्ण है। और मेरी जिन्दगी भी है, ठीक इस पत्रकी तरह। कमलाका नाम कहाँ किस कोनेमे था बहुत आँखे गडाकर देखनेपर, मस्तिष्कपर जोर डालनेपर ही पता लगता है, उसके ‘रहने’ ने इस लम्बे चौड़े जीवनपर कहीं कोई प्रभाव नहीं डाला और आज उसके ‘न रहने’ ने कहीं कुछ ऐसा नहीं किया कि उसकी कुछ कमी खटके। लेकिन कमला ‘मर गई’। यद्यपि यह ‘मर जाना’ शब्द मैं दिन भरमे सैकड़ो बार सुनता हूँ पर कमलाके साथ इस ‘मर जाने’ का सम्बन्ध कुछ अजीब लगता है। लगता है मर गई तो कोई चात नहीं, लेकिन अगर न मरती तो अच्छा था। यही औरोमे और कमलामे मेरे लिए

भेद है। वह जिन्दा थी, इस दुनियामें रहकर भी वह मेरे लिए नहीं थी, लेकिन आज मर जानेपर जैसे वह मेरे लिए कुछ हो गई हो। जबतक वह जिन्दा थी मैंने कभी उसके लिए कुछ नहीं सोचा, लेकिन आज जब वह मर गई है, मैं उसके लिए कुछ सोच रहा हूँ। उसकी जिन्दगीने तो नहीं, लगता है उसकी मौतने कही थोड़ा बहुत उसको मुझसे बोध दिया हो।

एक घना कोहरा है मेरी आँखोंके आगे, जिसमें मैं उससे सम्बंधित स्मृतियाँ टटोल रहा हूँ। एक घटना पकड़में आ रही है। मुझे आश्चर्य है कि यह घटना आजतक मुझे याद क्यों है? आजसे लगभग बारह वर्ष पूर्वकी बात है जब मैं नौ या दस वर्षका रहा हूँगा, कमलाका परिवार मेरा पड़ोसी था। मेरे घरसे लगभग दो फर्लाङ्गपर उसका घर था। उसकी माँ और मेरी माँमें बहुत पट्टी थी और अक्सर वे लोग एक-दूसरेके यहाँ आया-जाया करती थी। यही कारण हमारे-उसके सम्पर्कमें आनेका था। यूँ बच्चोंका सम्पर्क परिवारकी अपेक्षा अधिक शीघ्र और गहरा हो जाता है, फिर वह तो मेरी समवयवस्का भी थी। खेल-कूदमें हम लोगोंको बहुधा एक-दूसरेकी जरूरत पड़ती थी। मैं स्वभावसे ही गम्भीर था और जितना ही मैं गम्भीर था उतनी ही वह चंचल थी। शामका समय था। मेरा मकान बहुत छोटा, खपरैलका था और वह भी एक गलीमें। इसीलिए प्रकाश जल्दी विदा ले लेता था। मैं बैठा पढ़ रहा था। मेरा शिक्षक कोयलेसे भी अधिक काला था अतः अँधेरा छाते ही मैं लालटेनकी प्रतीक्षा करने लगता था क्योंकि मुझे उसे देखकर डर लगने लगता था। उस अँधेरेमें उसके काले-काले चेहरेमें उसके सफेद ढॉत-रहरहकर चमक उठते थे, जब वह मुझे हिसाब लगाते समय कही गुणा-भागमें गलती करनेपर डॉटता था। उस समय मुझसे जरूर गलती होती थी। और साधारण गलतियोपर जब वह मेरे कान पकड़कर चिल्लाता था तब मैं आँखें बन्दकर चीख उठता था, दर्दसे कम लेकिन माँ द्वारा सुनाई हुई राक्षसोंकी कहानी याद करके अधिक।

ऐसे अवसरोपर मैं हिसाब भूलकर भगवान्की याद करने लगता था। उस-दिन ऐसा ही अवसर था जब मैं भगवान्को याद कर रहा था। वह मेरे कान ऐठ रहा था और कमरेमें अँधेरा छा गया था। तभी कमलाके पिता आये थे। उन्होंने कहा, “मास्टर साहब, जरा इसे दो मिनटकी छुट्टी तो दे दीजिए।” मैं प्रसन्न हो उठा, यह सोचकर कि भगवान्ने मेरी पुकार सुन ली। लेकिन मैं ज्योंही कमरेके बाहर प्रकाशमें आया, उनका चेहरा देखकर कॉप उठा क्योंकि वह क्रोधसे तमतमा रहा था। मैं बहुत डर गया और खड़ा होकर शायद सजाकी प्रतीक्षामें अपराधी-सा उनकी ओर देखने लगा, मुझे रुकते देखकर वे घड़े स्वरमें बोले—“आइये आइये, रुक क्यों गये?” और तेजीसे चल पड़े एक ओर गलीमें, जिसमें उनका घर था। कुछ तो डरसे और कुछ छोटा होनेके कारण मैं पिछड़ जाता था। लेकिन उनकी निगाह धूमते ही मैं दौड़कर उनका साथ पकड़ लेता था। रास्ते भर वे मुझसे कुछ नहीं बोले, लेकिन वह दो फर्लाङ्गका रास्ता मेरे लिए कितना कष्टदायी रहा होगा, इसका अनुभव इसीसे किया जा सकता है कि वह आज तक मुझे याद है। उस गलीमें जिसमें अँधेरा उमड़ रहा था और मच्छर सूँ-सूँ कर रहे थे। मैं कितनी बेचैनी लिये भाग रहा था, यह मैं आज भी नहीं भूलता। सोचता था, कहीं कमलाने शिकायत तो नहीं कर दी है। कैसी शिकायत करेगी वह? मैंने उसे मारा तो है नहीं। फिर इधर मुझसे उससे भगड़ा भी तो नहीं हुआ। कभी सोचता था, शायद उसे कहीं चोट लग गई हो और उसने खुद बचनेके लिए मेरा नाम लगा दिया हो। कभी सोचता, हो सकता है उससे कुछ नुकसान हो गया हो, कोई चीज टूट गई हो, कोई चीज खो गई हो या कोई चीज चुराकर खा ली हो और खुद सजासे बचनेके लिए उसने मेरा नाम लगा दिया हो। वह इतनी ही मेरी उस समयकी मानसिक परिधि थी। इसके अपरे मैं नहीं सोच सकता था। परेशान और डरा हुआ, जब मैं मकानमें पहुँचा तो मैंने देखा, मकानके घड़े और गनमें

चारपाईपर उसकी माँ बैठी पानदान बन्द कर रही हैं। एक पतली छुड़ी पासमें रखी है। उसके हाथ अँधे हैं और वह जोर-जोरसे सिसकियों भर रही है जैसे उसने बहुत मार खाई हो। उस समय उसे देखकर मुझे तरस नहीं आया, बल्कि मैं और डर गया। उसके पिताने कहा—“लो, इससे पूछ लो।”

मैंने बड़े इतमीनानसे कहा, “तुम्हीं न पूछ लो।”

“मैं क्यों पूछूँ? तुम्हीं अपनी विटियाकी बहुत तरफदारी लेती हो। तुम्हीं पूछो न!” इतना कहकर वे तेजीसे धूमने लगे। शोड़ी देरके लिए सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। केवल कमला सिसकियों भर रही थी। कोनेका अमरुदका पेड़, आँगनकी नीची-नीची दीवारे, अँधेरेसे भरा हुआ वरामदा, पिंजड़ीमें टैंगा हुआ तोता सब मेरी तरह सहमे-सहमे नज़र आ रहे थे। मैंने कई बार उसकी ओर आँख उठाई लेकिन वह आँखें नीची किये रोती ही जा रही थी। उस खामोशीसे मेरा डर बढ़ता जा रहा था। मेरी टैंगे कौप रही थी। आखिरकार उसकी माँ बोली, बड़े ध्यारसे—“वेटा, तू कल यहाँ आया था। सच-सच बोलना!” पता नहीं क्यों मेरे मुँहसे आवाज नहीं निकली। वे फिर बोलीं—“जब हम और तारा तेरे घर गये थे, तब तुम और कमला साकल खोलकर चुपचाप मकानमें आये थे। भूठ मत बोलना, महरिनने सब देख लिया है। वह बता रही थी।”

मैंने कहा, “जी हॉ।”

उनके बाप बोले, “तुमसे किसने कहा था आनेके लिए” उनकी आवाज बहुत कड़ी थी। धब्राकर छूटते ही मैंने जवाब दिया, “कमलाने” क्यों? यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद मेरे दिलमें डर रहा हो कि कहीं मेरे ऊपर आफत न आ जाय। उसके पिता मेरा उत्तर सुन-कर ज़ोरसे चिज्जाये—

“देख ली अपनी लड़कीकी करतूते !” और उसकी ओर घूर-घूरकर तेजीसे घूमने लगे ।

माँ बोली, “क्यों बुला लाई थी ?”

मैंने कहा, “यूँ ही खेलने ।”

उन्होंने फिर पूछा, “क्या खेलने ?”

मैंने फौरन जवाब दिया, “घरौदा ।” क्योंकि यह दोनों वाते ही सही थीं । दीवाली समीप थी । हम लोग घरौदे बनाते थे । मैं हमेशा कागज, चमकीली पन्नी और दफ्ती आदिका घरौदा बनाता था । मेरे पिता की दूकान पर अक्सर शीशेकी पैकिंगमें चीड़के बक्स आते थे, जिन्हें वे एकके ऊपर एक रखकर कीले जड़कर आलमारी-सी बना देते थे । सामने भालर, दफ्तीके घर, नीले लाल कागजोंकी फूलपत्तियाँ, मुनहरी रुपहली पत्रियोंके सिहासन आदि । और इस प्रकार मेरा घरौदा सजता था । माता-पिता भी थोड़ा बहुत हाथ बैटा देते थे । दीवाली खत्म होनेके बाद खिलौने निकाल दिये जाते थे और हम इनमें किताबें रखते थे । कमलाने भी घरौदा बनाया था लेकिन मिट्टीका । टो कोठेका घरौदा था उसका जो दालानमें एक कोने में बना था । लम्बे-लम्बे इंटे रखकर उसने दीवाल बना ली थी । उसपर मिट्टी चढ़ा चूनाकारी भी हो गई थी । बीच-बीचमें गेरू घोलकर उसने फूल-पत्तियाँ बनाई थीं । चॉद-सूरज-तारे आदि घरौदेके ऊपर दीवाल-रूपी आकाशमें बने थे । उस दिन मेरे घर पता नहीं क्या था । तमाम औरते आई थीं । कमला, उसकी बड़ी बहन और माँ भी आई थीं । सब लोग जब अपने काममें लगे थे । मैं कमलाको अपना घरौदा दिखा रहा था और समझा रहा था, कैसे उसमें पीतलको घटी लगेगी, वह जब बजेगी तब भगवान्‌के खानेका समय होगा । भीतर कहाँ दीया जलेगा और कब उदादा रात हो जानेपर भगवान् सोयेगे । कहाँ लद्दमी जी सोयेगी, कहाँ गणेशजी सोयेगे । कौन-सा तकिया-चादर लद्दमीजीका है, और कौन-सा

गणेशजीका आदि-आदि । मेरे घरौदेको देख-देख उसके मनमें अपना घरौदा भी दिखलानेकी उत्कण्ठा बढ़ रही थी । उसके घरौदेके लिए जब मिट्टी और गोवरका ढेर पड़ा था तब मैंने देखा था । उसके बादसे मैं उसके घर नहीं गया था । स्कूलके बाद वरका काम करना पड़ता था । नौकर था नहीं । गली पार करके ही बाजार था, अतः सुबह-शाम हल्दी, धनियों, नमक, कड़ुआ तेल, तरंकारी आदि जो कम पड़ता था, लेने जाना पड़ता था । दुकाने परिचित थीं, ले आता था । शामको मास्टर, और खाली समय घरौदेमे जुटते थे । ऊपरसे माता-पिता कड़ी निगरानी रखते थे । घरसे बाहर निकलने नहीं देते थे । उनका ख्याल था इधर-उधरके लड़कों के साथ खेलकर मैं खराब हो जाऊँगा; गाली सीख जाऊँगा इत्यादि । खैर, मैं कमलाका घरौदा नहीं देख सका था । उसने कहा, “चलो मेरा घरौदा देख आओ । तुमसे तो अच्छा नहीं है, लेकिन मेरे गणेशजी तुम्हारेसे बहुत अच्छे हैं ।” मैंने कहा, “चल” ।

और हम लोग किसी तरह साकल खोल घरमें बुस गये थे । घरौदेके सामनेकी चहारठीवारीमें एक बोरा बिछुरा था, जिसपर उसने अपने मॉकी कोई फटी धोती डाल ली थी । उसपर हम लोग बैठे थे और मैं उसके गणेश जीको देख-देखकर हँस रहा था । कह रहा था, “गणेश है या धोधामल, तोट निकली है उसकी” । और उसकी मिट्टीकी घंटी बजा मैंने कुछ संव्याके मंत्र पढ़े जो मुझे सात वर्षकी उम्रमें ही रथा दिये गये थे । माता-पिता आर्यसमाजी थे, वैदिक संध्या पूरी-पूरी रथा दी थी और मैं एक ईश्वर भक्तकी तरह कड़े नियमसे छोटी घंटीमें पानी रख पूजा करता था और उसके बाद दरबाज़ा खुला देख महरिन काम करने आई थी और हम लोग उठकर चले गये थे । कुल इतनी ही बात थी । लेकिन उनके पिता मेरा “घरौदा,” उत्तर सुनकर जोरसे चिल्लाये, “वह सब मैं जानता हूँ ।” और फिर अपनी पत्नीसे बोले—

“यह तो मैं पहले ही जानता था। यह सब उसकी ही शरारत है, अभी दस वर्षमें ही उसके ये हाल है। बदमाश, चुड़ैल कहीं की। टाँग तोड़ दो उसकी जो यह कल्से घरसे बाहर निकले।” उसकी मॉं कुछ नहीं बोली, केवल मुझसे इतना कहा, “जाओ”। मैं मुक्ति पाये पछीकी तरह भागा। एक लम्बा दलान पड़ता था दरवाजे तक पहुँचनेमें। जब मैं दरवाजे तक पहुँचा तो कमलाके चीखकर रोनेकी आवाज सुनाई दी। मैं रुक गया। मैंने उसके गालपर पड़ी हुई जोरकी चपतकी आवाज सुनी और उसके बाट उसके पिताकी जोरसे गरज, “मैं पूछता हूँ आखिर कोनेमें छिपी घराँदेमें बैठी उसके साथ क्या कर रही थी?” इतना सुनकर मैं चला गया। मैं उस समय यह न समझ सका था कि आखिर हमने क्या गुनाह किया था, उनका क्या मतलब था। पर आज वात समझमें आती है और उनकी बेवकूफीपर तरस भी आता है। उसके बाद लगभग दस दिन बाद मेरी कमलाकी मुलाकात हुई, वह बहुत गभीर थी। उसकी चचलता पता नहीं कहॉं उड़ गई थी। वह मॉंके पास अपनी बड़ी बहनके साथ कुछ लेने आई थी। मेरे कमरेमें भी वह आई। मैं नई-नई कापियों पर काशज चढ़ा रहा था। मेरे पास वह खड़ी रही चुपचाप खामोश। मैं भी चुपचाप था। यद्यपि उसे देखकर दिल उछल रहा था। उसने पूछा—

“तुम्हें तो नहीं मारा बाबूजी ने।”

मैंने कहा, “नहीं”

कुछ देर रुककर मैंने फिर पूछा—

“तुम्हें मारा क्यों था कमला?”

वह बोली—“पता नहीं क्यों? कहते थे लड़कोंके साथ अकेलेमें नहीं खेलना चाहिए”। फिर वह चली गई। मैंने उस दिन अपनी मॉंसे पूछा। उसने भी कहा—“लड़के लड़कियोंके साथ नहीं खेलते” और तबसे लड़कियों के साथ खेलते समय मैं सोचता, यह बुरा है और अक्सर अपने साथ

खेलने वाली लड़कियोंसे मै कह देता, “मै लड़का हूँ, तुम्हारे साथ नहीं खेलूँगा।”

उसके बाद फिर कमलासे मुलाकात नहीं हुई। शायद वे लोग मकान छोड़कर किसी दूसरी तहसीलमे चले गये थे। बचपनके दिनोमे साथी बनते और छूटते देर नहीं लगती। न जाने कितने साथी बनते हैं, न जाने कितने छूट जाते हैं; भविष्यमे उसका कोई लेखा-जोखा हम नहीं रख पाते। फिर और नये-नये साथी बने, लेकिन कोई ऐसा साथी नहीं बना जो स्मृति रूपमे भी मेरे मस्तिष्कमे जिन्दा रहता। इसका कारण मेरी गंभीर प्रकृति भी। खेलकूदसे मुझे विशेष शौक नहीं था, फिर ऐसे लड़कोके और कम साथी होते भी हैं जो खेल-कूदमे भाग न लेते हो। चार-पाँच साल तक फिर कमलाका कोई पता न रहा। उसके बाद जब मैं ‘नाइन्थ क्लास’मे था, कोई बकील थे उनके यहाँ एक शादी पड़ी। मुझे भी मॉके साथ जाना पड़ा। माँने बताया, कमला और उसकी माँ भी आई हैं। लड़केकी शादी थी। बारात कही बाहर गई थी। घरपर रात-रात भर औरते गाती बजाती थी। मैं बाहर लड़कोमें बैठता था।

किसी कामसे मै मॉके पास एक क्षणको भीतर गया। मैंने देखा तमाम औरते बैठी हैं और उनके बीचमे कमला नाच रही है। मुझे आज भी उसका वह रूप नहीं भूलता। गौरवर्ण अत्यन्त सुन्दर, हँसमुख सूरत और गजबका शृंगार। उसे देखकर मैं फौरन खिसक गया। एक लड़की जब नाच रही हो तब वहाँ लड़े होकर देखना मेरे संस्कारके विरुद्ध था। मैं कमरेके बाहर निकल आया। यद्यपि मेरा जी कमलाका नृत्य देखनेको करता था। इसीलिए कुछ देर दरबाजोकी दराजको देखता रहा। उस समयकी दृष्टि आलोचनाकी नहीं प्रशंसाकी थी। लेकिन मजबूरीने मुझे वह नाच न देखने दिया। यह सोचकर कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे? और फिर लुकछिपकर नाच देखते हुए मैं चला आया। अपनेको

कितना दबाया था मैंने, यह आज महसूस हो रहा है। दूसरे दिन माँ ने कहा—

“कमला तुम्हें पूछ रही थी।”

मैं खामोश रहा। इसका जवाब ही क्या हो सकता है। वे फिर बोलीं, “सुना है तूने, कमला नाचती बहुत अच्छा है, पता नहीं उस देहातमे रह-कर उसने यह सब कहाँसे सीखा है।” कुछ रुककर बोली—

“गाती भी बहुत अच्छा है। मगर.. बड़ी वेहया हो गई है। शरम तो उसमे है ही नहीं। मैंने तो उसकी माँसे कह दिया, नाचना-गाना बुरा नहीं, पर ज्यादा मत उकसाओ नहीं तो विगड़ जायगी।”

इसके बाद फिर पॉच साल तक कमला नहीं मिली। इन पॉच वर्षों में मेरी जिन्दगी बिलकुल ही बदल गई। मैं क्यासे क्या हो गया, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है। जिन्दगीके नये-नये परदे खुले, नई-नई चीजे आईं, उनका आकर्षण इतना प्रबल था कि मेरे हृदयमे कमलाका रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त हो गया। एक घटना याद आ रही है। मैं उस शहरमे गया हुआ था जहाँ कमलाके पिता बदलकर आ गये थे। उनके विभागमे हर दूसरे-तीसरे वर्ष बदली हुआ करती थी। मैं अपने चाचाके यहाँ ठहरा था। एक दिन सौभके समय उन्होंने कहा—“आओ चलो घूम आये।”

मैंने कहा, “कहाँ जायेंगे?”

वे बोले, “ब्रजकिशोरके यहाँ”

“कौन ब्रजकिशोर?” मैं कुछ सोचता हुआ बोला।

“तेरे घरके पड़ोसमे वे बहुत दिन रहे हैं; तू नहीं जानता।” उन्होंने आश्र्यसे कहा।

मुझे याद आ गया ब्रजकिशोर कमलाके पिताका नाम है।

मैंने कहा, “कितनी दूर है उनका घर?”

उन्होंने कहा, “दो मील !”

मैंने कहा था, “आप हो आइये । दो मील जानेकी मेरी हिम्मत नहीं । दो फलांग होता तो सोचता ।”

आज मैं सोचता हूँ, कमलके लिए कुछ दूर चलने तककी तकलीफ मैं नहीं उठा सकता था । इतना भी स्लेह उसके लिए मेरे दिलमें नहीं था जब कि वेकारमें न जाने कितना इधर-उधर धूमा करता था । चाचा चले गये और मैं पड़ा-पड़ा ग्रामोफोन पर पिटे हुए रेकार्ड बजाता रहा । जैसे कमलकी मुलाकातसे उन्हें बजाना ज्यादा कीमती हो ।

दो महीने बाद मुझे फिर किन्हीं छुट्टियोंमें चाचाके पास जाना पड़ा । किसी बातके अवसरपर वे कहने लगे ।

“उस बार तेरा ज़िक्र मैंने ब्रजकिशोरके यहाँ किया था । मैंने बताया राजन आया है, पर कुछ थका हुआ था इसीलिए नहीं आया । वे लोग तो कुछ नहीं बोले । लेकिन उनकी लड़की कमला है न, वह जैसे तेरे न जाने से कुछ चिढ़ी थी, कह रही थी—

“हाँ साहब वडे आदमी है । पैर न घिस जाते इतनी दूर तक आते हुए । अगर वह कल रहें तो उनको आप अवश्य भेज दीजियेगा, नहीं तो जब फिर आये तब कहिएगा ‘कमला ने बुलाया है,’ अगर इस पर भी न आये तो मुझे इत्तला कीजियेगा मैं खुद आऊँगी । यह क्या इन्सानियत है कि हजार बार वह यहाँ आ चुके, लेकिन यहाँ एक बार भी नहीं आये । जैसे यह उनका घर ही न हो । हम लोगों से उन्हे कोई मतलब ही न हो” चाचा इतना कह कर खामोश हो गये । और मैं सोच रहा था कितनी आत्मीयता है इस सदेश में । तभी चाचा चाची से बोले, “बड़ी मुँहफट लड़की है, ऐसी बातूनी लड़की-तो मैंने कहीं देखी नहीं । काफी इण्टेलीजेण्ट भी है ।”

चाची बोलीं, “जो भी हो । मैंने तो उसकी बहुत बदनामी सुनी है । तमाम कालेजके लड़के उसके पीछे पड़े रहते हैं । उसकी माँ कह रही थी ‘बड़ी आफत है इस लड़कीके मारे । कही शादी कर देती तो छुटकारा मिलता । पर इनके बाप घर बैठे लड़का पाना चाहते हैं ।’”

चाचा बोले, “यहाँ मिस्टर ब्रजकिशोरकी गलती है । क्यों उसे इधर-उधर कान्फ्रेंस बगैरह में नाचने-गाने जाने देते हैं ? जमाना नाजुक है, लड़कियोंको तनिक भी आजादी नहीं देनी चाहिए ।”

चाची बोली, “वे विचारे तो नहीं चाहते पर कमलाके आगे किसीकी चलती नहीं ।”

“लड़कीके आगे माँ-बापकी न चले ।” चाचा हँसने लगे । चाची बोलीं, “बात तो कुछ ऐसी ही है । वह वहस करने लगती है, माँ-बाप कोई जवाब नहीं दे पाते । फिर जवान लड़कीपर सख्ती भी तो नहीं की जा सकती ।”

मैंने चाचा-चाचीकी ये बाते सुनीं और इसे सुनकर कमलाके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई । क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस-समाजमें एक बहुत बड़ा दल ऐसा है जिसका काम ही कुमारी लड़कियोंको बदनाम करना होता है । मुझे हर ऐसे आदमीसे नफरत है जो किसी लड़कीके बारेमें बात करते समय उसके चरित्रपर आन्देप करता है । फिर अभी हमारे समाजमें आदमीके रूपमें कोडे फूल रहे हैं । वे कला क्या है, इसे क्या समझे ? कलाकी आडमें उनकी कृतिसित मनोवृत्तियों वह गन्दगी तलाश करती है जिसमें ये नरकके कीडे रेगते हैं । हमें तो आज ऐसे आदमी चाहिए जो कलाकी उच्चति करे, किसी भी अवरोधकी परवाह न करे और उनको, जो अपनी सकीर्णताके कारण कला या कलाकारका अपमान करते हैं, ऐसी ठोकर मारे कि थोख खुलनेपर गन्दगी भरी दुनिया भी उन्हें फूलों भरी लगने लगे ।

मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि मैं इस बार कमलासे अवश्य मिलूँगा पर कुछ ऐसे कारण आ गये कि मुझे बिना मिले ही चला आना पड़ा। फिर पूरे एक वर्ष तक मैं चाचाके पास भी नहीं जा सका। इस बार बद्यपि कमलाको देखने की इच्छा थी। बी० ए० की परीक्षा देकर जब मैं गर्मीकी छुट्टियोंमें घर गया तो पिताने कहा, “तू पयानपुर चला जा। ब्रजकिशोरका निमत्रण आया है। खुट भी बेचारे कई बार कह चुके हैं। हम लोगोंके तो जानेमें बड़ी भंभट है, पर किसीका जाना जल्दी है। उनकी लड़कीकी शादी है।” मैंने पूछा, “बड़ी लड़कीकी।” उन्होंने कहा, “नहीं कमलाकी।”

मुझे आमतौर से विवाह-शादीमें जानेसे तकलीफ होती है पर पता नहीं किस प्रेरणासे मैं वहाँ एक दिवस पहले ही पहुँच गया। वह एक तहसील थी। देहात और शहर दोनोंका मिश्रण। लोगोंने मुझे दस साल बाट देखा था, अतः जल्दी पहचाना नहीं। फिर तो बादसे अपनी प्रकृति के कारण मैंने बहुतसे काम ओढ़ लिये। ब्रात लाहौरसे आई थी। पूरी शादी खत्म हो गई पर मैं कमलाको देख न सका। भौंवरोंके समय रात अधिक हो जानेसे सो गया और फिर जनवासेकी देख-भाल करना मेरी ढूँढ़ी थी, अतः मुझे वही बना रहना पड़ा। चलते समय दोनों दलोंमें काफी झगड़ा-सा हो गया। लड़के बाले लड़की साथ ले जाना चाहते थे और लड़की बालोंका कहना था कि विदा नहीं होगी। लड़कीकी तबीअत खराब है, एक तो इतना लम्बा सफर, फिर दबाका कम भंग हो जायगा, उसकी विदा फिर हो जायगी। उन्हे लड़कीको मारना नहीं है, लेकिन आखिरकार लड़के बालोंकी ही जीत हुई। कमलाकी विदाई करनी ही पड़ी।

घरसे स्टेशन दो मील था। बारातको पहुँचाने मुझे भी स्टेशन जाना पड़ा। क्योंकि सामान अधिक था और उसी गाड़ीसे लाहौर ‘बुक’ करना

था। स्टेशन पहुँचकर मालूम हुआ कि गाडी चार घटे 'लेट' है। छोटा स्टेशन। स्टेशन मास्टरकी इच्छा पूरीकर देनेपर वे स्वयं ये सब काम करने लगे। मैं मुक्त हो गया। स्टेशनके पीछे आमके घने छायेदार वृक्ष थे। वर्हापर दरियों बिछ्रौं। सुबह सात बजेका समय था। चार घटे लेट होनेके कारण गाडी ग्यारह बजे आती। अतः सारे घराती, बरातियोंके भोजन आदिका प्रवर्त्तन करनेमें लग गये। बरातियोंमें कुछ स्नान करने और इन्तजाम करने और बाकी गप्प मारने बैठ गये। कमलाकी पालकी एक कोनेमें, एक पेड़की आडमें सबसे अलग दूर रखी थी। मेरे दिलमें रह-रह कर कमलासे इस चलती-चलाती बार मिल लेनेकी इच्छा उठ रही थी फिर वह बीमार भी तो थी। पर हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उससे, जो एक नव-वधू हो, उससे बात करना जो दुनियाकी नज़रोंमें गैर हो, सुझे एक गुनाह लगता था। तभी एक नौकरानीने, जो पालकीके साथ आई थी, आकर कहा आपको 'बहिनी' बुला रही है। मैं चल गया। समीप पहुँचते ही एक बड़ा धीमा और मीठा स्वर सुनाई दिया। उसने कहा—

“आओ, अब तो तुम बहुत बड़े हो गये।” और इतना कहकर उसने पालकीका एक तरफका पर्दा बिल्कुल उठा दिया और बोली, “आओ, बैठ जाओ।” मैं भिक्खकते-भिक्खकते बैठ गया। उसने किसी प्रकारके आडम्बरका प्रदर्शन नहीं किया, न मस्कार तक नहीं। उसके इस पहले बाक्यने दस सालकी दूरी मिय दी। मैं कुछ सयत होते हुए चौला—

“तुम्हों कौन छोटी रह गई हो।” वह एक फीकी हँसी हँस पड़ी। वह एक उम्दा सलवार और ओढ़नी पहने थी। बहुत दुबली, कमजोर और पीली लग रही थी। वधूकी तरह वह तमाम आभूषणोंसे सजी थी। मैंने यूँ ही बात चलानेको कहा—

“सलवार कबसे पहरने लगी हो।”

“लाहौरकी है।” व्यंगसे वह बोली।

मैं चुप रहा। उसने नौकरानीको बुलाकर कहा—“उधर चली जाओ, किसीको इधर मत आने देना।” फिर बोली—

“दस साल बाट मिल रहे हो। लड़की न होती तो देखती कैसे नहीं मिलते?” मैं चुप रहा। मेरी आँखोंके सामने तमाम पिछली बातें नाचने लगीं।

“मेरे घरके पास तक आते थे पर मेरे यहाँ आनेमें तुम्हारे पैर थकते थे। बुलाया तब भी नहीं आये। आज भी अगर न बुलाती तो शायद नहीं आते?” मैं कुछ बोल न सका। इतने स्नेहसे शिकायत करनेवाले भी जीवनमें कहाँ मिलते हैं? वह फिर बोली—

“मेरी शादीमें कैसे आ गये? अच्छा हुआ, चले आये। बहुत मानता मानी थी, तुम किसी तरह आ जाते, तुम्हें देख लेती चलती बार”। यह ‘चलती बार’ उसने कितनी दर्द भरी आवाजमें कहा था। वह कुछ रुककर फिर कहने लगी—

“तुम जैसे ही आये, मुझे मालूम हो गया। यद्यपि भीतर नहीं आये तुम। मिठाईं भिजवाईं थीं। सोचा, कौन जाने लोग काम-काजमें भूल जायँ और तुम शर्म और तकल्लुफकी वजहसे यूँ ही रह जाओ।” मुझे बाद आया, जब मैं आया था तब नाश्ता कर लेनेके बाद एक नाश्ता और आया था। नौकरानीने पूछनेपर कहा था, “भीतरसे भेजा है।” मैंने समझा मौसीजीने भेजा होगा। और यह भीतर वाला नाश्ता ही मैं टीकसे कर सका था क्योंकि यह अच्छा था। विवाह आदिमें दो प्रकारकी चीजें बना करती हैं। कुछ मामूली और कुछ खास ढंगसे। वह कहती रही।

“समझमें नहीं आता, तुममें इतनी शर्म क्यों है? ईश्वरको चाहिए था तुमको लड़की बनाता, मुझको लड़का।” इतना कहकर वह हँस पड़ी। पर मैं खामोश ही रहा। उसने पूछा—

“ये सुस्ती क्यो ? कुछ उदास दिख रहे हो । तुम्हारे बारेमें मुना था तुम काफी खुशमिजाज हो ।”

मैंने कहा, “बचपनकी बाते याद आ रही है ।” वह पुलक उठी, “सच तुम्हें बचपनकी सब बाते याद हैं । मैं तो जानती थी भूल गये होगे । तभी न जिन्दा रहकर भी तुम्हारे लिए कमला मर गई थी ।”

मैंने कहा, “चुप रहो, क्या बक्ती हो ।”

वह बोली, “गलत कहती हूँ क्या ? या तो अपनेको बड़े आदमी समझते रहे होगे । सोचते होगे कालेजमें पढ़ता हूँ । और वह एक मामूली पढ़ी लिखी देहाती लड़की, उससे दूर ही रहना अच्छा । ज्यादा पढ़ लेनेका तुम्हें घमड हो गया है । यहाँ तो गँवार ही रह गई । बहुत चाहा, बहुत सर पटका पर मेरी चली ही नहीं । काश, मैं भी कालेजमें पढ़ पाती ।” इतना कहते-कहते उसकी आवाज झँब गई । मैंने देखा, जैसे वह व्यथासे भर उठी है ।

मैंने कहा, “अच्छा चुप भी रहो, बहुत कह चुकी हो ।” फिर जैसे वह सचमुच यह प्रसग टालकर अपनेको हल्का करती हुई बोली—

“शादी कब करोगे ?”

मैंने कहा, “मैं शादी करेंगा ही नहीं ।”

“क्यो, क्या किसीसे मोहब्बत हो गई है ।”

“नहीं तो ।”

वह हँसते हुए बोली, “मैंने सोचा शायद कालेजमें किसीसे मोहब्बत हो गई हो ।”

मैं बोला, “क्या कालेज मोहब्बत करनेकी जगह है ?”

उसने कहा, “लड़के तो यही समझते हैं ।” उसका यह जवाब सुनकर मैं चुप हो गया । थोड़ी देर बाद बोला,

“तुमने किसीसे मोहब्बत की है !”

“कोई इस लायक मिला ही नहीं ।” वह सुसकराते हुए बोली ।

मैंने कहा, “मैंने तो सुना है तुम्हारी किसीसे मोहब्बत हो गई है ।”

उसने कुछ कड़ी आवाजमें कहा, “यह नहीं सुना मैं आवारा हूँ, बदमाश । एक नहीं, जाने कितने लड़कोसे मेरा सम्बन्ध है ! इधर-उधर कान्फ्रेन्सोमें नाचती-नाती फिरती हूँ ।” मेरा चेहरा फक पड़ गया । मैंने उसके मुखकी ओर देखा जिसमें शेर उपेक्षा और धृणाके चिह्न थे । मैंने बात बदलनेकी गरजसे बड़े स्नेहसे पूछा, “तुमने नृत्य-कला कहाँसे सीखी । कमला, मैंने तुम्हारे नृत्यकी बड़ी तारीफ सुनी है ।” मेरी बात सुनकर वह न हँसी, न सुसकराई वैसे ही गम्भीरतापूर्वक बोली—

“सीखा कहाँ है ? लेकिन सीखना चाहती थी । इतने ही पर तो यह हाल है, अगर सीखती तो जाने क्या होता ?...अब उस जन्ममें सीखूँगी ।” इतना कहते-कहते उसकी आवाज जैसे उदासीके समुद्रमें छूट गई और वह इतनी पैनी दृष्टिसे शून्यमें देखने लगी कि मैं सहम गया । मेरे मुखसे निकल पड़ा ।

“कमला !”

उसने कहा, “कहो”

मैंने कहा, “तुम्हारी तबीयत खराब है लेट जाओ ।”

उसने कहा, “क्यों ? क्या लेटनेसे तबीयत अच्छी हो जायगी ?”

मैंने कहा, “हाँ, आराम तो मिलेगा ही” ।

वह बोली, “मुझे आराम नहीं चाहिए और अगर लेटना ही होगा तो एक साथ चितामें ही लेटूँगी ।” उसकी थोड़े वैसी ही बनी रहीं निस्तेज, पैनी, शून्यको फाड़कर खा जानेकी प्रतीक्षामें । मैं घबरा उठा । मैंने कहा, “कमला गंभीर मत बनो । थोड़ी देरके लिए तो मेरे सामने

खुश रहो । मेरा इतना कहना था कि वह सिलसिलाकर हँस पड़ी । लेकिन ऐसी हँसी, जिसके पीछे कोई अनुभूति नहीं । भयानक । हिस्टीरियाके हमले सी । मैं सर भुकाकर बैठ गया । मुझे परेशान देख वह कुछ शांत होकर बोली—

“जानते हो मैं कहाँ जा रही हूँ ?”

मैंने मुसकराकर कहा, “लाहौर !”

वह भी बोली कुछ मुसकराकर, “नहीं जी मरने !”

मैंने कहा, “चुप रहो । क्या मरने-मरने लगाई है ! शुभ अवसरों पर ऐसी बातें नहीं की जातीं । तबीयत तो यूँ ही खराब हो जाती है । वहाँ पहुँचोगी सब ठीक हो जावेगी ।”

वह बोली, “यह तबीयत ठीक होनेके लिए खराब नहीं हुई है ।”

मैं चौक उठा, पर सयत होकर बोला, “क्या हुआ ? इच्छा रक्खो, अच्छी हो जाओगी ।”

वह बोली, “यही इच्छा तो नहीं है, फिर एक गवार और देहाती बनकर जीने से मरना ही अच्छा ।” कहकर वह एक फीकी हँसी हँसने लगी ।

तभी अचानक उसके पति पर दृष्टि गई जो कुछ दूर पर किसी से खड़े-खड़े बाते कर रहे थे । नाटे और मोटे, सूट पहने हुए । बड़े भद्रे । कमला जितनी ही ढुबली-पतली सुन्दर थी, वे उतने ही नाटे-मोटे और भद्रे थे । पढ़े भी थे तो शायद हाई स्कूल फेल । रुपया था, व्यापार करते थे ।

मैंने पूछा, “देखा उनको ? पसन्द हैं ?”

वह हँस पड़ी और मुँह बिचकाकर बोली, “उस गणेशजी ऐसे है मोटे धमधूसर ।” मैं भी हँसने लगा ।

मैंने कहा—“शादीके पहले नहीं देखा था ?” उसने ‘न’ सूचक गर्दन हिलाई । फिर बोली—

“शादीमें लड़कियोंसे कौन पूछता है ? फिर मुझसे किसकी हिम्मत थी, जानते ही थे मैं मना कर देती । खैर, बाबूजीके सरकी बला टली । वेचारोकी बड़ी बदनामी हो रही थी । ये लोग भी अच्छे ही हैं, केवल सूख पसन्द की, दहेज-ओहेज भी नहीं लिया ।”

तभी मुझे ऐसा लगा, कैसे कुछ लोग मुझे खोज रहे हैं, क्योंकि गाड़ी आनेका समय हो गया था । मैं उठनेको हुआ । मेरा दिल भर आया था । उस थोड़ी देरकी बातचीतने मुझे दर्दसे भर दिया था ।

मैंने पूछा, “मेरे लायक कोई सेवा ?”

वह फिर फीकी हँसीमें बोली, “मेरे लिए १ मुझे अब कुछ नहीं चाहिए । मैंने जो-जो चाहा मुझे नहीं मिला, मुझे नहीं दिया गया । और अब आखिरी बक्तमें जल्दरत भी क्या ?” कुछ रुककर फिर बोली, “तुम्हारे चान्चा कह रहे थे, तुम लेखक हो रहे हो । अखबारोमें काफी लिखते-पढ़ते हो । मैं तो रह गई । बहुत-सी चीजें कहना चाहती थीं, लिखना चाहती थीं, पर इस लायक नहीं हूँ । कुछ ऐसा करो कि यह दुनिया बदल सके । हम स्त्रियोंकी आवाज भी लोग सुने और सुननेकी जल्दरत समझें । काश । मैं तुम्हारी तरह होती तो दुनियाको बताती कि ऐसी जिन्दगीसे लड़कीका गल घोटकर मार डालना अच्छा है ।”

मेरी ओंखोंसे ओंसू निकल पड़े और मैं एक क्षण भी अपनेको अधिक ठहरनेमें असमर्थ पाकर तेजीसे चला आया और काम करने लगा । गाड़ी चलते समय उसने इशारा किया । मैं डब्बेके साथ दौड़ने लगा । उसने कहा, “देखो भूलना नहीं चाहे कमला मर भी जाय ।” और फँफ़ककर रो पड़ी । मैं पीछे छूट गया और वह ओंखोंसे खो गई ॥

और आज कमला मर गई, जीमें आता है, मैं यह वाक्य ‘कमला मर गई’ बार-बार दोहराऊँ । तबतक दोहराऊँ जबतक हुनिया उसे सुनकर यह



## राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादवका परिचय उन्हीके शब्दोमें इस प्रकार है—

“जी, नाम मेरा राजेन्द्र यादव है। शहरोमें शहर आगरामें २८ अगस्त १९२६ को अवतार लिया। पिताजी डिस्ट्रिक्ट बोर्डके डॉक्टर थे सो बचपन उनके साथ मथुराके कस्बों, मेरठ और आगरे में बीता ( यो वह बीत ही गया हो, सम्पर्कमें आनेवाले हम-उम्र या छोटे बुजुर्गोंका ऐसा कर्तव्य विचार नहीं है । )। आगरा कॉलेज नामक वटवृक्षके नीचे ‘बोधिसत्त्व’ प्राप्त किया सन् ५१ में। तबसे रिसर्च, ‘ज्ञानोदय’ और सरकारी नौकरीके त्रिलोकमें भटक चुका हूँ। फिलहाल कलकत्तामें अहिंदी भाषियोंको सरकार वहादुरकी ओरसे हिन्दी पढ़ाता हूँ। फिर भी लगता ऐसा रहता है जैसे चिरन्तन बेकार हूँ ।”

राजेन्द्र यादव कदाचित् सूत्र रूपमें कहानी कहनेमें विश्वास नहीं रखते। उनकी कहानियोंसे लगता है कि वह विस्तारके साथ ही कहानी कह सकते हैं। ‘डिटेल्स’ के प्रति उनका मोह बहुत है, और यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके ‘डिटेल्स’ बहुत सच्चे, खरे और मनको चुभनेवाले होते हैं। मध्यवर्गीय युवक-युवतियोंकी काज्ञाएँ, परवशता और बुटनको राजेन्द्र यादवने अपनी कहानियोंमें बहुत सफलताके साथ चित्रित किया है। वह स्वयं कोई सन्देश नहीं देते, किन्तु उनकी कहानियों बिसी-पिटी परम्पराओंसे विद्रोह करनेके नोटपर ही समाप्त होती है।



## ० खेल-खिलौने

—राजेन्द्र यादव

बड़े आदरके साथ जैसे ही हमने दोनों हाथ माथेतक उठाकर नमस्कार किया, कार छुर्रधू करके हमारे बीचसे चल दी। एक ओर मैं खड़ा था, दूसरी ओर वाबू जी। दरवाजेपर झुण्डका झुण्ड बनाये वे लोग भक्ती हुई कारकी ओर हाथ जोड़ रही थी। जब वे कारकी ओर देखती तो बड़ी शिष्टता और नम्रतासे मुस्कुरा देती, जैसे वे इसीकी अभ्यस्त हैं और जब जरा पीछे हटकर दरवाजेसे बाहर निकल आते किसी बच्चेको भिड़कती या कुद्ध होकर पीछे धकेलतीं तो उनकी भवे लपकती तलबारकी तरह माथेपर तन जाती। कारके स्टार्ट होते ही इतनी देरसे लगाये हुए शिष्टताके सारे अनुशासन टूट चुके थे और उन कार बालियोकी मुखर आलोचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी—जिनका विषय था, चश्मेकी कमानी, पाउडर, दॉत, मुँह, बाल काढनेका ढग, ब्लाउजकी डिजाइन और कट, साड़ीकी किनारी इत्यादि। नये आदमियोके सामने जबर्दस्ती चुप किये गये और स्वतः ढरे हुए बच्चे अब और जोरसे चीजे माँगने लगे थे। —

इससे पहिले कि मैं जवाब दूँ, छोटी बीराने उछल-उछलकर बता दिया—“सुधीन्द्र भाई साहब, आज नीरजा जीजीको देखने आई थी उनकी सास।” और बच्चोंने खूब उछल-कूदकर एक साथ ही इस बातको दुहराया “सास देखने आई थी।”

पृथ्वीपर पड़े हुए कारके निशानोको देखता हुआ मैं लौटने ही को था कि मेरी निगाह सामनेसे आते हुए सुधीन्द्र भाईपर पड़ गई। शेरवानी, ढीला पाजामा, सैडल और हाथमे अटैची लिये वह धूलमें सने चले आ

रहे थे। मैं पूछनेको ही था “लौट आये?” तभी स्वयं उन्होंने ही पूछ लिया—“कहो भाई क्या हल्ला है? आप सबलोग क्यों यहाँ जमा हो रहे हैं?” एक विचित्र प्रकारका बुझा हुआ उनका स्वर था।

फिर भी मैंने पास जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखकर गम्भीरतासे बताया, “नीरजाकी सुसरालसे कुछ स्त्रियों देखने आई थीं उसे, अभी तो गई है आपके आगे-आगे। हमलोग उन्हे विदा करने आये थे। आप सीधे स्टेशनसे ही आ रहे हैं न, लाइए अटैची मुझे दीजिए। नलिनीके घर सब ठीक-ठाक हैं न, तार देकर क्यों बुलाया था?” अटैची मैंने उनके हाथसे ले ली, लेकिन मुझे लगा सुधीन्द्र भाईके चेहरेपर उत्साह नहीं था।

“हाँ तो नीरजाको देखनेको आये थे, फिर क्या हुआ?” उन्होंने सिर झुकाकर थोठोंकी पपड़ीको उँगलियोंसे टटोलते हुए पूछा। हम लोग एक-एक कदम भीतर चल रहे थे। बरामदा पारकर अब हम ड्रॉइंगरूममें आ गये थे। बाबूजी अपने कमरेमें चले गये, जीजी, माताजी, भाभी, बुआ, और छोटे-छोटे बच्चे सब हमसे पहिले ड्रॉइंगरूममें आ चुके थे। सोफे और कोचपर अब वे लोग बैठ गई थीं। बीचकी मेजपर उन देखनेवालोंके लिए लाये गये नाश्तेके वर्तन, कप, प्लेट, चम्मच, चायटार्नी, गिलास, ट्रे इत्यादि रखे थे। किसी प्लेटमें वाकी बच्ची दाल-मोट पड़ी थी, किसीमें चंगाली मिठाईको काटता चम्मच। प्यालोंके तलोंमें ओडी-थोडी चाय बच गई थी। एक बड़ी प्लेटमें केलोंके छिलके, लुकाट और सेवके बीज, सन्तरेकी जेली और टोस्टमें लगानेके मक्खनकी छिकियाके कागज पड़े थे। मेजपर चारखानेका मेजपोश था।

“आओ भाई सुधीन्द्र, आओ!” सभीने हमें देखकर उत्साहसे बुलाया—“तुम कब आये? अभी आ रहे हो? अरे, जरा देर पहिले आते?” अपने पास बैठनेकी जगह छोड़कर बुआने आपसमें बढ़े उत्साहसे होती

## नये चित्र

हुई बातोंका सिलसिला एकदम तोड़कर कहा। मैंने अटैची कोनेमें रख दी और बीचकी मेज एक ओर दीवालके सहारे हटाकर उस जगह एक आराम कुर्सी खीच लाया। सुधीन्द्र भाई उसी पर बैठ गये, मैं हत्येपर बैठ गया। बच्चे इधर-उधर घेरकर खडे उस बचे हुए नाश्ते चाय, फल इत्यादिकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछने धीरे-धीरे अपनी मॉओसे मॉगना भी शुरू कर दिया था। बुआने जैसे बिलकुल नई बात हो, सुधीन्द्र भाईको सूचना दी—“नीरजाको देखने आये थे, उसकी सुसरालसे जहाँ रिश्ता हो रहा है न।”

तभी जीजीने एकदम कहा—“मैं यहाँ आई कमरेमें कधा लेने, देखा एक चश्मेवाली औरत खड़ी है। मैं एकदम झक्क रह गई—हाय राम है कौन यह, यो बुस आई है। उसके पीछे एक और लड़की-सी, फिर एक तेरह-चौदह सालका लड़का। पूछा, तो उसने बताया—हम लोग बनारससे आये हैं। मेरी समझमें नहीं थाया, क्या करूँ। सबसे पहिले जाकर बाबूजी को जगाया। वे झट तहमट बॉधे ही दौड़े। और जब भाभीको बताया, तो चूल्हेमें रोटी डालकर वह भागी कि बस ! और भैया, बुआने तो तमाशा ही कर दिया, कभी इस धोतीको उठाये कभी उस ब्लाउजको पहने, ‘मैं क्या पहनूँ मैं क्या पहनूँ’ कहती-कहती सारे घरमें ऐसी नाची-नाची फिरी है कि देखते ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।”

“और अपनी नहीं बतायेगी।” भाभीने हाथ बढ़ाकर कहा—“धोबी मेरा कपड़ा नहीं दे गया, कहाँ तो परसो ही दे जानेको रो रहा था। लो, कधा भी उसी कमरेमें छोड़ आई—आग लगे ऐसे घरमें। कोई चीज ठीक जगहपर रखी हुई पाती ही नहीं। बिन्दीकी शीशी अभी यहाँ रखी थी, न जाने कौन निगल गया। अपने कामकी चीज हो या न हो बच्चोंको उससे खेलना। नाकमे दम है। और भी बीस बातें। रोई पड़ती थी बीबीजी—अरे हाँ हाँ री ! क्या है, क्यों जान खाये जा रही है।” और जीजीकी बात कहती-कहती भाभीने बीराके दोनों हाँथ झटक दिये, क्योंकि बिना

उनकी बातोंमें रुचि लिये हुए, वह बार-बार उनका मुँह अपने~~खिलौने~~ हाथोंसे अपनी ओर करके ठिनकती हुई दुहराये जा रही थी—“भाभी केला दिलवाओ एक, बेबीने बंगाली मिठाई खा ली, हम भी लेंगे ।”

भिड़की खाकर वह भी अब शेष तीनों बच्चोंके पास चली गई । वे सब नाश्तेकी उसी मेजके चारों ओर घिरे, बाकी बच्ची चीजोंका हिस्सा बॉट कर रहे थे—“तूने अपने ‘कप’ में ज्यादा चाय कर ली, इतनी ही हमें भी दे । आप तो दाल मोटकी तश्तरी लेकर अलग बैठ गये, कल हमारे पटाखे माँगने कैसे आ गये थे, तब तो ‘आम्मे बी दो पताके !’ अम्मा देखो इस उमाने चायदानी फोड़ी ।”

“अच्छा हल्ला मत मचाओ ।” माताजीने उन्हें भिड़ककर कहा—“उनके आते ही सारे घरमें ऐसी भगदड़ मची कि बस क्या बताये, कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर । हमारे तो भाई, बच्चे भी गजबके हैं, घर भाड़ों, साफ करो, एक मिनट बाद फिर वही धूरा-सा करके रख दे । लोगोंके यहाँ न जाने कैसे सजे-सजाये घर रहते हैं । और बैठक तो ये समझो, इस कैलाशने (मैने) भाड़-पोछ दी थी, कबाड़खाने-सी पड़ी थी, कहाँ बैठाते, कहाँ उठाते ?”

मुझे इस समय अपनी बहादुरी जतानी बड़ी आवश्यक लगी, फौरन ही बोला—“बैठक मैने दोपहरको ही भाड़-पोछ दी थी । तस्वीरोंके चौखटे साफ कर दिये थे, मैटलपीसपर ये सारे खिलौने ठीक-ठाक रख दिये नहीं तो आनन्द आता ।” और मैने सब खिलौनों-तस्वीरों इत्यादि पर दृष्टिपात किया ।

“जीजी, बच्चा ।” इस बार जीजीका बच्चा नाश्तेकी चीजे खन्म हो जानेपर फिर जीजीके पास आ गया था और खिलौनोंका नाम सुनकर मैटलपीसपर रखे चीनीके भगवान् बुद्धकी ओर उँगली उठा-उठाकर कह रहा था ।

“हाँ बच्चा, जाओ, तुम सब लोग जाओ—वाहर खेलो, देखो सुधीन्द्र भइया आये है—बाते करने दो। जाओ, बेवी, विभास, जाओ सब बाहर जाओ, इसे भी ले जाओ।” और जीजी स्वयं उठकर सब बच्चोंको बाहर कर आई।

“हमने तो समझा था, नीराकी सास कोई बुड़ी-सी होगी, पुराने ख्यालोंकी; पर वह तो खूब जवान है। फैशनमें रहती है। उल्टे-पल्लेकी धोती, चश्मा। और लड़केकी भाभी तो फैशनके मारे मरी जा रही थी, देखा नहीं लिपस्टिक कैसी गाढ़ी-गाढ़ी पोत रखी थी, बार-बार पर्स खोलकर रूमाल निकालती, कभी तहकी तह होठोपर लगाती, कभी माथें-गालोपर—पाउडर तो बोरी भर लगाया था—मुझे तो बड़ी भद्दी लगी। लड़का सीधा था। छोटा भाई है।” जीजीने बैठते ही बताया।

“और देखा कितना छोटा है, मैट्रिक कर चुका है, और एक ये है कैलाश, ऊट-का-ऊट अभी बी० ए० में ही पढ़ता है।” माताजीने कहा।

मैं और सुधीन्द्र भाई चुपचाप बैठे थे। यहाँ कोई किसीकी सुनना ही नहीं चाहता था। एक ही बातको अपने-अपने शब्दोंमें कहनेको सभी उत्सुक। समझ में नहीं आता था किसकी बातको सुना जाय। तभी अचानक बातोंके प्रवाहको पलटनेके लिए मैंने कहा—“आप लोग तो यहाँ बैठी बाते बना रही हैं, नीरजा कहों है, उसे भी बुला लीजिए न। सुधीन्द्र भाई आये हैं, न चाय न पानी।”

“वह तो भीतरवाले कमरेमें मुँह डूँके पड़ी है—सिसक रही है। अब बीस बार तो मैं समझा आई हूँ—मानती ही नहीं है।” चाची बोलीं।

“क्यों?” इस बार सुधीन्द्र भाईने अचानक चौककर मुँह उनकी ओर बुमाया।

“कहती है, मैं शादी नहीं करूँगी, मुझे पढ़ने दो, अभी मेरी इच्छा नहीं है। खूब समझाया कि सभी लड़कियोंकी शादी होती है, तू क्या

अनोखी है, और हमलोग क्या हमेशा ऐसी ही है। पर उसने तो न माननेकी जैसी कसम ही खा ली है।” चाचोने फिर बताया।

“और वहाँ लड़का जिद किये बैठा है कि शादी करेंगा तो इसीसे करेंगा—वापसे साफ कह दिया है। फोटो देखनेके बाट यहाँ चुपचाप आकर स्कूल जाते हुए देख गया कही, वस तभीसे जिद किये है। तभी तो ये सब आई थीं देखने।” माताजीने कहा कुछ चिन्तित स्वरमें।

नीरजाके रोनेकी बात सुनकर बातोका उत्साह मन्द पड़ गया। तभी बाहरसे जीजीका बच्चा फिर उनके पास आ गया—सबके मुँहकी ओर देख-कर धीरे-धीरे बोला—“जीजी वह बच्चा लेगे।” उसकी निगाह मैटलपीसपर रखी उस बुद्धमूर्तिपर थी।

“बात क्यों नहीं करने देता। सब बच्चे बाहर खेल रहे हैं और तू यहाँ जमा है।” इस बार उसे माताजीने फटकारा। वह सहमकर चुपचाप खड़ा हो गया, गया नहीं। जीजी उसके सिरपर सात्वनासे हाथ फेरने लगी। “जिद नहीं करते मुन्ही।”

“अब नीरजा बेचारी रोये नहीं तो क्या हो।” मैने नीरजाका पक्ष लेकर माताजीसे कहा—“आप तो इस बुरी तरह पीछे पड़ जाती हैं। नये आढ़मियोके सामने अधिक हठ भी तो नहीं कर सकती, और आप हैं कि उन्हींके सामने जोर ढे रही है, ‘यह दिखाना, वह दिखाना।’ सच, सुधीन्द्र भाई, माताजीने नीरजाकी कोई चीज ऐसी नहीं छोड़ी जो दिखा न दी हो उन्हें। क्लासमे कराये गये कटाई-सिलाईके कामोसे लेकर मेजपोश, स्वेटर-सब। यहाँ तक कि हाईजीनमे बनाये गये शरीरके विभिन्न अङ्गोके डायग्राम्स तक। अब उन्हींके सामने जिद करने लगीं कि ‘गाना सुना, गाना सुना,’ मुझे सच बड़ा गुस्सा आया।”

“सुनाया उसने ?” सुधीन्द्र भाईने पूछा । दोनों बुटनोंपर अपनी कुहनी रखे, वे धीरे-धीरे अपनी माथेकी सलवटे टटोल रहे थे—बड़े चिन्तित, उदाससे ।

“सुनाना पड़ा । सुनाये नहीं तो क्या करे । यहाँ पीछे पड़नेवाले तो ऐसे-ऐसे जबर्दस्त हैं, हमारी माताजी, बुआ है, चाची है ।” वास्तवमें मुझे नीरजाको दिखलानेके ढंगपर बड़ा क्रोध आ रहा था ।

“अब, भई, ये तो समझते नहीं हैं” माताजीने अपनी सफाई बड़े गम्भीर स्वरमें दी—“लडकियोंकी शादीका कितना बोझ मॉ-ब्रापपर चढ़ा रहता है इसे तो उनकी ही छाती जानती है । तुम्हारा क्या है, तुमने तो उठायी जबान और दे मारी । लडकियाँ तो सब मना किया ही करती हैं । हमने अपनी शादीकी बात सुनी थी तो हम भी रोये थे ।”

“नीरजा ऐसी लड़की नहीं है—वह वास्तवमें अभी पढ़ना चाहती है ।” मैं अड़ा रहा ।

“तो पढ़नेको कौन मना करता है, अब हमारी तरफसे चाहे जिन्दगी भर पढ़ो । क्यों भई सुधीन्द्र !” माताजीने सुधीन्द्र भाईका समर्थन प्राप्त करनेके लिए उनकी ओर देखा ।

पर माथेकी सलवटे डॅगलियोंसे टटोलते हुए वे न जाने कबसे क्या सोच रहे थे । जबसे आये थे, उनकी यह उदासी मुझे अबर रही थी । जीजीका बच्चा (उसे प्यारमें वह ‘पापा’ कहती थी) अब भी भगवान् बोधिसत्त्वकी मूर्तिके लिए हठ कर रहा था । मुझे उसका यह हठ करना बुरा लग रहा था । हम सब लोग बाते कर रहे थे पर उसे जैसे वही धुन । मैं इस मूर्तिको ग्यारह रूपयेमें विशेष रूपसे प्रदर्शनीसे लाया था । वास्तवमें उसकी चीनी बहुत बढ़िया थी । माताजीकी बातपर कोई कुछ नहीं बोला—थोड़ी देर सब चुप रहे । आखिर मुझसे नहीं रहा गया, मैंने पूछँ ही

लिया—“क्यों सुधीन्द्र भाई, जबसे तुम आये हो, बहुत उदास और सुस्तसे हो । क्या बात है ?”

“हॉ रे, तू जबसे चुप ही है, सच लोग ऐसे जोर-जोरसे बोल रहे हैं ।” माताजीने एकदम इस प्रकार कहा जैसे विषय बढ़ाकर बोल रही हो, पर वह वास्तवमें इतनी देरसे उनकी बातका समर्थन न करनेकी सफाई मौंग रही थीं ।

“मैं ?” बड़े भर्यायेसे गलेसे उन्होंने कहा, फिर एकदम गला साफ करके संयत स्वरमें बोले—“मैं । नहीं कोई खास बात नहीं है ।”

“तो भी ?” मैंने पूछा “आपने बताया नहीं नलिनीके यहाँ कैसे है—तार क्यों दिया था ?”

“कौन नलिनी ?” जीजीने, धीरेसे पूछा बुआसे, “मुझे तो नहीं मालूम ।” कहकर उन्होंने प्रश्न-मुद्रासे चाचीकी ओर देखा, चाचीने माताजीकी ओर ।

“सुधीन्द्रकी धर्म-बहिन है एक, मुरादाबादमें ।” माताजीने बताया, फिर स्वयं जाननेकी इच्छासे सुधीन्द्रकी ओर देखा ।

सुधीन्द्र भाई एक और मुँह बुमाये टरवाजेमेंसे अन्यमनस्कसे बाहर देख रहे थे, उसी प्रकार बिना हिले-डुले उन्होंने कहा, “नलिनी मर गई !”

‘भक्त’ से जैसे हम लोगोंके धीन्में थाली गिर पड़ी हो । एक-साथ सबके मुँहसे निकला—“नलिनी मर गई ?—कैसे ?” हम बुरी तरह चौक उठे ।

सुधीन्द्र भाई उसी प्रकार अविचलित रहे, एकदम झटकेसे उन्होंने गर्दन बुमाकर माताजीकी ओर मुँह किया—फिर सूनी ओँखोंसे देखते हुए बोले—“हॉ, नलिनी कल साढ़े नौ बजे मर गई । तार देकर उसने मुझे बुलाया था ।”

“कैसे ?” एक बार सबके मुँहसे निकला। जीजीने माताजीसे पूछा, “क्या उमर थी ?” माताजीने हाथसे उन्हे चुप रहनेका इशारा किया, और मुँहपर सारी उत्सुकता लाकर सुधीन्द्र भाईके मुँहकी ओर देखने लगीं।

“कैसे मर गई ?—जैसे सब मर जाते हैं।” धीरेसे वह हँसे—उनकी हँसी कितनी व्यथाभरी थी, मेरे हृदयमे जाकर जैसे वह जोरसे लरज उठी। उनका सिर झुक गया था। दोनो हाथकी उँगलियोंको एक दूसरेमे फँसा, उन्हें जोड़े हुए वे कुछ क्षण सोचते रहे। एक गहरी सॉस छोड़कर उन्होंने झटकेसे सिर उठाया। “कैसे मर गई, एक लम्घी कहानी है। क्या कीजिएगा सुनकर ?”

अब बातावरण एकटम बढ़ गया था। अभी होनेवाली बहस और आलोचनाएँ न जाने कहॉ चली गई। सुधीन्द्र भाईकी उदासीका ऐसा कोई कारण होगा मैंने सोचा भी न था। “क्या उम्र थी ?” जीजीने सीधे ही पूछ लिया।

“उम्र ?—पूरे इक्कीसकी नहीं थी। यह मेरे पास फोटो है।” उन्होंने अचकनके भीतर हाथ डालकर पर्स निकाल लिया और जीजीकी ओर बढ़ा दिया—उसमे एक पासपोर्ट साइजका फोटो लगा था।

बड़ी उत्सुकतासे जीजीने फोटो लिया—चाची, बुआ, माताजी सभी उसपर झुक गईं। “लड़की बड़ी सुन्दर है। मुँहपर कैसा भोलापन है। थोखे बड़ी प्यारी हैं। सीधी-सी लगती है।” सभीने अपनी-अपनी राय दी। खूब देखनेके बाद जब वह पर्स उन्हे लौटाया गया तो इतमीनानसे देखनेके लिए मैंने ले लिया। लड़की वास्तवमे बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी।

“कैसे मर गई ? क्या किस्सा है, सुनाओ तो सही जरा !” जीजीने आग्रहसे पूछा। सभी लोग इसी आशासे उनकी ओर देख रहे थे।

“क्या करोगी, पूरा किस्सा है—लम्बा” सुधीन्द्र भाईने टालना चाहा।

“हमें अब क्या करना है, पूरा सुनाओ, तुम उसे कैसे जानने लगे?”

जीजीने पास खड़े अपने पापाके दोनों हाथ पकड़कर कहा, क्योंकि हाथ-पैरांसे उसकी खिलौना लेनेकी मूँक जिद जारी थी। मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। ऐसे जिही बच्चे मुझे जरा भी पसन्द नहीं हैं। मैंने कहा—“पूरा तो सुनाओ—इस पापाको तो सेंभालिए जबसे अड़ा हुआ है, वह जिद मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।”

“नहीं-नहीं अब कहाँ जिद कर रहा है?” जीजीने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये थे, लेकिन पैरोंको जमीनपर त्रमसे पटकता हुआ वह मचल रहा था।

बात कहाँसे शुरू करे शायद सुधीन्द्र भाई यही बड़ी गम्भीरतासे सोच रहे थे। लोग सुननेके लिए उत्सुक हैं या नहीं, उन्होंने अपने उदाससे नेत्रोंसे चारों ओर देखा। सिवा उस बच्चेके जो अब डरकर चुप हो गया था किन्तु गया नहीं था, सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्होंने माता जीकी ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—“भाभी जी, जिन दिनों आप बढ़ायूँ थीं न, सन् पैतीसकी बात है, शायद मैं पिताजीके पास गौवमे ही था। तभीका किस्सा है, लीजिए अब आप नहीं मान रहीं तो सुनिए—शुरूसे बता रहा हूँ। हॉ तो होऊँगा कोई छः सात सालका। तभी शहरसे पिताजीके दोस्त देवनारायण बकील आये उनके पास। पिताजीने बुलाया था। पिकनिकका प्रोग्राम था। तभी मैंने पहिली बार नलिनीको देखा था। बालोमे रिवन बॉघती थी। रङ्ग-विरङ्गे फ्राकपर हल्के हरे रङ्गका छोटा-सा चेस्टर पहिने वह चिलकुल गुडिया-सी लगती थी। मैं लाख जिमींदारका लड़का सही, लेकिन था तो गौवका ही। गेलिस लगाकर एक ढीला-ढाला हाफ पेण्ट और एक कोट पहिने था। उससे बोलनेकी बड़ी इच्छा होती थी, पर सकुचित होकर रह जाता। सुबह छः बजे ही वे लोग कारसे आ गये

थे, वकील साहब भीतर थे, पिताजीसे बाते कर रहे थे। हम दोनों नाश्ता इत्यादि करके बाहर धूपमें दूर-दूर ही धूम रहे थे। शायद सङ्कोच यह था कि कौन पहिले बोले? हमारे घरके सामने ही थोड़ी-सी जगह छोड़कर आम रास्ता था। उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा कच्चा तालाब—पोखर। उसमें आठ-दस बतखे तैर रही थीं, हमलोग थोड़ी देर उन बतखोंको देखते रहे, कभी-कभी कनखियोंसे एक-दूसरेको भी आपसमें देख लेते। अचानक अपने हाथोंको अपनी जेबोंमें और भी अधिक धैर्यकर वह बोली, “देखो, कितना जाड़ा है, बतखोंको जाड़ा ही नहीं लग रहा।” मैंने धीरेसे कहा, “ये तो ऐसे ही तैरती रहती है।” इसके बाद तो वह मेरे पास आकर दुनिया भरकी बातें करने लगी। उसके बोलनेके बेभिन्नक टगको देखकर तभी मैं चकित रह गया। दुनिया भरकी तो उसे बातें याद थीं, और बड़ी बातूनी। उसने सब बताया, जिस स्कूलमें वह पढ़ती है, उसमें कौन टीचर अच्छी है, कौन बुरी, किस-किस लड़कीसे उसकी अधिक मित्रता है। जिस बसमें वह जाती है उसका नम्बर क्या है। खैर उस दिन उसने खूब बातें की। मैं बिलकुल चुप रहा क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। फिर भी हम दो दिनोंमें खूब घुल-मिल गये थे। कैरम वह बड़ा अच्छा खेलती थी। और ताश, लूडो, स्लेकलैडर, ट्रेड, ओम्नीबस न जाने क्या-क्या तो वह खेल लेती थी। खैर, पिकनिकके पश्चात् जब वे लोग चले गये तो अचानक मुझे लगा जैसे दुनियामें कोई काम करनेको ही नहीं रह गया है। फिर तो जब भी पिताजीके साथ शहर जाते उनके यहाँ ज़रूर जाते। लेकिन थोड़े दिन घर रहकर वह अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ चली गई।”

“मेरी पढाई चलती रही।” सुधीन्द्र भाई कुछ रुके। तभी मैंने देखा, धीरे-धीरे कुनमुनाता हुआ पापा रह-रहकर जीजीको नोचता हुआ अपनी जिदको चालू रखे हुए है। अदम्य इच्छा हुई, जोरसे एक चॉटा मारकर धकेल दूँ। न बातें करने देता है, न कुछ सुनता है। बड़े लाडले आये।

पर जैसे-न्तैसे अपनी इस इच्छाको द्वाया । निश्चय कर लिया कि इसबार इसने बातोंमें जरा भी विव्ह डाला तो कान पकड़कर बाहर निकाल दूँगा, फिर चाहे जीजी थकती ही रहें ।

“मैट्रिक कर लेनेके पश्चात् वकील साहब और पिताजीमें यह एक अच्छा खासा विवाट उठ खड़ा हुआ कि पढाई जारी रखनेके लिए मै हॉस्टलमें रहूँ या वकील साहबके यहाँ । पिताजी हॉस्टलके पीछे पढ़े हुए थे क्योंकि दो-चार महीनेकी बात होती तो कुछ नहीं था । खैर, मैं यहाँ हॉस्टलमें आया । वकील साहबने आजा दे दी कि दिनमें एक बार यहाँ जरूर आओगे । हॉस्टलमें अच्छी तरह जम लेनेके बाट मै वकील साहबके यहाँ जाने लगा । एकाध वण्टा बैठता और चला आता । वकीलनी ( जिन्हें मैं चाची कहता था ) और वकील साहबसे ही बातें करता था । बातोंमें वह नलिनीकी तारीफ करते । हमारी नलिनी ऐसी है, वैसी है, यों पढ़नेमें तेज है, यो खेलनेमें होशियार है । एकाध बार तो मैंने सुना, फिर तो मुझे मुँझलाहट आने लगी । क्योंकि उसकी प्रशंसा करते वह थकते नहीं थे और मुझे लगता था जैसे उनके कहनेका बस इतना ही मतलब है—तुम चाहे जितने होशियार हो, नलिनी तुमसे लाख दर्जे इंटलिजेट है । अक्सर वह पूछते, कुछ तक-लीक तो नहीं है । रोज ही कुछ न कुछ खिला देते । मैंने वहाँ सैकेन्ड-इयर किया, और छुट्टियोंके पश्चात् जब मैं वहाँ गया तो बताया गया कि नलिनी अब वहीं आ गई है । मैट्रिकमें फर्स्ट पास हुई है, सैकेन्ड पोजीशन है । यहीं पढ़ेगी । कभी-कभी मैं उसके विषयमें सोचा करता, न जाने कैसी होगी । हमलोग सन् छुत्तीसमें मिले थे और अब था पैतालीस । नौ-दस वर्षका अन्तर बहुत होता है । तभी वकील साहबने उसे बुलाया, “चाय ले आओ नलिनी ।” और नलिनी चायकी ट्रे लेकर आई । मैं बुरी तरह चौक गया, पहिली जो धुंधली नलिनी मेरे मानस-पटलपर थी उसकी इससे कोई नुलना नहीं थी । मैंने नमस्कार किया । नलिनीने चायका ट्रे रखकर नम-

स्कारका उत्तर दिया मुस्कुराकर। और वेमिभक वकील साहबके पास बैठ गई।

“भाई साहब, फर्ट डिवीजनमे पास होनेकी मिठाई तो खिलवाइए।” मै चकित रह गया, लाख वचपनमें मिले सही लेकिन मै तो एकदम किसी लडकेसे भी इस तरह नहीं बोल सकता। फिर वह तो पन्द्रह वर्षकी एक लडकी थी जो धोतीमे सिमटी सिमटाई-सी अपनेमे ही लीन हो जानेकी चेष्टा किया करती है। पर न तो उसकी वाणीमे, न व्यवहारमे, किसी प्रकारकी मिर्झक, सङ्कोच या लज्जा मुझे लगी, इसके विपरीत मै स्वय ही सोचमे था कि क्या उत्तर उसे दूँ। चाय बन गई थी तभी अपना कप उठाकर वकील साहबने कहा—“तुम तो इसे भूल-भाल गये होगे। यह तो वही नलिनी है जो तुम्हारे यहाँ गई थी, यह चुड़ैल कुछ भी नहीं भूलती—न मालूम वच-पनसे ही ऐसी याददाश्त लेकर पैदा हुई है। छोटी-से-छोटी बात सब इसे याद है।”

“इन्हे क्यों याद होगा—हारते थे न, जिस खेलको देखो उसीमे गोल रखे थे। मिठाई चाहे जब खिलवाइए, लेकिन चाय क्यों ठण्डी किये डालते हैं?” और वह कुटिलतासे मुसकराकर कपपर झुक गई। मै उसकी ओर सीधा देखनेका साहस नहीं कर सका। इधर-उधर भागती दृष्टिको समेटकर उस ओर लानेकी चेष्टा करता, पर जैसे वह वहाँ पहुँचकर किसी शक्तिसे छिटक उठती। उसके इस उत्तरपर भी मैं कुछ नहीं बोला।

“भाई साहब। आप तो बहुत ही शर्माते हैं।” उसने फिर कोचा। इस बार मेरा सारा सङ्कोच जैसे इस वाक्यकी प्रतिक्रियासे ज्ञोभ बन उठा। बड़ी असभ्य लडकी है, मनमें सोचा, जबसे आई है कुछ-न-कुछ बोले ही जा रही है। जब मैं नहीं बोलना चाहता तो मेरे पीछे क्यों पड़ी है? मैंने कहा—“आप तो मुझसे अच्छी तरह पास हुई है, आप पहिले खिलाइए न।”

“या तो बिल्कुल ही नहीं बोल रहे थे, और अब बोले तो ऐसी शिष्टता से बोले कि छोटे-बड़े सबका ध्यान भुला दिया।” जल्दीसे चायकी धूटको घूँटकर वह हँस पड़ी। हाथका कप कॉप गया और चाय छुलक गई। बकील साहब इस सारे वातावरणका आनन्द ले रहे थे। बनावटी क्रोधसे बोले—‘क्या कर रही है? तमीजसे बात कर। सारे कपड़े खराब किये लेती है।’ मुझे बकील साहबपर क्रोध आ रहा था। यह तो नहीं कि ठीकसे डाटे, तभी तो इतनी वेशर्म हो गई है। लड़कियोंके इतने निर्लज्ज होनेके मैं खिलाफ हूँ। यही चीज तो उनमें अन्य चारित्रिक दुर्बलताओंको जन्म देती है.. और भी मैंने उसके विप्रयमें न जाने क्या-क्या उल्या-सीधा सोच डाला। बातोंका उत्तर तो मैंने उस समय दिया, पर मुझे उसका वेभिरुक्तपन अधिक पसन्द नहीं आया, और बकील साहब ये कि अपनी बेटीकी इस बहादुरीपर फूले पड़ते थे। माँ-बाप ऐसा लाड-प्यार करते हैं तभी तो लड़कियाँ विगड़ जाती हैं। सामने तो बड़ी इतराती रहेगी और सैकड़ों सिनेमा-उपन्यासोंके हश्य उस समय मेरे सामने आये। जब वही इतनी वेशरम है तो मैं ही क्यों हयादार बना रहूँ-सोचकर मैंने सारा सङ्कोच छोड़ दिया। उसकी ओर देखा, वह सुन्दर थी पर स्त्रियोंमें एक स्वाभाविक लज्जा, हल्का-सा संकोच रहता है, वह असुन्दरको तो सुन्दर बनाता ही है, वह जैसे सुन्दर पर भी कलई कर देता है—पर वहाँ कुछ नहीं, वही सपाट मुँह। हाथमें केवल दो सोने की चूड़ियाँ। ऊपरसे नीचे तक कुछ नहीं। उल्टे पल्लेकी धोती, सो भी कन्धे पर भूल रही थी—नये आदमीके सामने जाते हैं तो थोड़ा सिर पर रख लेते हैं। मैं सोचने लगा इस लड़कीको इतना निर्लज्ज बना देने में इसके हस सौन्दर्यका कितना हाथ है। जब चलने लगा तो बोली—“देखिए भाई साहब, मुझे इस बार तीन इम्तहान देने हैं। कॉलिजमें इन्टरका तो है ही, एक विशारद और दूसरा सगीतका। कहिए कैसा रहेगा?”

“बड़ा अच्छा रहेगा ।” कहा, पर सोचा, शायद यह दिखाना चाहती है कि मैं कितनी पढ़ाक़ हूँ ।

“संगीतके लिए हमने एक ट्यूटर लगा लिया है, सत्तर रुपये लेगा । विशारद हमे आप करायेगे ।” उसने एक बार बकील साहबकी ओर देखा । मैं इस अप्रत्याशित चोभसे जैसे अचकचा उठा । बकील साहब बोले—“हौं दिलवा दो भई । पास तो यह हो ही जायेगी, लेकिन तुम तैयारी करा दोगे तो जरा अच्छी तरह पास हो जायेगी । हिन्दीके तुम विद्वान् भी हो, सब जानते हो । ठीक रहेगा । सन्ध्याको चाय यही पिया करो ।”

“हौं-हौं ।” करके मैंने स्वीकृति दी । उस समय तो मुझे यह विश्वास हो गया था, इस लड़कीको अपने सौन्दर्यका गर्व है । इसीलिए यह इतनी निर्लज्ज है । उसे गर्व है तो रहा करे—गर्व करनेवालोंके लिए यहाँ भी गर्व कम नहीं है । दो-एक दिन तो पढ़ाऊँगा, ठीकसे पढ़ी तो ठीक है, जरा भी तीन-पाँच की तो उसी दिन छोड़ दूँगा, कोई बहाना बना दूँगा । ज्यादासे-ज्यादा बकील साहब बुरा ही तो मानेगे । इस क्षोभ और द्वन्द्वके भीतर कभी मुझे लगता जैसे कोई बड़े मृदुल स्वरमे पूछता—“किन्तु यह नलिनी है कैसी लड़की ?” खैर उस दिन, दिन भर मैंने उसके विषयमें जो भी सोचा वह अधिक अच्छा नहीं था ।

“और सन्ध्याके समय मैं उसके पास जाने लगा, उसे पढाने । भाभीजी, जब आज भी उन बातोंको सोचता हूँ तो शर्मसे गर्दन झुक जाती है । किसीके विषयमें इतनी जल्दी सम्मति बना लेना कितना खराब है । सच कहता हूँ, उस जैसी बुद्धिवाली लड़की मैंने जिन्दगीमें एक भी नहीं देखी । ओफ ! क्या दिमाग पाया था उसने । किसी भी बातको एक बार समझा दो, कमसे-कम इस जिन्दगीमें दूसरी बार समझानेकी जरूरत ही नहीं । कभी कापीमें मीनिंग या नोट्स नहीं लेती थीं । और इतनी सुन्दर

लिखाई कि क्या कहूँ । एक किताब पढ़ लेती तो शब्द-प्रतिशब्द वह उसे महीनो याद रहती । बहुतसे स्थानोंपर वह मुझे पढ़ाती थी या मैं उसे, यह मैं आज तक नहीं जान पाया । मैं उसे बड़े ध्यान और गम्भीरतासे पढ़ाता और वह बड़े आनन्दसे पेन्सिलसे खेलती या पेनसे नाखून रँगा करती । मैं झुँभलाकर एकदम पूछ बैठता, “वताओ मैंने क्या बताया ?” और वह मेरा प्रत्येक शब्द दोहरा देती । मैं आश्र्य करता यह लड़की है या आफत । पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, और भी न जाने कितने कवियोंकी सैकड़ों कविताएँ उसे याद । उसके निबन्ध देखकर उसके मनन-पर सिर खुजाना पड़ता था । उसकी कहानियाँ देखकर आँखे फटी रह जाती थीं । मैंने उसे तीन वर्ष पढ़ाया । इस बीचमे उसकी प्रत्येक अच्छी-बुरी बात देखनेका मौका मुझे मिला । अब इसे आप चाहे जो कुछ भी कहिए—मेरी दुर्बलता या बुद्धिमानी—मैं उसकी एक-एक बातका भक्त बन गया ।” कहकर सुधीन्द्र भाई कुछ देरके लिए रुके कि उनकी यह प्रशंसा अति पर तो नहीं पहुँच गई है । माताजी की ओर देखकर उन्होंने खिलौना लेनेके लिए अपनी मूक जिद जारी रखते पापाको शून्य आँखोंसे देखा । फिर कहा—“भाभी जी, आप सोचेगी मैं व्यर्थ ही उसकी इतनी प्रशंसा करके उसे आसमान पर क्यों रखे दे रहा हूँ । लेकिन मुझे वास्तवमे ऐसा लगता है उसकी पूरी बात कह ही नहीं पा रहा हूँ । खैर तब मैंने जाना कि क्यों यह लड़की निडर, निर्भीक और बेकिंभक है, क्योंकि उसके हृदयमे भय, कल्प, या उलझन नहीं है । वह उन लड़कियोंमे से नहीं है जो मनमे हजार उल्टी-सीधी बाते रखते हुए भी ऊपरसे अपनेको त्रिल्कुल निर्लिपि दिखाया करती है । और उसके स्वभावकी वह सबलता, वाणीकी तीव्रता, मुक्त हास्यकी चचलता उसके रूप-गर्वके प्रतीक नहीं है, बरन् वह उसकी प्रखर प्रतिभाका प्रचण्ड विस्फोट है, जो उसके व्यक्तित्वके इन सब रूपोंमे दिखाई देता है ।”

“तो ऐसी वह लड़की थी।” सुधीन्द्र भाई ने फिर बोलना प्रारम्भ किया, “मैं उसे पढ़ाता था किन्तु इस बातका निश्चय मुझे हो गया कि वह केवल संयोग है, जो मैं उससे पहिलेसे पढ़ते होनेके कारण उससे आगे हूँ और उसे पढ़ा रहा हूँ, नहीं तो इसे स्वीकार करनेमें मुझे कोई भिन्नक नहीं कि वह मुझसे कई गुनी अधिक बुद्धिमान्, प्रतिभा-शालिनी थी। सबसे बड़ी बात जो मैंने उसमें नई देखी वह यह कि किसी की अप्रत्याशित बातसे एकदम प्रभावित नहीं होती थी, इसीलिए प्रायः वह भावुक नहीं थी। जब मैं उसकी उन बेभिन्नक खुली आँखोमें देखता तो लगता न मालूम कितने गहरे खुले आकाशको मैं देख रहा हूँ, जिसका कही भी ओर-छोर नहीं है। मुझे निश्चय हो गया कि यह लड़की किसी दिन सारे देशको अपनी विलक्षण प्रतिभासे चकित कर देगी।”

“खैर, मैं उसे पढ़ाता रहा। एक दिन उन चाचीने बताया कि अपने जिन सम्बन्धीके यहाँ वह पहिले ‘मैट्रिक’ तक पढ़ने को रही थी, उनका पत्र आया है। उन्होंने लिखा है कि नलिनीके लिए लड़का उन्होंने ठीक कर लिया है, लेकिन नलिनीने स्पष्ट कह दिया कि उसका विचार अभी शादी करनेका कर्तव्य नहीं है। अभी वह थर्ड ईयरमें ही पढ़ती है, कम-से-कम एम० ए० तक वह इस विषयपर सोचेगी भी नहीं। फिर दूसरा पत्र आया—वह लड़का इसी मुहल्लेका है, हमारी ही जातिका है, पिछले आठ-दस सालसे मैं उसे देख रही हूँ—बड़ा सुशील और सीधा लड़का है। उसीने नलिनीको मैट्रिकके लिए इङ्ग्लिश पढ़ाई थी—नलिनी भी उसे जानती है। घर काफी सम्पन्न है—वह सुखी रहेगी, पास रहेगी। लेकिन नलिनी भी एक नम्बर की जिद्दी लड़की—एक नहीं मानी। फिर तीसरा पत्र आया—उस लड़केने नलिनीमें पता नहीं क्या देखा है कि व्यपने बापसे स्पष्ट कह दिया है कि शादी करूँगा तो इसी लड़कीसे, नहीं तो विलकुल नहीं। इसी विषयमें वे मुझसे सलाह लेने आईं थीं कि अब क्या

करे ? नलिनी पास बैठी सब सुन रही थी । मैं कुछ राय जाहिर कर्त्ता इससे पहिले वह स्वयं बोली—“पता नहीं क्यों लड़कों को शादी करनेकी ऐसी जल्दी पड़ती है । लाइए मैं उन्हें लिख दूँ सीधा, कि मैं आपसे शादी नहीं करना चाहती ।” मैंने उसकी ओर देखा, शायद वह मजाकमे कह रही हो, पर उस समय वह काफी गम्भीर थी । मैं उस ओर देख नहीं सका । बकीलनीने कहा, “समझाओ इसे ।” यद्यपि मन-ही-मन मैंने स्वीकार किया कि बात ठीक है, जब वह पढ़ना चाहती है तो उसे पढ़ने देना चाहिए । तो भी मैंने यो ही कहा—‘जब वह इतना हठ पकड़ रहा है तो मान जाओ न, कर-करा लो उसीसे शादी ।’

“उसने मुझे ठीक इस तरहसे देखा, जैसे किसी बच्चेको देखती हो और वह भिड़ककर बोली—‘आप भी क्या बात करते हैं भाई साहब, बच्चों-जैसी । अब अचानक मैं ही आपसे कहने लगूँ कि मुझसे शादी कर लीजिए, तो कैसे हो सकता है । न मैंने उन्हें कभी इस दृष्टिसे देखा, न मेरे मनमे कभी ऐसी बात आई ।’ उसके मुखपर उत्तेजना थी । उसका मुख-मण्डल प्रदीप था ।

“मुझे हँसी आई,—कैसी मूर्खताकी उपमा इसने दी है । कहा—‘न सोचा न सही, तब भी इसमे हर्ज क्या है ?’

‘हर्ज क्या है ?’ उसने बच्चोंकी तरह सुह ब्रिंश दिया—“हर्ज है कैसे नहीं, ऐसा हो नहीं सकता । मैंने उन्हें सदैव गुरुकी भाँति पूजा और भाई की पवित्र दृष्टिसे देखा है । जिस तरह आप हम लोगोंमे काफी घुल-मिल गये हैं न, ठीक वैसे ही उनकी बात है वहाँ । मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि एक दिन वे इस प्रकार हठ करके बैठ जायेगे कि मैं शादी करूँगा तो इस नलिनीसे ही करूँगा ।” वह थोड़ी देर चुप रही, फिर जैसे स्वयं ही सोचती-सोचती बोली—“हिश्, मैं नहीं करूँगी शादी-बादी ।”

“खैर, मैं चुप रहा। दो-तीन दिन फिर उसी स्वाभाविकतासे कटे। एक दिन गया तो पता चला कि उसके वही चाचाजी आये हुए है। उस दिन नलिनी बड़ी चिन्तित-उदास थी। उसने बताया, ‘आज रात-भर मैं ठीकसे नहीं सो पाई। चाचाजी आये हैं, बता रहे हैं कि लड़केको भी जिद् आ गई है कि शादी वस नलिनीसे होगी। उसने तीन-चार दिनसे अनशन कर रखा है। जब मैं शादी नहीं करना चाहती तो क्यों ये लोग मुझे विवश कर रहे हैं कि मैं शादी करूँ ही। अब आप ही बताइए मैं क्या करूँ? चाचाजी इसीलिए आये हैं, ये लोग किसीका आत्मविकास होते नहीं देख सकते। मैं बुद्धिमान् हूँ, मैं प्रतिभाशील हूँ, मैं सुरीला गाती हूँ, सुन्दर बजाती हूँ और सौन्दर्यशालिनी हूँ,—फिर? कहिए, आपको इन सब बातोंसे क्या मतलब? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि मैंने यह सब चीजें आप के ही लिए सहेज कर रखी हैं। इसमे मेरा अपना कुछ नहीं है? अजब आफ्रत है।’ और क्रोध अथवा धृणासे उसने अपना निचला ओठ जोरसे चबाया। मैं चुपचाप देखता रहा। उसके वाक्यमे सत्यकी ज्वालाएँ थी। लेकिन मैं, उस समय, क्या कर सकता हूँ—समझमे नहीं आता था। उसे समझाया “शादी तो नलिनी तुम्हे करनी ही है। अब नहीं तो वर्ष बाद। फिर तुम्हे अब ही ऐसी क्या आपत्ति है?”

‘तो आपको ऐसा अधिकार किसने दे दिया कि आपने तो मुझे देखा, और खटसे मचल पड़े, अनशन कर दिया कि मैं तो इसीसे विवाह करूँगा—और हम सोच भी नहीं पाये कि सारे घरवाले चील-कौवोंकी तरह नोचने-खोचने लगे—कर इसीसे, कर इसीसे।’ उसकी आँखोंमे, पहिली बार मैंने देखा आँखूँ आ गये थे, जिन्हे वह एक धूट-भरके पी गई, फिर बोली—‘भाई साहब, आप तो समझेगे, मैं और लड़कियोंकी तरह बहाने-बाजी कर रही हूँ पर मैं हृदयसे कह रही हूँ, मुझे शादी करनेकी इच्छा ही नहीं है।’ वह चुपचाप कुछ सोचती रही, फिर बोली—‘चाचाजी ने मुझे

रातको कोई दो घण्टे लेकचर पिलाया, नाश्तेके समय सुबह समझाया और अभी बाहर गये हैं। आकर फिर भाषण देगे—माताजी, बाबूजी—सभी मेरे पीछे पढ़े हैं। अब आप भी . . . मैं क्या करूँ भाई साहब, इससे अच्छा तो मैं कही मर जाती।' उसकी इस अन्तिम बातसे अचानक मैं चौंक गया। यह उसके मुँहसे निकला हुआ पहिला वाक्य था जो उसने जैसे व्यथासे तड़पकर कहा था। मैं स्वयं भी उन दिनों काफी उद्धिरन, बेचैन, व्यथित रहा था। मेरी स्थिति बड़ी विचित्र थी, यदि मैं शादीका विरोध करता तो वे लोग मेरे और नलिनीके विषयमें न जाने क्या-क्या सोचते। पर फिर भी, बार-बार जैसे कोई ललकारकर पूछता—'क्या मैं उसके लिए कुछ नहीं कर सकता?—क्या नहीं कर सकता कुछ?' और यह प्रश्न ही धमककर ध्वनि-प्रतिध्वनिके रूपमें व्याप्त हो जाता कि उसके उत्तरके विषयमें मैं सोच ही नहीं पाता था। बड़ा खिंचाव शिरायोमें था। मैंने दुखी स्वरमें कहा—'क्या बताऊँ नलिनी, मैं स्वयं भी कोई राह नहीं सोच पाता! तुम्हारी प्रतिभाका मैं शुरूसे ही कायल हूँ। मेरा विश्वास था कि यदि यो ही तुम्हारा स्वामाविक विकास होता गया, तो तुम एक दिन अपनी प्रतिभासे ससारको चकाचौध कर दोगी। पर अब. . .'"

अचानक सुधीन्द्र भाई अपनी बात कहते-कहते रुक गये, क्योंकि मैंने आगे बढ़कर उस जिदी पापाके दोनों कान पकड़ लिये थे। गुस्सा तो ऐसा आ रहा था कि दो मारूँ तान कर चौटे—तब्रियत ठिकाने आ जाय। बड़े लाडले बने हैं, जबसे मना कर रहे हैं कि मान जा, मान जा, तो समझमें ही नहीं आता। सब बच्चे बाहर खड़े हैं और ये बेचारे यहाँ खड़े हैं, अकेले, यहाँ खिलौना लेनेको। ले खिलौना, अब तुम्हें कैसा खिलौना देता हूँ। दोनों कान खिंचते ही पापा जोरसे चीखा, एक बार उसने मेरी कुद्द सूरत देखी और जीजीका पक्षा पकड़ लिया।

“अरे क्या कर रहा है रे...” माताजी चिल्लाइ—“क्यों उसके कान उखाड़े ले रहा है ?” मैं उसके कान यो ही खीचे-खीचे बाहर ले चला ।

“हौं ले जा, ले जा, जबसे समझा रहे हैं तो मानता ही नहीं है ।” जीजीने बनावटी गुस्सेसे कहा, बास्तवमें उन्हें मेरा यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा था । जिद करता हुआ पापा बुरा माताजीको भी लग रहा था, पर जीजीकी ओर देखकर वे एक दम उठीं, पापाकी बाँह पकड़कर मुझे एक ओर धक्का दे दिया । “मानता ही नहीं है ।” पापाको उन्होंने गोदमें उठा लिया—“मैया जिद नहीं करते ।”

मुष्टी बनाकर आँखोंको मलते हुए उसने सिसक-सिसककर मूर्तिकी ओर एक हाथ बढ़ाकर कहा —“अम्मा, बो लेगे ।”

“अच्छा ले ।” माताजी उसे उठाये-उठाये मेटल्पीसके पास गई और वहाँसे गेरुए रंगकी चमकटार चीनीकी बनी वह मूर्ति उसे दे दी । उसने दोनों हाथसे कसकर पकड़ लिया ।

मैं भुनभुनाया, “उसका क्या है, वह तो जरा-सी देरमें तोड़ देगा । ग्यारह रुपयेकी एक मूर्ति लाया हूँ—सो भी अब मिलती नहीं है—ऐसी सुन्दर और गठी हुई ।”

“हौं-हौं नहीं तोड़ेगा ।” माताजीने कहा—“हम दे देगे पैसे, दूसरी ले आना ।” फिर उन्होंने पापाको जीजीके पास बैठा दिया फर्शपर ही । जीजीने उसे समझाया—“हौं मैया, तोड़ियो नहीं ।”

“अब मिली जाती है दूसरी !” मैं मन ही मन दोत पीसकर रह गया । ऊपर हुआ यह सोचकर सुधीन्द्र भाई न जाने क्या सोचेंगे, उनकी बात सुनते-सुनते ऐसा बखेड़ा मचा दिया । उसकी ओर एकाध बार देखकर

उनकी बातके प्रति उत्सुकता दिखाई—“हों फिर क्या हुआ ?” पापा मूर्तिको फर्शपर रखकर खेल रहा था—कभी इधरसे झाँककर देखता, कभी उधरसे ।

सुधीन्द्र भाई बड़ी विचित्र-सी दृष्टिसे यह सब देख रहे थे । हो सकता है उन्हें बुरा न लग रहा हो, पर उन्हें विशेष अच्छा भी न लग रहा था—मैंने तत्काल अनुभव किया । इसीलिए ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नहीं—हमने अधिकसे अधिक अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित कर दिया ।

“हों तो दूसरे दिन जब मैं गया तो चाचीजी बड़ी दुखी-सी आई—‘तुम्हीं बताओ सुधीन्द्र, मैं क्या करूँ ?’ उसे लाख समझाया । मैंने समझाया, तुम्हारे बकील साहबने, लालाजी ने, लेकिन वह तो एक ही रट लगाये हैं—मैं तो पढ़ूँगी—मैं तो पढ़ूँगी । लड़का कहता है तुम जिन्दगी-भर पढ़ोगी तो मैं जिन्दगी-भर पढ़ाऊँगा, अपना घर-बार सब बेचकर पढ़ाऊँगा । जो तेरी इच्छा हो सो कर, पर वह मानती ही नहीं है ।’ ‘कहों हैं ?’ मैंने पूछा । बताया, ‘भीतर पड़ी है पलगपर, न खाती है, न नहाती है । बस रोये जा रही है, अब हमारी तबियत तो इससे बड़ी हल्कान होती है । इतनी बड़ी हो गई, आज तक नहीं रोई और अब तुम्हीं समझाओ ।’ मैंने पूछा, ‘चाचाजी गये ?’ उन्होंने जिस दंगसे हों कहा मैं कुछ-कुछ समझ गया । कुछ नहीं कहा । चुप भीतर गया । कमरेमें पलगपर वह चुपचाप औंधी पड़ी थी—रह-रहकर उसका सारा शरीर कॉप उठता था । मैं कुछ देर चुप रहा, फिर पुकारा—‘नलिनी, नलिनी ।’ उसने कुछ नहीं कहा । मैं उसके पास ही पलगपर बैठ गया । दोनों कन्धे पकड़कर उसे सीधा किया—देखा, वह रो रही थी । उसके खिले गुलाबसे चेहरेको जैसे पाला मार गया था, सारा मुँह उसका लाल हो गया था, और औंखे वीरवहूटीके सुर्ख रगकी तरह जल रही थी । उस समय एक क्षणको भाभीजी, सच मुझे

ऐसा लगा कि इस दहकते चेहरेके लिए मैं क्या न कर दूँ । किस आस-मानके नीले और मनहूस पदोंको चीर दूँ जो उसपर अपनी काली छाया डाले हैं और कौन-सा पहाड़ है जिसे उठाकर फेक दूँ, जो इसका रास्ता रोके हुए है । उस समय मुझे अपनी बाहोमे वज्र-जैसी शक्ति लहरे लेती अनुभव हुई । मैंने उसका सिर लेकर अपनी गोदमे रख लिया—बाल उसके चेहरेपर फैल आये थे उन्हे एक हाथसे इधर-उधर कर दिया । बड़े दुखीसे स्वरमे कहा—‘नलिनी ऐसे क्यों रो रही हो ?’ उसका रोना बन्द हो गया था, केवल कभी-कभी एक हिचकीसे उसका सारा शरीर सूखे पत्तेकी लड़खड़ाहट्की भौंति कॉप उठता था । मेरी समझमे नहीं आता था मैं क्या कहकर उसे सान्त्वना दूँ । फिर कहा—‘नलिनी, रोओ मत ।’ लेकिन नलिनीकी इतनी देरसे सचित रुलाई फिर फूट पड़ी और वह फिर बुरी तरह रो उठी । मेरा कण्ठ स्वयं भीग गया था और ऑँखोमे ऑँसू बड़ी मुश्किलसे रुक पा रहे थे । फिर भी मैंने उसे समझाया—‘नलिनी जो हो गया सो हो गया । वह तुम्हें विश्वास दिलाता है कि पढ़ने इत्यादि की पूरी सुविधा देगा । क्यों व्यर्थ रो-रोकर अपना स्वास्थ्य खराब करती हो ।’ लेकिन जैसे वह कुछ सुन ही नहीं रही थी । उसे तो इस समय जैसे रुलाईका टौरा आ गया था—बस रोये जा रही थी । उस दिन मैं भी रोया । लेकिन उस दिनके बादसे उसके शरीरकी स्फूर्ति, उसके चेहरेकी उत्फुल्लता, उसकी भोली ऑँखोंका उज्ज्ञास जैसे किसीने मन्त्रके जोरसे खीचकर फेक दिये और वह एक साधारण ककाल मात्र थी—निस्तेज और उदास । किसी ओर देखती तो बस देखती रहती ।

“और पिछले साल उसका विवाह हो गया । जिन्दगीमें शायद दूसरी बार वह जी खोलकर रोई । उस दिन उसने मुझसे कहा—‘बस भाई साहब, अब नहीं रोऊँगी, क्योंकि जो चीज मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था और जिससे मुझे इतना मोह था—अब सदाके लिए उसकी चाह

छोड़ दी है। बस, अब मैं एक साधारण लड़की हूँ—दुर्वल और कमज़ोर।”

वह ससुराल चली गई। थोड़े दिन बाद आई। जब मैंने फाइनलकी परीक्षा दी तभी उसने बी० ए० की परीक्षा दी—जैसे बिल्कुल निरुत्साहित और निर्लिपि होकर। आपको आश्चर्य होगा, तो भी बी० ए० मे उसने टॉप किया। विभिन्न पत्रोंमे जब उसके चित्र छपे, और उसने देखे तो मुझे लगा उसका वह उन्मुक्त उल्लास फिर उसे कुछ समयको मिल गया है। बहुत प्रसन्न होकर उसने कहा—‘भाई-साहब, चाहे कोई कितना ही विरोध क्यों न करे, मैं तो खूब पढ़ूँगी।’ पर तभी फिर अचानक कुछ दृष्टिको उटास हो गई। उन दिनों उसने सगीतका अभ्यास खूब बढ़ा लिया था। रोज मुझे कुछ-न-कुछ सुनाती—उन दिनों वह बड़ी प्रसन्न रही। ओफ, कितना सुन्दर वह गाती थी। आज तक मैं निश्चय नहीं कर पाया कि उसकी प्रतिभा सगीतमे अधिक अभिव्यक्त होती थी या लेखनमे। उन दिनों उसने कुछ सुन्दर निवन्ध और कहानियों लिखी। छुट्टियों भर इस बातपर वहस होती रही कि वह एम० ए० कहों ‘जॉइन’ करे। ससुराल वालोंके पत्र आते कि बनारस ही सबसे अधिक ठीक रहेगा और वह कहती कि मैं तो यही पढ़ूँगी। एक दिन वहम हाशय स्वय आ धमके लेनेके लिए। वे आकर हठ पकड़ गये कि लेकर जाऊँगा तो अभी, नहीं तो आप अपनी लड़कीको रखिए, फिर मेरे यहाँ भेजनेकी जरूरत नहीं है। हम लोगोंने लाख समझाया कि वह बी० ए० में ऐसी अच्छी तरह पास हुई है, और उसकी ऐसी उत्कट लालसा है कि आगे पढ़े तो क्यों न पढ़ने दिया जाय। वे बोले, पढ़नेका इन्तजाम क्या वहाँ नहीं है। बनारस यूनिवर्सिटीमे वह बड़े आरामसे पढ़ सकती है। खैर, वे महाशय उसे लेकर ही टले, बस, वही मेरी और उसकी अन्तिम भेट थी। एम० ए० वह जॉइन नहीं कर सकी। लिखा, ‘यहाँसे आकर इनकी तबियत खराब हो गई है। मैं रात-रात

भर जागकर भगवान्से मनाती हूँ कि ये ठीक हो जाये तो कॉलेज 'जॉइन' करूँ—एडमीशनकी तारीखे निकली जा रही है।' लेकिन वह सज्जन तो शायद प्रण करके ही बीमार हुए थे कि दो महीनेसे पहले ठीक ही नहीं होगे। सो वह एडमीशन ले ही नहीं पाई। उसने लिखा, 'भाई साहब, कभी-कभी तो इच्छा होती है पड़ा रहने दूँ बीमार और जाने लौँ पढ़ने। पर सोचती हूँ ये लोग मुझे खा जायेगी।' इसके बाद और भी, समय-समय पर पत्र आते रहे, उन सबमें जो कुछ लिखा था, उसका तात्पर्य था, 'भाई साहब, मैं क्या करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता। यहाँ कोई काम मुझे करनेको नहीं है, दिन-रात यह बात जोककी तरह मेरा खून सुखाये देती है कि जिस प्रतिभाकी आप यो तारीफ करते नहीं अघाते थे, जिस बुद्धिपर मुझे गर्व था, जिस सौन्दर्यसे मेरी सहेलियों ईर्ष्या करती थीं, मेरे जिस सगीतपर बाबूजी भूम आते थे, जिस शैलीपर लोग दृतो तले उँगली दबाते थे, क्या वह सिर्फ इसलिए है कि निर्गंल और व्यर्थकी प्रेमकी बातोंमें भुला दी जाय? वे समझते हैं कि अधिक-से-अधिक प्रेम-ग्रदर्शनसे वे मुझे प्रसन्न कर रहे हैं, दिन-रात, तुम परी हो, तुम अप्सरा हो, तुम यह हो, तुम वह हो और मैं तुमपर भौरे, परवाने और पर्फिलेकी तरह मरता हूँ। सच कहती हूँ भाई साहब, इन बातोंमें मेरा मन नहीं लगता। हाँ मैं सुन्दर हूँ—तुम मरते हो, फिर? लेकिन वे हैं कि दफ्तर जायेगे—जो घरसे एक मील है—तो चार खरें भरकर प्रेमपत्र लिख भेजेगे, जैसे न जाने कितने वर्षोंके वियोगमें जल रहे हैं। उसमें सैकड़ों सिनेमाके गीत लिखे होते हैं, तकदीर कोसी गई होती है, दुनियाको लानत दी जाती है कि भाग्यका खेल है, दुनियाने हमे यो अलग कर दिया है, वह हमारा मिलन यो नहीं सह सकती। पता नहीं वह दुनिया कहाँ रहती है? अब आप ही बताइये इन मूर्खतापूर्ण बातोंसे क्या फायदा? कोई कहाँ तक अपनेको इन बेवकूफियोंमें उलझाये रखे।' और भाभी, नलिनीका अन्तिम पत्र तो बड़ा ही करुणापूर्ण है।

लिखा है, 'मेरे चारो ओर भीषण अन्धकारकी एक अभेद्य चादर आकर खड़ी हो गई है, भाई साहब, मैं तब कितनी रोई-चीखी थी कि मुझे इस अन्धकारके गर्तमे मत धकेलो, मैं वहाँ मर जाऊँगी। इस अन्धकारके खूनी पञ्जोने मेरी अभिलाषाओं और उच्चाकाञ्चाओंकी गर्दन मरोड़ दी है, और अब मैं इतनी अशक्त हो गई हूँ कि छटपटा भी नहीं सकती। खाने-पीने और प्रेमकी इन भूठी-सच्ची बातोंके बाद बचे हुए समयमे कभी शाँपिंग करने, घूमने या सिनेमा जाने या दिन-भर औरतोंकी इस-उसकी बुराई-भलाई करनेवाली बातोंमे अपनी जिन्दगीको बाँध देनेमे मैं अपने आपको विल्कुल असमर्थ पा रही हूँ। इन टिनों यह मानसिक भर्त्सना मुझे खाये जा रही है। भाई साहब, मैं क्या करूँ ? मैं मानती हूँ, हजारों लड़कियोंको यही चरम और परम सुख है—पतिका अन्धाधुन्ध प्यार, सोने और चॉटीसे भरा-घरबार, और निश्चित दिन। लेकिन इतने दिन मैंने जो कुछ भी पढ़ा, जो कुछ भी सीखा, जो आज भी मैं समझती हूँ, लाखों लड़कियोंसे अच्छा था, क्या केवल इसीलिए था कि यहाँ आकर सड़ जाय ? यहाँ करने बैठूँ भी तो ज्यादा-से-ज्यादा खाना बना लैं, चौका-नृत्न कर लैं। हो सकता है इन बातोंमे मेरा सारा समय लग जाया करे—लेकिन बस ? इसीलिए मैंने उस देवदुर्लभ प्रतिभाको सँजोया था ? भाई साहब, ये शादी करनेवाले लड़कियोंके यहाँ जाकर पूछते हैं—तुम्हारी लड़की गाना-बजाना जानती है, कसीदाकारी जानती है, मिठाई बनाना जानती है ?—उस समय उनकी इच्छा होती है, कि ससारका कोई काम क्यों बच जाय जिसे यह लड़की न जानती हो ? लेकिन कोई इनसे पूछे, विवाहके फेरोंके बाद सिवा चौके-चूल्हेके कौन-सी कलाकारी लड़कीके काम आती है। कोई मुझसे पूछे, मेरी सारी किताबोंको कीड़े खाये जा रहे हैं। पढ़नेके प्रति किसीमे रुचि नहीं है। यो शौक सभीको है कि लड़कीके सामने एजूकेटेड शब्द लगा सके। वैसे सभीको पाउडर, लिपस्टिक और बुनाइयोंकी बातें

करनी उससे अधिक आवश्यक लगती हैं। बुनाई इसलिए नहीं कि कला है, बल्कि इसलिए कि फैशन है, इसलिए कोई नई बुनाई देखी सब उसकी नकल करेगी। नया ब्लाउज़, साड़ी देखी, वैसी ही लायेगी—बनवायेगी। नये कटका गहना देखा, खटसे पहला टूट रहा है नया बन रहा है। रोज चीजें टूटती हैं, रोज बनती है। किसी-किसीको तो शायद एक बार भी नहीं पहना जाता, और टूटकर नया बन जाता है, क्योंकि वह पहलेसे अधिक सुन्दर है। और यह क्रम कभी खत्म नहीं होता। मेरे बायलिन और सितारमें मनो धूल भर गई है। महादेवी और मीराके गीत मैं यहाँ गाकर सुनाऊँ तो सब उल्लाओंकी तरह मेरा मुँह देखे। बात-बातमें इनकी इज्जतका ध्यान, बात-बातमें स्त्री होनेकी घोपणा। यह ऊँचे घरोंकी बाते हैं। नीच घरोंको भी देखती हूँ, जहाँ चूल्हे-चौकेसे ही कुर्सत नहीं मिलती। सच भाई साहब, आज हृदयमें बड़ी प्रचड शक्तिसे यह भाव उठ रहा है कि काश, मैं एक साधारण लड़की होती। मूर्ख और भेड़, जिसके बचपनकी सारी तैयारियाँ, शिक्षा-दीक्षा केवल विवाहके लिए होती हैं, और विवाह होनेके बाद जैसे इन सारे भफ्फटोंसे छुटकारा मिलता है। इस सबके लिए शायद सबसे अधिक दोषी आप हैं। आपने ही मेरी महत्वाकान्नाओंको उभाड़कर इतना बढ़ा दिया था कि तू यो करेगी, यो करेगी! आपने ही मेरे दिमाग्गमें भर दिया था कि मैं असाधारण प्रतिभा-शालिनी हूँ, और आपने ही अपने कन्धोपर चढ़ाकर इतना ऊँचा उठा दिया था कि आज जब ये लोग मुझे फिर उस कीचड़में घसीट रहे हैं, तो टूट जाना चाहती हूँ, बिल्कुर जाना चाहती हूँ, मर जाना चाहती हूँ, पर नीचे नहीं आ पाती। अब बताइये मैं क्या करूँ? कैसे मर जाऊँ? मैं कब तक यो छुटपटाती रहूँ? भाई साहब, मुझे कोई रास्ता बताइये, बताइये न! केवल विवाह करके यो इन चारदीवारियोंमें सड़ जानेके लिए शायद मैं नहीं जन्मी थी, मुझे और कुछ करना था—मुझे कुछ और करना था!

“खैर भाभीजी, यह उसका अन्तिम पत्र था, फिर तो उसका तार ही आया।”

यह सब बोलनेमें सुधीन्द्र भाईका स्वर न जाने कितनी बार गीला हुआ, कितनी बार भर्या, पर इस बार तो जैसे वह बोल ही नहीं पाये। गलेमे कफ-सा अटक गया, उसे खाँसकर साफ किया फिर थोड़ी ढेर चुप रहे। पापा बुद्ध भगवान्की मूर्तिको धीरे-धीरे पृथ्वीपर ठोक-ठोककर खेल रहा था, एक बार हमने उस ओर देखा, पर जैसे भाव-शून्य होकर। सब उत्सुकतासे सुधीन्द्र भाईकी ओर ही देख रहे थे।

“मैं जब वहाँ गया तो पता चला कि वह अस्पतालमें है,” सयत होकर सुधीन्द्र भाईने कहना आरम्भ किया।

“अस्पताल?” प्रायः सभी चौके।

“हाँ।” उन्होंने कहा, “उसके सारे घरवाले स्तव्य-से थे। अस्पताल गया—देखा उसका सारा शरीर फफोलोसे भरा था या जलकर काला हो गया था। वह मर चुकी थी, उसने मिट्टीका तेल छिड़ककर आग लगा ली थी।”

“है।” जैसे किसीने बड़े भारी कॉसेके घण्टेमें समस्त शक्तिसे हथौडा दे मारा—सारा वातावरण झनझनाकर थर्रा उठा।

उसी समय पापाने बुद्ध भगवान्की मूर्तिको जोरसे पृथ्वीपर पटक डिया। खन-खन करते हुए सुन्दर खिलौनेके चमकदार टुकडे इधर-उधर विलर गये। ..

हम सब मन्त्र-जड़ित थे।

घण्टेकी झनझनाहट मूँज बनकर झूँवती जा रही थी।

## परदेशी

परदेशीका जन्म १९२३ में हुआ। घरपर सब कुछ था, परन्तु जिजीविपा घरसे बहुत दूर ले गई—बम्बई। “बम्बईमें वह सब देखा, जो न देखना था। वह सब किया, जो न करना था। शहराती जीवनकी विभीषिका और वैपर्यका मनपर गहरा प्रभाव पड़ा।” कथा-साहित्य और राजनीतिकी ओर प्रवृत्त हुए। कल्की, प्रेस-मैनेजरी, मास्टरी, सम्पादन, प्रचार-कार्य—उदर-पूर्तिके लिए अनेक धन्ये अपनाये, किन्तु मन किसीमें रमा नहीं। आरम्भमें कविताएँ लिखी, अनन्तर कहानियाँ, उपन्यास और राजनीति पर पुस्तके।

परदेशीकी कहानियोंमें चिमनियोंकी मायानगरी बम्बईके निम्न मध्यवर्गीय जीवनकी हृदयहीनता, कटुता, कूरता और धिनौनेपनका यथार्थ चित्रण हुआ है। ऐसा सजीव चित्रण कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। परदेशीकी ये प्रकृतवादी कहानियाँ (‘१२६ वी लड़की’, ‘द्रौपदी’) जो वहुधा पाठकके मुँहमें राखका सा स्वाद छोड़ जाती है, शायद कुछ लोगोंको ‘गन्दी’ लगे। ऐसी स्थितिमें यह कहना आवश्यक होगा कि परदेशीकी कहानियोंकी ये ‘गन्दगी’ उस अन्धसधर्षमय शहराती जीवनकी गन्दगी है जिससे उनके कथानक उठाये गये हैं। जो हो, इतना तो मानना ही होगा कि परदेशी हमें झकझोरकर उस दुनियाके प्रति सजग कर देते हैं जिसकी ओरसे हम शायद सदा आँखे मूँदे रखना पसन्द करते। परदेशीकी अपनी शैली है और उसमें वेग, प्रवाह तथा शक्ति है।

परदेशीका एक कथा-सग्रह ‘चम्पाके फूल’, दो उपन्यास ‘चट्टाने’, ‘औरत, रात और रोटी’; और तीन कविता-सग्रह ‘चित्तौड़’, ‘जयहिन्द’, ‘परदेशीके गीत’ प्रकाशित हो चुके हैं। सद्यःप्रकाशित पुस्तके हैं—‘भगवान् बुद्धकी आत्मकथा: १’ और ‘एशियाकी राजनीति’। ‘योरपकी राजनीति’ यन्त्रस्थ है।

## • अवरोध

—परदेशी

मॉने जाने क्या सोचकर उसका नाम समरथ रख दिया था । देहीमें एकदम दुबला, और कायासे कमजोर ! स्वभावमें सीधा और भोला । चरित्रमें साधारण ।

सारा गॉव कहता—इस विधवा भटियारीको तो देखो, जैसे इसीके लड़का हो और सब औरते निपूती हो ! रहनेको सरपर छापर नहीं, पेटका ठिकाना नहीं, फिर भी वेटेका नाम ‘समरथ’ ! रखनेको यही नाम मिला इसे ? और भी तो बहुतेरे नाम थे ? इकलौता है, तो ‘अमरत’ नाम रख देती, समरसे अमर हो जाता । पर समरथ ? गॉवके लोगोंकी धिसी-पुरानी बुद्धिमें यह नये आकार-प्रकारका नाम कैसे समाता ? सो, उन्होंने समस्या का हल निकाल लिया, और समरथ—‘समा’ रूपमें असमर्थ बन गया ।

जब बाप मरा तो सबा नौ महीनेका था । दो-तीन साल तो वह बीमार-बीमूर रहा, फिर चगा हो गया और दस तक कभी सिर न दुखा उसका । बुद्धिया मॉने किसीका पिसना पीसा, किसीके वर्तन मॉजे, किसीका चौक और किसीका पानी पूरा । और यो पतिकी निशानीको समरथ बनाया । चौधरियोंके घरसे कमीज और धोती मॉग लाती । छोटा-सा समरथ लम्बे आस्तीनवाला, बुटनोंसे नीचा कमीज पहने स्कूल जाता और हरेक साल, किसी-न-किसी प्रकार अगली कक्षामें बैठ जाता । अध्यापक जानते थे कि यदि समरथ फेल हो गया, तो बुद्धिया आकर तब तक रोती रहेगी, जब तक उसका लल्ला पास न हो जाय ! इस तरह समरथ उत्तीर्ण होकर बढ़ता गया और एक दिन जब समाचार-पत्रमें उसकी तसवीर आ

गई तो जैसे बृद्धाकी मनोकामनाएँ मूर्त हो गईं। बात यह थी कि अपनी गुरीबीके प्रति चेतना जागृत होनेसे सातवे और आठवे दर्जेमें समरथने तन-तोड़ मिहनत की और पूरे सूबेमें प्रथम आकर समरथ कुमार बन गया। इसी साल उसने दो नई मजिले और तय कीं। एक तो यह कि वह हाकिमोकी तरह धुमा-फिराकर हस्ताक्षर करना सीख गया और दूसरे जब परीक्षा देने शहर गया, तो स्कूलकी दीवारके नीचे बैठे फोटोग्राफरसे अपना चित्र खिंचवाया, जिसमें वह हवाई जहाजकी खिड़कीमें दिखाई दे रहा था। इस 'छवि' की चार कापियों उसने सबा रूपयेमें खरीदीं। उन पर हस्ताक्षर किये और एक कापी अम्माको दी। देखते ही उसका कलेजा धक् रह गया—“अरे लल्ला, कहाँ जहाज चीलकी तरह नीचे गिर जाता, तो मैं क्या करती ? रो-रोकर अपने प्रान ही, दे देती !”—दूसरी कापी उसने खुद रखी। तीसरी अपने साथी को दी, और चौथी—चौथी प्रानको डाकसे भेज दी।

कॉपते-हाथो उसने प्रानको पत्र लिखा, कई बार उसे चूमा, उसके बाये सिरेपर गुलाबके फूल और पत्ते बनाये और पेस्टल बॉक्सके रंग भरे। फिर, दोस्तोंकी नजर चाकर उसपर पता लिखा और डाकमें छोड़ आया। लेटरबॉक्समें खतके गिरनेपर जब 'खट' की ध्वनि हुई तो उसे खटका हुआ, कहीं प्रान अपने भैयासे कह देगी, तो ? या माँसे ही कह दे ? डाक-घरसे लौटनेपर बड़ी रात तक उसकी छाती धड़कती रही। उसने खाना नहीं खाया—न खाना ही चाहिए था उसे, इसीमें नैतिकता थी उसकी, क्योंकि उसे प्रेम हो गया था और अब वह ब्राकायदा प्रेमी और समझदार विरही था !

उसने अपने बिछौनेपर पड़े-पड़े सोचा कि प्रान अपनी छातीसे उस फ्लोटोको चिपकाये सिसकियों भर रही है और केसरिया ओढ़नीके छोरसे गुलाबी ऑखे पोछ रही है। समरथके हृदयमें भावनाका आवेग उभर

आया और आँखे परिपूर्ण हो आई—यह आठवींके एक सफल छात्रके रूपमें उसकी प्रथम प्रेम-पीर थी—भय, विनय, संशय-भरी। मधुर और भोली !

फिर तीन साल तक समरथ ‘इंग्लिश ट्रान्स्लेशन एड कम्पोजिशन’ में दिये हुए नमूनेके अनुसार अर्जियों लिखता रहा। यहाँ तक कि उसे सारा मजमून कठस्थ हो गया और गाँवके अन्य छात्र उसके पास आकर अर्जियों लिखवाने लगे। दिन भर वेर-अबेर घरपर तोता लगा रहता, बड़े-बूढ़े चिढ़ियों पढ़वाने आते। विधवाएँ ‘मनीआर्डरसे लौ लगाये हुए’, पतोहूको आशीष लिखाने आतीं। बहुएँ परदेस गये पतियोसे’ अबकी सावनमें आनेकी शपथ लिखवातीं और पति, जो अहमदाबादकी मिलेमें लोहेके सॉचोमें अपने सपने ढाल रहे थे, वोनस ‘मिलनेकी आसमें जी रहे थे !—इससे एक लाभ हुआ कि भटियारी माँ के मनसे नौकरी न मिलने का गम समरथकी योग्यताके भ्रमसे कम हो गया और उसे धंर आये लोगोंके स्वागत और आवभगतमें गौरव ‘अनुभव होने लगा। लेकिन, इन सबसे काम कैसे चलता, और पेट तो रोटीसे ही भर सकता है—कागजसे नहीं, किताबोसे नहीं, मान और सम्मानसे नहीं, प्रानके माँखनिया चेहरे से नहीं, उसकी चपल-कजरारी आँखोसे नहीं !

नतीजा यह हुआ कि जेवमें, कई रातों जागकर लिखी, एक लम्बी अर्जी लिये, गठरीमें खाना चौधे और प्रानके पितासे इकन्नी-रूपया-सूदपर माँके लाये पच्चीस रूपये लेकर समरथ बम्बई चला। माँने मायेपर दहीका टीका लगाया। वहन थी नहीं, सो-पड़ोसकी एक बालिका, शुभ-शकुन रूपमें सामने आई। इसके पश्चात् मित्र और जोड़ीदार बीस मील दूर पहुँचाने आये, जहाँ विधवाके किस्मत-सा सूना एक छोटा-सा स्टेशन था। दो-एक मित्र साथ ही बसमें बैठ गये। जो मित्र प्रेममें प्रवल और अर्थमें

अबल थे, वे अधेरे-मुँह पैदल प्रस्थान कर गये कि समयपर स्टेशन पहुँचकर प्रतीक्षा करे। आखिर, उनका एक दोस्त और गाँवका पहला जवान—जिसका फोटो अखबारमें छप चुका है, कमाईके लिए दूर परदेस—बम्बई जा रहा है! यह तो एक ऐतिहासिक घटना थी। बेचारे गंवर्डी लोगोंको तो इस अण्डाकार नामका सही उच्चारण भी नहीं आता! न उन्होंने रेडियो सुना था, जिसपर मेम हर शाम गला 'गुदगुदाती' है—'दिस इज बॉम्बे कालिंग...' समरथकी इस यात्रासे गाँवके प्यालेमें तूफान आ गया। उत्साह की लहर व्याप्त हो गई। और यह सारा उत्साह-सार मॉके अन्तरमें समागया और वहाँ बेतारसे उसका तत्वाश समरथके मर्मपर छा गया। बम्बई का सपना सजग खड़ा हो गया—पैतालीस लाखकी आवादीबाला विराटनगर! पन्द्रह लाख सड़कपर सोने वाले! मानो फुटपाथके इन वासियोंसे भी बम्बईकी शान और शोभा—उसका दबदवा बढ़ता है।

चौधरीने कहा—“भटियारी मॉ, सहर क्या है, समुन्दर है! पूरा सूत्रा ही समझ। इन्द्रपुरी है। मिट्टी भी मोल बिके है, एक आनेमें पाव भर!”

भटियारी मॉ—समरथकी असमर्थ मॉ—कुछ न समझ सकी। वह क्या जाने कि जमाना बदलनेसे पहले, लोगोंकी नीयत बदलकर मिट्टीमें मिल गई है।

फिर वे लंग आये, जो हरिद्वार या रामेश्वरकी यात्रामें जेव कठवाकर घर लौटे थे, उन्होंने जेवकतरोंसे लड़केको सावधान किया। और पेन्शनर करीम खाँने खुदासे उसके भविष्यकी दुआएँ माँगनेके साथ ही उसे उन 'फेसनवालियोंसे खबरदार रहने' को कहा, 'जो बेसरम होकर दीदे फड़कावे हैं।' वास्तवमें, करीम खाँ बरसोंसे रँड़ुआ था और उसकी अतृप्ति वासना आये दिन पॉच भले आटमियोंके बीच उपदेशका अमृत बनकर भरती थी।

सो, उस दिन समरथ चला।

प्रान इसके पहले मिली थी। पिछ्छाड़ेकी कड़ी खोल, ठाकुरोंकी बाढ़ी लॉघकर, नीम-नीचे चोरी-चोरी वह आ गई थी। समरथके सीनेसे लग कर वह खूब रोई। समरथको भी असह्य वेदना लगी। न शब्द सूझते थे, न बोल निकलते थे। घरसे जब चला था, राह भर अपनी कमज़ोरीको दबाता जा रहा था। पर वह दूटी हुई सिंप्रगकी तरह, ऐन वक्तपर उभरकर ऊपर उठ आई! इसपर भी वह प्रानसे दूरी बनाये रहा, क्योंकि पिछली-बार मेहताओंके बगीचेमें जब वह मिली थी, तब समरथने, जाने भूलसे, जाने-अनजाने, देखे-अनदेखे उसके अधरोंका अमृत छू लिया था। तब तो तुरन्त प्रानके प्राण-पछी जैसे उड़ गये हो—बौहंसे छुड़ाकर और पीठ उसके हाथोंसे हटाकर छूट गई और फुस्फुसकर अचानक सिसकने लगी। समरथने बड़ी आरजू-मिन्नत की। रुमालसे उसके थोसू पोछे, हाथ जोड़े और मुँहपर हाथ रखकर चुप करनेकी कोशिश की, कि हवा भी न सुन ले।

जब कॉप-कॉपकर समरथ रह गया और प्रेमके अँधेरेमें कोई मार्ग न सूझा तो उसके मुँहसे निकला—“प्रान, मुझे मरा देखे, जो कारण न बताये, क्यों रोती है?”

प्रानने लब्बी-लब्बी सॉस लेकर, पहले हिचकियाँ समेटी। फिर नजरे नीची कीं और पलके ढाल दीं और ढोनो हाथोंकी अपनी डेंगलियोंसे अपने नाखूनोंको छुआते हुए लाजमे बोली—“और हम पूछे, चूमकर तुमने हमें जुठला दिया और अब इससे.. हम कहे, इससे हमारे बालगोपाल हो गया, तो ..हम कहे.. नदीमे हम झूब मरेगी!”

“धृत तेरी, इसीके लिए यह बवाल मचाया था कि?” समरथने चौधरीकी दुलारी बिटियाके धौल जमाया। बोला—“हम कहे प्रान, जो किसी नन्हे-सुन्नेको चूमते हैं, तो क्या उसके बालक हो जाता है?”

लड़की लड़केके समान कुशाग्र बुद्धि नहीं थी। उसके तर्कसे प्रसन्न हो गयी।

और आज पाँच वर्ष बीत गये !

जीवनकी धारा अनेक पथरीली और ऊँची-नीची जगहोपर बहनेपर भी, अपनी चक्रता छोड़कर सीधी सपाट न बही। आज प्रान नहीं, माँ नहीं, साथी-सगाती नहीं। सिर्फ़ यह बाजार है—भरा-भरा, पर सूना-सूना। बंबई है—लंबी-चौड़ी बंबई ! काली-सफेद सड़कोवाली, लंबी डाढ़ों-वाली बंबई—जैसे भृत पूतना देह पसारे पड़ी है !

बीचमे द०० मीलकी दूरी है। उधर प्रान है, माँ है; इधर वह है, और है बेकारी और मुफलिसी। बीचमे यह सैकड़ो मीलोकी लंबाई फैली है। घर, मकान, कपड़ा, दाल, रोटी और पेटकी सुरक्षा मजबूरी बनकर दूरीमे बदल गई है। प्रतिमास वह मॉको दिलासा देता है—‘जल्द आऊँगा।’ मॉका पत्र आता है—‘आँखोसे कम दीखता है।’ जल्द आऊँगा। प्रानके रेगते अक्षरो वाली पाती आती है—जल्द आऊँगा। और वह अपनेसे कहता है—जल्द आऊँगा ?

उसकी जल्दीके ये दिन और राते—व्रह्माके दिन-रात बन गये हैं। दूरी कभी खत्म नहीं होती, मजबूरीका अन्त नहीं। पाँच वर्ष निकल गये और पाँच वर्षोंके लगभग दो हजार दिन कडियों बन-बन शृङ्खलाके बधन बन गये हैं। प्रान तक पहुँचनेका ‘कोई खास कारण नहीं’। माँ के पास जाकर जी जुड़ानेमे ‘कोई विशेष रुकावट नहीं’ केवल यही कि पैसा—राह-खर्च उसके पास नहीं है।

लेकिन वह माँ को कैसे समझाये कि सचमुच ही पैसा उसके पास जल्द आनेवाला है और वह माँ के पास जल्द आनेवाला है। आखिर वह भूठा नहीं। एक दिन वह ज़रूर जायेगा, उसे जाना ही है। यहाँ ‘कोई

खास अडचन नहीं। वात सिर्फ इतनी-सी है कि पासमे बाईंस रुपये छह आने नहीं हैं।

और अक्सर रेल्वे ऑफिसमे बुकिंगकी लिड़कीपर वह पूछ-पाछ कर लेता है—“किराया कम हुआ ?”

“नहीं !” चश्मा-लगी ऑखोसे बाबू उसे धूरकर देखता। बाबूके फूले मुँहसे निकला यह ‘नहीं’ पहले सीधा, फिर तिरछा होकर उसके कानोमे प्रविष्ट हो, पेटमें, जिगरमे पहुँचता है। फिर वहाँ पहुँचकर उलट जाता है जैसे नागन डॅस्कर उल्टी हो जाती है। तब एक दर्द बाकी रह जाता है।

उस दर्दकी घुटनमे भी वह लिखता है—बड़े आराममे है। लम्बी-लम्बी सड़के, ऊँचे-ऊँचे मकान, जिनका छुज्जा देखना चाहे, तो सिरसे टोपी गिर जाये। जब बाहर यह हालत है, तो भीतरवालोका क्या हाल होगा ? उनका तो सारा सिर ही फिर गया है ! जहाँ चाहो इकनीमे ट्राममे बैठकर पहुँच जाओ। बड़ी-बड़ी होटलें, स्टुडियो, दफ्तर, कम्पनियों, इमारतें, हैरिंग गार्डन, नेशनल पार्क, और मिल्क कॉलोनी, जूहू, ताज, गेट-वे, एशियाका सबसे बड़ा स्टेशन—वी० टी०, और कलकी—अमरीकी दुकानमे आज आ बैठा खादी-भण्डार, तेरह हजार महीना जो शो-केसका किराया देता है, सब कुछ तो है—लेकिन एक नौकरी नहीं। पॉच सालोसे वह दफ्तर-दफ्तर और सड़क-सड़क और सड़कसे दफ्तर तक भटक रहा है। हजारो मील उसने पैदल तय कर डाले है, पर अभी नौकरी नहीं। और घर लौटनेके लिए आवश्यक रुपये भी नहीं। दुनियामे सब कुछ होते हुए भी जैसे उसके लिए कुछ भी नहीं है, क्योंकि उसके पास नौकरी नहीं है।

“बाबू जी, बाईंस छह आनेसे किराया कम हुआ ?”

“नहीं जी, कम कैसे होगा, अब तो और भी बढ़ेगा।”

उसका चेहरा बदल गया है। ऑखें अन्दर, गालोंकी हँड़ियों बाहर और कदम सुस्त पड़ गये है। दिमाग थक गया है। नजरोमे प्रानका चेहरा

धुंधला पड़ने लगा है, और ऑखो-आगे मॉकी तसवीर मिटने लगी है !

भट्कन, भुखमरी, वेरोजगारी ! कल्पना, चिन्ता, भ्रम ! आशा, निराशा और परेशानी ! समुद्र, रेगिस्तान और दलदल !

समरथ इतना मायूस और फटेहाल दिखने लगा कि लोगोंको दर्या आती । उसेवे सब स्थान मालूम हो गये थे, जहाँ मुफ्तमें खाना मिल सकता है—नरनारायण-मन्दिर-द्वारपर गुजरातिने, पारसियोंकी ‘अग्यारी’पर पारसिनें और माधोब्रागमें मारवाड़िने रोटी-चावल बॉटने आतीं । वह जरूरत देखकर सब जगह जाता रहता ।

राहगीर एकाध इकन्नी थमाकर चले जाते । खुश होकर वह ले लेता । सिक्केको गौरसे देखता । किंज इम्पररकी तसवीरसे उसे भय, विस्मय और आनन्द मिलता । सहेजकर वह पैसा रख लेता । जब तीन-चार-पाँच रुपये हो जाते, तत्काल मॉ को भेज देता ।

मॉ और प्रानकी खुशी उसपर केन्द्रित थी और उसकी खुशी सिक्केपर अङ्कित किंज इम्पररकी छविपर निर्भर थी । काश, उसके पास इतने किंज इम्परर हो जाये कि वह घर—अपने घर—पहुँच सके, जहाँ उसकी बुद्धिया मॉ है और प्रान है और है वह नीम—जिसकी छायाके नीचे हवाएँ धीरे-धीरे बहती है, परछाइयों मिलती है और लड़कियों चोरी-चोरी चलती है !

मनीआर्डर-फार्मपर दो पंक्तियोंमें कंठस्थ शब्द लिखता—‘जल्द आऊँगा, बहुत जल्द ! काम ठीक चल रहा है । उन्नतिकी उम्मीद है । चौधरीको पॉलागन ।’

चर्नी रोडके प्रार्थना-समाज-कॉर्नरपर अपने जिलेका एक पनवाड़ी उसे मिल गया और उससे पहचान हो गई । उसीके पतेपर समरथ पत्र में गवाता, वही प्रानके और मॉके लिखवाये चौधरीके पत्र पहुँचते । मॉ लिखती—“वेटा, मुझे रुपये-पैसे नहीं चाहिए, दोनों जून भरपेट खाना और जतनसे रहना । जल्द आना ।”

और प्रानको तो एक ही रटन थी—“अब हम कहे, तुम आ जाओ।”  
.....पाती हाथोमें थमी है। बाईंस छँह आने बढ़कर अद्वाईंस हो गये हैं। स्वराज्यमें सब चीजें मँहगी हो गई हैं। एक वेकारी, भुग्जमरी और वेश्याई ही सस्ती है। उसकी नजर पातीपर है, जिसके अक्षर वृहदाकार हो बढ़ते जा रहे हैं, बढ़ते जा रहे हैं...दिमाग कहीं और है.. कोई चिबुकपर अँगुली छुआये...गैलपर ऑखे लगाये बैठी है! मन और प्राण जिसके आशाका तार बन गये हैं...सपनोपर जो जी रही है...और अद्वाईंस रूपये? वह मुसकरा दिया, विक्षिप्त-सी एक हँसी उसके अधरोपर फैल गई।

हर शनिवार वह डाकघर जाकर अपनी पत्रियों लाता। डाकिया उसके पतेतक रेगता हुआ आये—इतना चैन उसे नहीं था। दो-तीन मील चलकर वह अपना खत पाता। विन्डो-डिलीवरीके समयसे पहले ही, वह क्यूमें खड़ा हो जाता। कभी उसका पत्र होता, कभी नहीं। उसके आगे-पीछे खड़े व्यक्तियोंके नाम मनीआर्डर आते, पर शायद पूरे पतेदारोंमें वही एक ऐसा था, जिसके नाम कभी मनीआर्डर नहीं आया।

प्रायः इधर-उधर बीझ ढोकर सिनेमाकी खिड़कीके ‘क्यू’में होकर, कारोसे उत्तरनेवाली सुन्दरियोंके द्वार खोल, सलाम बजाकर, फुटपाथपर बैठकर, फुटकल सामान बेचने वालोंकी सुरक्षामें गलीके क्लोरपर दिन-भर खड़ा रहकर, इस बातका ध्यान रखता कि हल्केका पुलिसमैन तो नहीं आ रहा है—उसको दूरसे देखते ही वह लपककर सौदागरोंको सूचना देता, और वे अपना-अपना सामान सिरपर उठाकर आसपासके मकानोंके नीचे जा खड़े होते—इन सब क्रिया-कर्मसे, महीनोंके अथक परिश्रमपर कुछ रूपये वह जमा कर लेता, पर जब उन्हें कल्पनाके अद्वाईंस रूपयोंकी बराबरीमें रखकर नापता, तो उसका कलेजा बैठ जाता। और इतने दिनोंके उपरान्त इस समयतक, नहाने-धोने और पेट-भरकर भोजन कर लेनेकी उसकी इच्छा बलवती हो उठती। वह बहुत मनाता कि ईश्वर उसकी भूख कम

कर दे और पाचन-शक्तिको मिटा दे, पर ईश्वरने समरथकी अन्य मॉगों और विनतियोंके समान इस मॉगको भी रद्द कर दिया था। उसे आश्चर्य था कि क्या कारण हो सकता है, वडे आदमियों और सेठोंकी पाचन-शक्ति क्षीण होनेका, बावजूद इसके कि जो चीजे वे हज़म कर जाते हैं, उन्हे हजारों समरथ मिलकर भी नहीं पचा सकते !

एक दो बार मिलके दफ्तरसे उसे बुलावा भी आया, पर वह समयपर इसलिए नहीं पहुँच सका कि उसके पास धुली कमीज और कम-से-कम साफ दाढ़ी नहीं थी। चप्पल उसके फट गये थे, और अब उसने उसके नीचे सड़कपर प्राप्त दो मोटे पुष्टे बड़ों कुशलतापूर्वक सी दिये थे। उसे बड़ा दुःख है कि उसकी 'न मिली नौकरी' चली गई। और वह अद्वाईस रूपये का वारिस न बन सका और मॉके पैर छूकर प्रानका मुखड़ा देखनेसे बच्चित रह गया !

पिछले दो हजार दिन अपने चौबीस-चौबीस घटोंकी वरात लेकर उसके सामनेसे गुजर गये और वह उतनी-उतनी बार मॉसे और प्रानसे जुदा होकर दूर होता गया ! उसके अन्तरतमके मर्ममेंसे कोई झोककर पूछने लगा—और प्रान तो अब सयानी हो गई होगी...वालास तरुणी ! चेहरा और बद्न भर गया होगा !...निबौरियों अब भी गदराती होगी और प्रान, तुम, नीमनीचे अब भी आती होगी ?...समरथका रोम-रोम रससे भीग गया और ऑखे अनदेखे आनंदसे आर्द्ध हो आई ।

सेन्ट्रल-सिनेमामे दूसरा शो शुरू होनेकी घटी बज रही थी। उसके आस-पास ब्लेकवाले मक्खियोंकी तरह भिनभिना रहे थे—'वन-फाइव-थ्रेवन-ट्वेल, टू एट-थ्री फोर' ।

काश, उसे नौकरी मिल जाती, तो सबसे पहले मॉको पुष्करजीके स्नान करवा देता ! फिर प्रानको लेकर बंबई लौट आता, इस सिनेमामे लाता ! इस भरी भीड़में उसकी प्रान किसी राजकन्यासे कम न ज़ॅचती !

पर जिन्दगी तो नीमकी पत्तीकी तरह है, कहुआपन लिये रहेगी और पीली पड़कर एक दिन अचानक झड़ जायेगी ।

और हरेक गुजरते हुए दिनके साथ, घर लौट जाने, प्रानको पाने, और मॉके हाथोंकी बनी रोटी खानेकी उसकी आशा क्षीण पड़ती जाती थी । ऐसा लगता था—ससुरालसे तिरस्कृता, किसी सेठकी लड़की-सी उसकी आशाको क्षय-रोग हो गया है और वह तिल-तिलकर घटती जा रही है और एक दिन उसका हृदय-स्पन्दन रुक जायेगा, आँखे खुली रह जायेगी, कि कुछ देखना चाहती थीं, पर देख न सकी, औठ खुले रह जायेगे कि कुछ कहना चाहते थे, पर कह न सके—पति-परित्यक्ता-श्रेष्ठि-कन्या-सी उसकी सुकुमारी आशा !...भिखारियोंके सपनो और मुफलिसोंकी आशाओंका क्या मूल्य ? उनकी क्या वकत ? सामने जो खड़े है मही-रावण, उन्हें तो ललकारनेवाले चाहिए ।

ज्यो-ज्यो दिन जा रहे है, उसका ख्याल बँध रहा है कि उसे लड़ना होगा । ऐसी-वैसी नहीं, भारी लटाई लड़ना होगा । क्यो, जिधर जाओ उधर पैसा मॉगा जाता है और पैसा ही नहीं, भरपूर पैसा, जैसे कोई लट हो रही है और इन अगणित लोगोंमेंसे अनेक इस लूटमें लगे हैं और अनेक इसके शिकार हैं । इस विचारपर समरथको लगा कि उसके आँखो-आगेका व्यंधेरा थम गया है, रोशनी बढ़ गई है और मनकी शुटन, वेवसी मट पड़ गई है । ऐसे-ऐसे विचार जब उसे आते हैं, जाने क्यों जी हल्का हो जाता है ।

और उसके जल्द आनेकी चिट्ठी पाकर मॉ कितनी पुलकित-प्रसन्न हो उठती होगी ! उसके लिए पापड, बड़ी पकौड़ीकी तैयारियों करती होगी और गोब-भरमें कहती फिरती होगी—“इस बार लज्जा जरूर आयेगा । इस बार सोनाकी मॉ, वेदा...!”

लेकिन, इस बारका तूफान और उल्कापात पहले उसके सीनेमे उठा और पटरीसे गिरी गाड़ीकी तरह उसकी सॉसे उलट गई और आवेग इतने वेगसे बड़ा कि आँखे पोछनेका उसे मौका न मिला। मॉकी रोती-चिलखाती मूरत सामने आ गई और सामने सेन्ट्रल-सिनेमापर लगी 'श्रवण कुमार' की मॉकी तसवीरमे उसकी अपनी मॉका मुख उभर आता लगा— उसने स्पष्ट देखा, वह रो रही है। उसकी ओर समरथका एक हाथ उठा, परन्तु मॉ तक नहीं पहुँच पाया—वह कैसा है, जो मॉके आँख नहीं पोछ सकता है? इतनी विवशता, इतनी मजबूरी?, दिन इसी तरह बीतते। शरीरकी शिरा-शिरा और रोम-रोम मॉके लिए विकल हो, मॉ-मॉ पुकारने लगे। और वह सोचता, भोरसे सॉभतक मॉका कार्य-क्रम—अब वह जगी होगी, गाय दूहती होगी। चौधरीके पानी-सानी करती होगी। छिपी कहीं कोनेमें प्रान पूछ रही है—“मॉ पत्तर आया?”

इस प्रकार वह मॉके पीछे-पीछे फिरा करता और यो ही भूख और उदासीका अपना समय गुजार देता। परेशानियो और परिस्थितियोसे लडते-लडते उसका स्वभाव 'लड़ाका हो गया था। हरदम वह गर्मी लिये रहता। मस्तिष्क अपनी विभिन्न अवस्थाओंसे संघर्ष कर रहा था। कभी एकदम शीतल और कभी एकदम उष्ण। कभी वह एक ही जगह बैठा रहता। सपने—सपने और सपनोके सिवाय उसके पास कुछ नहीं रह गया था। लाल बागमें सुने भाषणोकी कल्पना वह किया करता। संघर्पके ये भाषण उसे बहुत पसन्द आते। वह भीतर-भीतर अविक्षित था, बाहर-बाहर विक्षित था।

एक दिन एक लम्बी-सी लाठी वह कहींसे उठा लाया। उसे कधेपर रखे बीच सडकपर खड़ा हो गया। फिर स्वयं फौजी कवायदके आदेश चीखकर उनका पालन करने लगा। पहले 'अटन्शन' चिल्लाकर लाठी कधेपर रखी, सलामी दी। उसे बन्दूककी तरह तानकर नीचे बैठ गया

और लगा, 'फायर' पर 'फायर' के ऑर्डर देने ! दर्शक तालियों बजाने लगे । फिर तपाक से वह उठ खड़ा हुआ, सलामी दी और 'कुइक्मार्च' गुजाकर चाल चौगुनी कर दी ।

मुहल्ले-मुहल्ले मे वह प्रसिद्ध हो गया ।

जब उसकी लाठीपर गूंजते 'फायर' बहुत बढ़ गये, तो एक दिन उस मुहल्ले के सूबेदारने उसे पीछे से आकर पकड़ लिया और अशरण-शरण कानूनकी छायामे ले गया ।

'अबे, तू क्या करता है ?'

'कुछ नहीं ।'

'फिर, खाता क्या है ?'

'कुछ नहीं ।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'कुछ नहीं ।'

'कहाँ रहता है ?'

'सडकपर ।'

—आवारागटीमे उसे गिरफ्तार कर लिया गया ।

जेलमे समरथको बड़ा अच्छा लगा । जगह बहुत तंग और छोटी थी, पर उस छोटी जगह रहनेवालोंके दिल उतने तग न थे, जितने बड़ी जगह रहनेवालोंके होते हैं । समरथ जल्ट ही सबसे हिलमिल गया । कितने भोले और सीधे लोग हैं वे ! उनमेसे कुछने कुछ अपराध जरूर किये थे, परन्तु अधिकाश निरपराध थे—जो उसकी तरह 'कुछ न करनेके लिए' पकड़ लिये गये थे । न्यायपतिने सबसे एक ही प्रश्न पूछकर स्वयं ही उत्तर दिया था—'कुछ नहीं करता, तो साला खाता किधरसे ?'

और समरथ अपने साथियोंसे कहता—

“कहें भीख माँगकर—तो वम्बई में भीखें माँगना भी जुर्म । लेकिन वे, जो भीख माँगनेके लिए लोगोंको मजबूर कर रहे हैं, उनके लिए कोई कानून और कोई सजा नहीं । कानून अमीरोंकी शातिके लिए है, ताकि हमारे क्रन्दन और क्रोधसे उनके आराम में खलल न पड़े ! रोटीकी हमारी माँगे उन्हें कर्णकदु लगती हैं । उन्हें यह समझ में नहीं आता कि रामराज्य में कोई भूखो भी मर सकता है ! कहते हैं, ये लोग “कुछ काम क्यों नहीं करते, आखिर हम भी तो दिन भर काम करते हैं !”

जेलमें समरथने दस्तकारी सीखी । अपने अपढ़ साथियोंको अक्षर-ज्ञान दिया । दस्तकारीसे उसके पास तीस रुपये जमा हो गये । अवधि पूरी होने पर वह छूट गया ।

जजने छोड़ते हुए कहा—“आगे गुडागीरी मत करना माँगता । कुछ काम करने सकता । काम करो ।”

समरथ क्या कहता ? सो चुप रहा । मन ही मन मुसकराया और बाहर आया ।

दरवाजे पर पीपल सूख गया है । जामुनका पेड़ बड़ा हो चला है । खपरैल पिछली ओर्धी-बरखामें उड़ गई लगती है । कजरी गैयांकी ठठरियों निकल आई है—फिर भी, वह आदमीको पहचानने में वम्बईके लोगोंसे अधिक कुशल और सदय है । जब रँभाने लगी तो समरथसे न रहा गया, उसके गलेमें दोनों बाँहें डाल दीं ।

बृद्ध अपने, हड्डियों-निकले-जवान वेटेका चेहरा देखकर थम-थमकर रो रही थी, जैसे किसी अबलाकी लहराती फसल पर पाला पड़ जाये । नैन नीचे किये प्रान पास में खड़ी थी, वह न राज्ञी थी, न नाराज थीं । वैस, उसके दिलमें कुछ-कुछ हो रहा था । वह कहना चाहती थी—‘हम कहें... बरज दिया था, हम कहे न जाओ ।’

समरथ बोला—“न रो माँ, और यो न देख प्रान ! कुशासनकी वेदी पर बलि होने वाले हमी अकेले नहीं हैं। देशके मरघटपर परिवारके परिवार मिट रहे हैं ! जो सरकार अपने बच्चोंको रोटी नहीं दे सकती, वह उन्हे ‘कुछ भी’ करने को मजबूर करती है, और दुनियाका कोई भी कानून उन्हें दोषी नहीं बता सकता ।”

माँको समरथ इस बार अधिक पागल लगा ।

फिर भी माँ, वेदा और प्रान—इसलिए जी रहे थे कि वे अपनी मिट्टी पर खड़े थे । उनके शरीर सूखे थे और पेट खाली थे । उनकी विषमानस्था पर सूखे नीमपर रहने वाला अर्थ-पिशाच अद्वितीय कर रहा था ! उसे कदाचित् इन्सानकी सघर्ष-परम्पराका बोध नहीं था, इसलिए वह हँस रहा था ।

## मोहन राकेश

कवीरपंथी वृत्ति और विषम परिस्थितिके दब्दने मोहन राकेशके कथाकारको जन्म दिया है। अभी सोलहवें वर्षमें क्रदम रखा था कि पिताका साया उठ गया। फिर जो अराजक सधार्षका दौर शुरू हुआ वह आज भी समाप्त होनेका नाम नहीं लेता। जन्म अमृतसरमें सन् १६२५ में हुआ, संस्कृतमें एम. ए. कर छात्रवृत्ति पाई, दो साल होटलोमें तफरीह करते रहे, एक साल फ़िल्मोके चक्रमें विताया, बेकारीके कमर तोड़ देनेपर, जीविकोपार्जनके सिलसिलेमें बहते हुए तिनकेकी तरह, इन नौ वर्षोंमें, अनेक किनारे छुये। सम्प्रति डी. ए. वी. कॉलेज जालंधरमें प्राव्यापक नियुक्त हैं।

किन्तु ये नीरस तथ्य, उस व्यक्तिके जीवन और चरित्रका चित्रण करनेमें सर्वथा असमर्थ है, जिसका घर कही भी न होते हुए सर्वत्र है; जो स्थायी रूपसे विस्थापित है, पर फिर भी निराधार नहीं; और जिसकी रचनाओंमें उसका अपना व्यक्तित्व परोक्त रूपमें इस कदर विद्यमान रहता है कि उसकी कहानियों पढ़ यही अनुभूति होती है मानो जाडेकी किसी कुहरीली रातमें अलाचके पास बैठे कोई किस्सा सुन रहे हो। मोहन राकेशकी कहानियोंको विशेषणोंकी अपेक्षा नहीं—वह सच्चे मानोंमें कहानियों है और कुछ नहीं। कदाचित् यही कारण है कि मोहन राकेश नये कहानीकारोंमें अग्रणी हो गये हैं।

आपका एक यात्रा-वर्णन ‘आखिरी चट्ठान तक’ और दो कहानी-सग्रह ‘इन्सानके खण्डहर’ तथा ‘नये बादल’ प्रकाशित हो चुके हैं।

# • वासनाकी छायामें

—मोहन राकेश

यह जालन्धर है ।

मुझे इस बातसे सरोकार नहीं कि यह शहर कितना पुराना है, और यहाँ कौन-कौन-सी तरकारियाँ पाई जाती हैं । मेरा इस शहरसे इतना ही बास्ता है, कि मैं यहाँ हूँ और यहाँ रहते हुए इस शहरका एक नागरिक हूँ ।

मैं जालन्धरका नागरिक हूँ क्योंकि नागरिक होनेके सभी कष्ट आजकल यहाँ रहकर भेल रहा हूँ । सवेरे-शाम ग्राडट्रक रोडकी धूल फॉकता हूँ । दूधकी बजाय दो आने गिलास वाली चाय पीता हूँ । घरसे दफ्तर तक पहुँचनेके लिए एक मील पैदल चलता हूँ और दो मील बसमे जाता हूँ । यही मेरी नागरिकता है । जिस नगरमे यह नागरिकता ढोई जा रही है, उसका नाम है जालन्धर ।

अजीब है । कहते हैं कभी कोई जालन्धर नामका राज्यस था । उसने यह नगर बसाया था । बसाया होगा । मुझे क्या ? न बसाया होता तो मैं हांशियारपुरमे रहता, लुधियानामें रहता या फगवाडामें ही जा बसता । जहाँ कहीं भी रहता, मेरा गढ़वाली नौकर रोटियाँ इसी तरह जलाता जैसे यहाँ रहकर जलाता है । पर खैर जी, राज्यसराज जालन्धरने यह नगर बसा दिया, और उसकी सन्तानने यहाँ गलियाँ बनवाई, गलियोमे घर बनाये, घरोंमे सूख रखे, जिनसे धूलमे मुनी हुई हवा छुन-छुनकर उनके कोठरोमे आती रहे, और उस हवासे गैस लेकर वे नई नस्लोका निर्माण करते रहे, और राज्यसराज जालन्धरका नाम इतिहासमे नहीं, तो कमसे कम भूगोलमे ही अमर रहे ।

दो-तीन दिन मैं पुष्पाकी वात सोचता रहा हूँ, जिसे उस दिन घरके सामने पम्पपर पानी भरते देखा था। पुष्पाकी आँखें मोटी कौड़ियों जैसी हैं। पहले दिन उसने दो-तीन बार आँख भरकर मुझे देखा, तो मुझे लगा था कि या तो मेरे बाल बहुत अधिक सफेद हो गये हैं या मैं अपनी आयुसे चार-पाँच साल छोटा लगता हूँ। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह सहज विश्वास भरी दृष्टिसे मुझे देखती मानो कह रही हो, चलो, आँख मिचौनी खेलते हो ?

पुष्पाकी आयु तेरह सालकी होगी ? अधिक-से-अधिक चौढ़ह साल होगी। उसका रङ्ग गोरा पञ्चाबी है। उसके शरीरको पूरा खिलनेमें अभी दो-तीन साल है। फिर भी उसकी आँखोंमें वह विस्मय भर गया है, जो यौवनका अर्थ पहले-पहल समझनेपर कुछ दिनोंके लिए रहता है। उसे आश्चर्य है कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाबका रङ्ग गुलाबी क्यों है ?

“पानी ले लीजिए” पुष्पाने अपनी बालटी हटाकर मुझसे कहा;

“नहीं तू भर ले !” मैंने इस विश्वासके साथ कहा कि वह मेरे सफेद बालोंका सम्मान कर रही है।

“आपको दफ्तर जाना है, भर लीजिए,” उसने फिर कहा। मुझे खुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्वका पता है, काम-काजका पता है और उसका लिहाज मेरे सफेद बालोंतक सीमित नहीं।

“तेरा नाम क्या है ?” मैंने अपनी बालटीमें पानी भरते हुए पूछा।

“पुष्पा” उसने सङ्कोचके साथ उत्तर दिया।

“किस श्रेणीमें पढ़ती है ?”

वह और भी सकुचित हो गई ! बिना मेरी ओर देखे बोली—“मैं स्कूल नहीं जाती ।”

“क्यो ?” मुझे आश्र्वय हुआ कि इतनी अच्छी आँखोवाली लड़की स्कूल क्यो नहीं जाती ? वैसे तो मैं किसी लड़कीसे लगातार तीन सवाल नहीं पूछता, क्योंकि वे इसे धनिष्ठा समझ बैठती हैं। पर पुष्पा अभी उस रेखासे दूर है, जहाँ जाकर एक लड़की मेरे लिए लड़की बन जाती है।

“मैं यहाँ नहीं रहती,” पुष्पाने कुछ इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न विलकुल असगत रहा हो। “मैं बापूके साथ गाँवसे आई हूँ। बापूको यहाँ काम है। काम हो जाये, तो फिर हम अपने गाँव चले जायेंगे।”

मैंने देखा कि उसकी आँखोंने अभी लजाना नहीं सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताजगी है, जो नई बहारकी गोभी में होती है। वह गाँवसे आई है और गाँव चली जायगी। वहाँ जाकर वह सरसोंके पीले-पीले फूलोंसे खेलेगी और मीठा नरम-नरम साग खायेगी। कोई रातको आगके पास हीर गायेगा, तो वह विभोर होकर सुनेगी। नहीं तो सरसरातों हवाका गीत ही सही—वह उसके रोम-रोम में नीट भर देगा। वह अपनी अगूरी आँखोंको तारोंकी किरणामें नहलाती हुई सो जायेगी।

सबेरे उठकर वह पशुओंको चारा देगी। प्रभातीके गीत उसे फुसलायेगे, तो वह नगे पैरों नदीकी ओर भाग जायेगी। वहाँ जब तक मन में आयेगा, तैरती रहेगी। फिर लौटती हुई धानके खेतसे मूलियाँ और शलजम उखाड़ती लायेगी। उसके गीले बाल रुखे ही सूख जाये, तो सूख जाये। उसके फृटते हुए वक्ष चाहे उसकी कमीजमें कटोरियाँ-सी निकाल दे, उसकी आँखोंकी माधुरी रस घोलती ही रहेगी। वह गणितके प्रश्नोंसे नहीं उलझेगी। वह भूगोलकी रेखाएँ नहीं याद करेगी। वह कोष लेकर कविताओंके अर्थ नहीं ढूँढेगी। वह जिधर देखेगी, उवर कविताएँ विखर जायेंगी।

अचानक मैंने देखा कि मैं पप चलाये जा रहा हूँ, हालोंकि बालटी भर चुकी है और पानी इधर-उधर विखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता

छिपाने और पुष्पाके सौजन्यका बदला चुकानेके लिए मैने अपनी बालटी उठाई और उसका सारा पानी पुष्पाकी बालटी मे डाल दिया ।

“ऊई !” मैने उसे कहते सुना । “मेरी बालटी छू गई !”

“छू गई ?” मैने कुछ लजित और अपमानित होकर पूछा । यह नहीं कि मेरा पहले कहीं तिरस्कार नहीं हुआ । तिरस्कार तो प्रायः हो जाता है, पर वही, जहाँ मै अपने तीनके पॉच करता हूँ । वहाँ मुझे तिरस्कारकी आशा भी रहती है । पर उपकारके बदले तिरस्कार मुझे उतना ही चुभता है जितना तिरस्कारके बदले उपकार ।

पुष्पाने शायद मेरे छिले हुए भावको भौप लिया, क्योंकि उसने ज्ञान माँगनेके ढंगसे कहा—“मै बालटी मॉजकर लाई थी । आपकी बालटी मैंजी हुई नहीं थी ।”

यह सुनकर मेरी आत्मा पुनः उदार हो गई । मैने मन मे दोहराया कि बालटीको राखसे मला जाये, तब जाकर वह पवित्र होती है । फिर चाहे गलीज फरशपर रखकर उसमे पानी भरो, चाहे चबाई हुई ढातुनोके द्वेरपर ।

“मेरी बालटी मैंजी हुई थी । मैने सबेरे मॉजी थी,” मै झूठ बोला । झूठ बोलना मेरी आदत है । बिना कारणके झूठ बोलता हूँ । दिनमे कई-कई बार बोलता हूँ । यह मुझे अच्छा लगता है । मै आपसे सच कह रहा हूँ ।

जो मुँहसे झूठ नहीं बोलता, वह मनमें झूठ बोलता है । जो मनमे झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है । क्योंकि वह सचका दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है ।

मेरे झूठका परिणाम ठीक निकला । पुष्पाने विश्वास नहीं किया । झूठ बोलनेका सबसे बड़ा लाभ यह है कि लोग उसपर विश्वास नहीं करते । पुष्पाने मुसकराकर बालटीका पानी गिरा दिया और जमीनसे

मिट्ठी उखाड़कर बालटीको मलने लगी । मैं अपनी बालटीमें फिरसे पानी भरने लगा ।

किसीने दूरसे पुष्पाको पुकारा, “पापी !”

“आई बापू !” उसने पुकारका उत्तर दिया ।

“पानी नहीं भरा ?” आवाज आई ।

“नहीं बापू !” उसने उत्तर दिया ।

“जल्दी कर, सिरमुडी !”

मैंने उधर देखा तो एक लड़ा बूढ़ा जाट एक कोठीके वरामदेमे खड़ा सिरपर पगड़ी लपेट रहा था । एक तो उसकी आवाज ही कर्कश थी, दूसरे उसकी सफेद ढाढ़ी ऐसी नोकटार थी, जैसे उसीसे वह मुर्गियों झटकता रहा हो । उसकी आँखोंका रग ब्रतलाता था कि उसने रातको खूब शराब पी थी, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियोंमें तैर रहा था । पगड़ी लपेटकर उसने ढाढ़ीपर हाथ फेरा और पुनः पुष्पाको आवाज दी—“जल्दी कर, लाडकी बच्ची, नहीं तेरा भोय सेकूँ ।”

यह देखकर कि मेरी बालटी अभी आधी भरी है, मैं जल्दी-जल्दी पंप चलाने लगा । जाटने पीठ मोड़ ली । पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियोंका एक दौँव फेंककर मुसकराई । उसकी मुसकराहटने मुझसे कहा—तुम वेव-कूफ हो । बापूकी गालियों बेटीको नहीं लगा करतीं ।

उसके बाद दो-तीन बार मैंने पुष्पाको देखा । न जाने क्यों उसे देखकर मुझे गहरे लाल रगके मखमली फूल याद आ जाते । उन फूलोंको मैं बचपनमें अपने कोटपर लगाया करता था ।

दो-तीन बार पुष्पाके बापूको भी मैंने देखा—दातुन करते, जूठा बॉथते या गालियों बकते उसकी मुझपर कुछ ऐसी छाप पड़ी, जैसे चरसात होकर हटी हो, और पुराने गले हुए दोनके छापरपरसे महीनोंका सूखा बीठ पानीके साथ गलगलकर टपक रहा हो ।

आज दफ्तरसे लौटते हुए मैं अब्बा नकोदरसे फरलॉग भर ही आया था कि मैंने देखा सफेद दाढ़ीवाला वह जाट मुझसे दो कदम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मैं जरा तेज़ चलने लगा। वह भी तेज़ चलने लगा। मैंने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सहन नहीं कि मैं किसीके साथ चलूँ, क्योंकि जिसके साथ मैं चलता हूँ, वह अपेक्षा करता है कि मैं उसीकी तरह चलूँ और उसीकी तरह सोचूँ। पर कोई मेरे साथ चले तो यह मुझे भला लगता है, क्योंकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

“कहाँ चल रहे हो, बाबूजी?” पुष्पाके बापूने मेरा ध्यान अपनी ओर खीचनेके लिए पूछा।

“मॉडल टाउन,” मैंने इस अन्दाजमें कहा कि वह जान ले कि मैं एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हूँ, और सिर्फ़ इसलिए पैदल चल रहा हूँ कि मुझे संध्याके समय पैदल घूमनेका शौक है।

“हम भी वही चल रहे हैं। डाक्टर गुरुदख्श सिंह मदानको जानते हैं? वह हमारे ही गाँवके है। शहरमें आकर हमारा उन्हींके घर डेरा होता है।” फिर मेरे बराबर आकर वह बोला, “चलो राह चलते एकसे दो भले।”

मैंने कहना तो चाहा कि मेरे साथ चलनेमें उसे चाहे लाभ हो, उसके साथ चलनेमें मुझे कोई लाभ नहीं, पर इसलिए नहीं कहा कि कही दोआव का जाट जोशमें आकर मेरे सिरका पंजाब बना दे।

“आप इधरके ही हैं?” जाटने अब परिचय बढ़ानेकी चेष्टा की।

“नहीं,” मैंने उत्तर दिया।

“आप जालन्धरमें कबसे हैं?” मेरे साथ चलते हुए जाटने फिर पूछा। मैंने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका

उत्तर एक साथ ही दे दूँ, ताकि उसकी जिज्ञासा पूरी तरह शान्त हो जाव।  
इसलिए मैंने कहा:—

“मैं दो महीनेसे यहाँ हूँ। सेक्रेटेरियटमे असिस्टेण्ट सुपरवाइजर हूँ। वेतन एक सौ बीस रुपये है। ऊपरी आमटनी हो जानेकी आशा है। अभी व्याह नहीं हुआ। लड़की देख रहा हूँ। पढाईकी चौदह जमाते पास की है। तरकारियोंमे मुझे गोभी पसन्ट है। फ्लॉमे मैं आम पसन्द करता हूँ। हर इत्तवारको शरीरपर कडवे तेलकी मालिश करता हूँ। मेरी रोटी एक गढ़वाली पकाता है। उसकी उमर चालिस साल है। मेरे वरतन उसकी लड़की मलती है। उसकी उमर बीस साल है।”

यह सब उसे सुनाकर मैंने मनमें कहा: अब पूछ ताऊ, क्या पूछता है?

पर जाटने फिर पछा ही, “क्यों, जी, गढ़वालीने अभीतक लड़कीका व्याह नहीं किया?”

यह सीमा थी। पर मैंने धैर्य नहीं छोड़ा जहाँ बिगड़ैलसे वास्ता पड़े, वहाँ मैं धैर्य नहीं छोड़ता। सन्तोष-असन्तोष अपने घरकी चीज है। पर पीठका दर्द जाकर डाक्टरको दिखलाना पड़ता है। मुझे अपनी आत्मापर इस बातका गर्व है कि वह हवाका रुख देखकर फौरन तिरछीसे सीधी हो जाती है। मैंने जाटका प्रश्न विलकुल स्वाभाविक समझकर उसका स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, “उसकी लड़की विधवा है।”

“अच्छा, जी, विधवा है। किर तो वह उसे दूसरी जगह बिठायेगा?”

मैं इतिहासका विद्यार्थी होता, तो गढ़वालीसे पूछ सकता था कि वह अपनी लड़कीको दूसरी जगह बिठायेगा या नहीं? पर इतिहासमे मेरी कच्ची तैमूरलङ्घकी लडाई तक ही रही है, उससे आगे नहीं। फिर भी जाटकों तो उत्तर देना ही था। उसकी मूँछोंके बाल अँगडाइयों लेने लगे थे। मैंने रास्ता काटनेकी नीयतमें कहा, “वह देखभाल तो कर रहा है। आगे लड़कीकी तकदीर है।”

“लड़की देखनेमें अच्छी है ?” जाटने पूछा ।

“देखनेमें भी अच्छी है, और स्वभावकी बहुत मीठी है ।” मैंने यह इसलिए कहा कि कम-से-कम बातमें तो रोमास रहे ।

“अच्छा, जी ?” जाट बोला, “सच पूछो तो सबसे बड़ा गुण यही है । काम अच्छा करती है ।”

“काममें वह सुस्त है । हाँ, बाते बहुत करती है ।”

“अच्छा, जी ?” जाट बोला । “रगोमें जवानी हो तो काम नहीं सुहाता ।”

उसकी इपणीका मजा लेते हुए मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी आँखोमें भूखी बिल्लीकी-सी जलन थी । उसके हाठ बूढ़ी वासनाकी लारसे गीले हो गये थे । उसका रसभङ्ग करनेके लिए मैंने रुककर जूतोको भाड़ा और कहा, “इन कच्चे रास्तोपर, सरटार जी, जूतोका तो कच्चूमर निकल जाता है ।”

जाटने मेरे अभिनय और शब्दोकी ओर ध्यान नहीं दिया । अपनी ही धुनमें कहा, “बाबूजी, आज आपके गढ़वालीसे मुलाकात हो सकती है ?”

“क्यो ?” मैंने उसकी ओर देखकर पूछा । मुझे लगा कि वासनाकी लार चू-चूकर जम गई है और इन्सानके आकारमें धरतीपर रेग रही है । अगर इसे आग दिखा दी जाये, तो यह यही पिघलकर तेल हो जाये ।

“मुझे एक जमीदारनीकी जरूरत है, बाबूजी,” जाटने कहा । “मैं जमीदार हूँ । पासके गाँवमें मेरी चार एकड़ जमीन है । पाँच एकड़ जमीन जिला करनालमें है । मैं यहाँके गाँवका नम्बरदार हूँ । घरवाली मर गई है । एक जवान लड़की है । उसका ब्याह कर दूँ तो मेरी देख-भाल करनेवाला नहीं । घरमें एक गाय और दो भैसे हैं । घरवाली आ जाये तो उनका चारापानी हो जायेगा, और मेरी भी दो रोटियाँ हो जायेगी ।” फिर उसने

मेरी बॉह पकड़कर मिन्नतके लहजेमे कहा, “आपके गुण गाऊँगा, सरकार, मेरा यह काम जरूर करा दीजिये ।”

वह चोल रहा था तो उसके शब्दोंकी गूँज अपना अर्थ मुझे और ही तरह समझा रही थी । वह कह रही थी, मुझे औरतके गरम मासकी जरूरत है, बाबूजी । मैं बूढ़ा चाहे हूँ, पर मेरे अकेलेके पास नौ एकड जमीन है । घरमे गाय, भैंस और सब कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है । मेरी अपनी हड्डियोपर गरम मास नहीं रहा, पर बूढ़ी हड्डियों गरम मासका चारा अब भी मॉगती है । इनके लिए चारा चाहिए, सरकार । एक गरीबकी जवानीका सुर्ता कर दीजिये ।

किसी तरह गला छुड़ानेके लिए मैंने जाटसे कहा—“गढ़वाली पजांवियोंके साथ ब्याह नहीं करते, सरदारजी । उसका वाप उसे किसी गढ़वालीके ही घर बिठायेगा ।” मेरी बात मुनकर जाट जरा ढीला हो गया । उसके मूँछोंके बाल, जो अब तक अँगड़ाइयों ले रहे थे, अब सुस्त होकर बैठ गये । वह ठढ़ी सॉस लेकर बोला—“कहीं भी कामयादी नजर नहीं आती । लोग कहते थे कि रिफ्यूजी कैम्पोसे मिल जाती है । पर मैं सवा सालसे चक्कर लग-लगाकर हार गया, कोई नहीं मिली । डाक्टर साहबने एक पहाड़न चार सौ मे ठीक की थी, वह मेरा दाढ़ा देखकर मुकर गई ।”

“पर तुमको तो घरकी देख-भालके लिए ही जरूरत है न, सरदार जी ॥” मैंने कहा—“एक नौकर क्यों नहीं रख लेते ॥”

“नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी । जमीदारका घर है । चार आनेवाले, चार जानेवाले । फिर सेवाके लिए एक गाय, दो भैंस । इतना कुछ तो घरवाली ही सेभाल सकती है ।”

“तो तुम चाहते हो कि जवान लड़की आकर तुम्हारे गुर्दे भी ठीक करे और तुम्हारी गाय भैंसोका दूध भी दोहे ॥”

“वह क्यों दोहे, सरकार, वह आरामसे बैठे। दूध दोहनेको हम क्या मर गये हैं?”

यह उसकी सौदेबाजी थी। इन्सानकी सौदेबाजी आदमके कालमे यो ही चली आ रही है। धरती फल-फूल और धान उगलती है, वह उन्हे उखाड़ लेता है और सौदा करता है। धरती धातु-पत्थर छिपाकर रखती है, वह उन्हे खोद लेता है और सौदा करता है। और वह न चले, तो धरतीका सौदा करता है। वह भी न चले, तो अपना ही सौदा करता है।

यह आजमानेके लिए वह अपने आपको कहों तक सौदेमे ढालता है, मैंने उपदेशके रूपमे कहा, “इस उमरमे कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी, सरदारजी, जो पहले कई घरोमे घूम चुकी हो, और जिसे दूसरा ठौर ठिकाना न हो। ऐसीको घरमे डाल लोगे?”

मैंने देखा जाटकी मूँछोंके बाल फिर अंगडाइयाँ लेने लगे हैं। उसने आगे बढ़कर मेरी बाँह पकड़ ली और बोला—“आपके पास है बाबूजी? जरूर आपके पास कोई है?”

मैंने नहीं सोचा था कि मेरे शब्दोका यह अर्थ निकल सकता है। थोड़ा भद्दा पड़कर मैंने स्पष्ट करनेके लिए कहा—“मेरा यह मतलब नहीं सरदारजी, कि मेरे पास कोई है। मैं तो केवल बातके लिए बात कर रहा हूँ।”

“नहीं, बाबूजी, आपके पास जरूर कोई है।” जाटने विनय और अनुरोधके साथ कहा। मेरी पगड़ी अपने पैरोपर समझो और मेरा काम करा दो। दो चार सौ मैं आपके सिरपर बार दूँगा—एक बार अपने मुँहसे कह दो कि है।”

मैंने जाटको फिर सिरसे पैर तक देखा। उसकी भौंहें सफेद हो रही थीं। अँखें छोटी होकर केवल दाग रह गई थीं। गालोंका मॉस लटक आया था। दॉत आधे टूट चुके थे। जो दॉत शेष थे, उनकी जड़ोंमे लहू रिस-

## वासनाकी छायामें

रिसा रहा था। बोलते-बोलते उसका थूक दाढ़ीके सफेद, ब्लॉकेड फैल गया था फिर वह मुझसे विश्वास माँग रहा था कि मैं कह दूँ कि है—एक नारी है जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन रोधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह जमीदार है और उसके घरमें एक गाय और दो भैसे हैं, उसको हड्डियोंमें जितना जोर है, उससे कही अधिक उसकी गाँठ में पैसा है।

“बोले नहीं, बाबू जी ?” जाटने व्याकुल उत्सुकताके साथ पूछा।

“मैं किसीको नहीं जानता, सरदार जी” मैंने धीरेसे उत्तर दिया।

माडिल टाउन अब सामने ही था। पक्की सड़कपर आकर मेरी नजर पुष्पापर पड़ी, जो बरामदे में खड़ी शायद अपने बापूकी प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे फिर लाल फूल याट हो आये। मैंने जाटकी ओर देखकर पूछा—  
“तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पडोसी हो न, सरदार जी ?”

“नहीं जी, हम कल गाँव जा रहे हैं,” जाटने कहा। “यहाँ अब किसके भरोसे बैठे रहे ? वही चलकर देखभाल करेगे और नहीं तो बदले में तो लड़की मिल ही जायगी।”

“बदले में कैसे ?” मैंने हैरान होकर पूछा।

“गाँवका रिवाज है, बाबू जी। बरावरकी उमरके बर हो, तो वहाँ दो घर आपस में लड़कियाँ बदल लेते हैं। मैं जाकर अपने जैसे ही कोई घर ढेखूँगा।”

मैंने देखा, पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है। बापू जो गाली देता है वह गाली उसे नहीं लगती। पर बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।

## सत्येन्द्र शरत्

१९४६ में प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० की डिग्री लेकर बीस वर्षीय सत्येन्द्र शरत् ने महसूस किया कि हिन्दुस्तानी फ़िल्मोंका उद्घार किये बिना निस्तार नहीं। सो ‘प्रतीक’ द्वैमासिकके (जिसके बह सहायक सम्पादक थे) बन्द होनेपर वह १९५० में फ़िल्मोंकी मायानगरी बम्बई जा पहुँचे। चार वर्ष वहाँ भक्त मारी; ‘जिन्दगीको विभिन्न एङ्गल्ससे लिए विभिन्न क्लोज-अप्समें देखा’; तथा एक असफल फ़िल्म (नाज) और एक सफल फ़िल्म (पहली भल्क) के असिस्टेण्ट डायरेक्टर रह १९५४ में वापस लौट आये। शरण-स्थल बनाया आकाशवाणीके दिल्ली-केन्द्रको, जहाँ आजकल नाटक लिखते हैं और उन्हे निर्देशितकर हवामे उड़ा देते हैं। यह काम कव्रतक मन बॉध रखेगा, ये कहना कठिन होगा, क्योंकि इससे पहले किये गये सभी पेशे—कल्की, टेलीफोन ऑप्रेटरी, सहायक सम्पादकी मन देरतक बॉध रखनेमे असमर्थ रहे हैं।

कहानियों लिखनेसे अधिक कहानियों पढ़ने और उन्हें याद रखनेका शौक है। ये शौक न होता तो प्रस्तुत संग्रह कैसे तैयार होता? अव्रतक दो कहानी-संग्रह ‘नील कमल’, ‘कुहासा और किरण’ एक एकाकी-नाटक संग्रह ‘तारके खम्मे, और एक नाट्य-रूपान्तर ‘कुन्दमाला’ प्रकाशित हो चुके हैं। हास्य-रसके नटखट नाटकोंका एक संग्रह ‘करेसी नोट’ प्रेसमें है।

## ० हमपेशा

—सत्येन्द्र शरत्

अमलसे कहा गया था कि वह इन्तजार करे, सो वह बैठा इन्तजार करता रहा ।

इस तमाम दौरानमें वह क्या-क्या सोचता रहा, अब इस सधका उल्लेख तो फिजूल है, क्योंकि उतनी देरमें न जाने कितनी बातें, कितने विचार, कितनी स्मृतियाँ उसके दिमागमें उछल-कूद मंचा एक ओरसे दूसरी ओर निकल गईं । सज्जेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि अमल की उस दिमागी हलचलका यदि नकशा बनाया जाता तो ‘कर्व’ बड़ा बॉगा-तिरछा और गोरखधन्वे-नुमा बनता ।

उन कलाकार महोदयका चित्र अब भी उसी तरह दीवारपर मौजूद था—उसी तरह स्थिलस्थिलाकर हँसता हुआ । अमलने जरा उस तरफ देखा और खट्टसे अपनी दृष्टि हटा ली । क्या ठीक है ? उस दिनकी तरह कमत्रखत फिर आँख मार दे ? या मुँह बनाकर चिढ़ाने लग जाय ?...आज वह उन कलाकार महोदयको ऐसा अवसर ही न देना चाहता था, क्योंकि वह अपनी हार स्वीकार कर चुका था । अगर स्वीकार न करता तो चालीस ही रुपयेपर अपने उन तीनों पेसिल-स्केचोंको भार्गवजीके पास बेचने न आता । उस दिन तो वह बड़ी शानसे ( हालोंकि रास्तेमें रोते हुए ) अपने स्केचोंको वापस ले आया था । लेकिन एक सताहके अन्दर ही अन्दर उसे मजबूर होकर उन्हें भार्गवजीके पास बेचने आना पड़ा था । ( उसके छोटे भाईका पत्र आया था कि अमल फौरन ही तीस रुपये भेज दे—कॉलेजकी फीसके लिए । अब अधिक नहीं टाला जा सकता । तीन माह हो गये हैं—अब

ज्ञामें कट जायगा । और तब अमलको विवश हो अपनेको तोड़ना पड़ा  
था । विवशता कितनी बड़ी चीज़ है । . . .)

उस दिनकी तरह आज मिसेज भार्गव नीचे नहीं आई—अमल सोचने लगा । शायद है नहीं इस समय कोठीमे.. तभी उसे ख्याल आया, आज सुबह उसने अखबारमे देखा था—शामको मिसेज दत्तके बँगले पर ‘होम डेकोरेशन क्लब’की मीटिंग है । ‘ठीक है । वही गई होगी ।’ उसने मन मे आप ही आप कहा और सोफेपर बड़े इतमीनानसे पीठ टिका हुल्क-सा गया ।

अचानक उसे किसी साड़ीकी सरसराहट सुनाई दी । मिसेज भार्गव आ गई है—यह ख्यालकर हाथोको नमस्तेकी रिहर्सल कराते हुए वह झटकेके साथ सोफेसे उठ खड़ा हुआ और पीछे धूम गया । लेकिन उसी तेजीसे उसे अपने हाथ नीचे करने पड़े, क्योंकि आगन्तुका मिसेज मृदुला भार्गव थी । ए. नहीं, कोई और कुमारी जी थीं जो अपने मे ही सिमटी-सिमटी-सी थीं, जैसे कोई उन्हे छूने जा रहा हो । और जो अमलको देख एक अनोखे अंदाजसे भौंपी थीं—इस अदाजसे कि अमलके उस बुझे हुए से चेहरेपर मुस्कराहटकी एक चचल रेखा दौड़ गई थी और उसका चेहरा ठीक ऐसे ही चमक उठा था जैसे किसी छोटी-सी वर्षाके समाप्त होते ही सुहावनी-सी धूप निकल आई हो ।

कुमारीजीके पीछे भार्गवजीका दरवान था—हुकुमके गुलाम-सा । वह युवतीसे बोला, “आप यहीं बैठिये । बाबूजीके पूजासे उठते ही मै आपकी खत्रर कर दूँगा । इतने आप बैठिये ।”

युवतीने सिर भर हिलाया, जिससे उसके कानोके बुँदे अत्यत सुदरता-पूर्वक हिल उठे और साड़ी सँभालती हुई वह बड़े एहतियातसे सोफे पर बैठ गई ।

युवती काफी सुंदर थी। साथ ही कुछ फिल्मी फैशनके साथ सजी हुई थी। अमल बुछु देर तक उसकी ओर देखता रहा—सरसे पैर तक। “कॉलेजी गुड़ी” बहुत निष्कर्पमय ढंगसे तब उसने मन ही मन कहा और कुछ उपेक्षाके साथ अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

कॉलेजी गुड़ियाओंसे अमलको कोई खास हमदर्दी नहीं है, बल्कि एक तरहसे उनके प्रति कुछ उपेक्षाका ही भाव उसके मनमें है। फैशनेवल लड़कियोंको देख वह हमेशा मन ही मन कुबा है। कपड़ो, बनाव-शृगार और सिनेमा आदिके खच्चोंको देखिये तो लगता है कि इनके पिता छः सात सौसे कम तो क्या ही पाते होगे—तभी तो घर-परिवारके खच्चोंको निपटाकर वह इनकी ‘शिक्षा-टीक्झा’के लिए (या जान-प्राप्तिके लिए) सौ-डेढ़ सौ भेज पाते हैं, जिनकी होली या नुमाइश ये इस प्रकार करती है। साथ ही पोज इतना करेगी कि बस। और इस पोजको देख अमल इन ‘इण्टलैक्चुअल्स’की ‘इण्टलैक्ट’ पर हमेशा ही हँसा है। कितनी कमज़ोर भित्तिपर ये नेकवरख्त गुमान करती है ?...पिता (और विवाहके बाद पति)के पैसोंपर। कल यदि आयका यह साधन हट जाय तब ? फिर कैसे जीवनसे समझौता होगा ?... तब शायद. (हयाओ जी, मैं भी क्या वेकारकी बातें सोच रहा हूँ ?). “दीज सोशल पैरेसाइट्स” उसने युवती को देखते हुए आप ही आप गुनगुनाते-से स्वरमे कहा और फर्शपर बिछे कालीनके अकनको देखने लगा।

“भार्गव जी कितनी देरमे नीचे आयेगे ?” यह प्रश्न सुन अमलने सिर ऊपर उठाया। देखा, प्रश्न उसीकी ओर डरते-डरते-से देखकर किया गया था। जाने क्यो उसकी उपेक्षा और धृणा जाग उठी, और उसने बहुत ही उज्जड तरीके-से लट्ठमार रूपमे जवाब दिया, “किसे मालूम साहब ? मुझे कह कर तो वह पूजा पर बैठे नहीं थे कि इतनी देर तक पूजा करेंगा।

जब आयेगे तब अपने आप ही पता चल जायगा । कोई सुई तो हैं नहीं वह, जो दिखायी न पड़े !”

युवती अपनेको अपमानित-सी महसूसकर छृतकी ओर जाने वाली सीढ़ियोको देखने लगी । अमल उसी तरह निर्विकार भावसे ( जैसे उसके लिए यह अत्यन्त साधारण बात हो ) कालीनका अकन देखता रहा । ( यो मनमे खुश हो रहा था—क्या सिक्सर दिया है वहनको ! अब दौड़े न फील्ड मे ! )

तभी ऊपरसे भार्गवजीकी गृजती हुई आवाज सुनाई दी—“दर-बान !” और दूसरे ही मिनट वही आदमी—जो अमलको भी बैठा गया था और युवतीको भी—एक हाथसे पगड़ी सम्हालता हुआ, कुछ ऐसी बदहवासीके साथ दौड़ता हुआ सीढ़ियों चढ़ने लगा, मानो ऊपर छृतपर आग लग गई हो । तीन-एक मिनट बाद वह लौटा और अमलके निकट आकर बोला, “बाबूजीके सिरमे दर्द हो रहा है आज । नीचे नहीं आ सकेगे । आप ही ऊपर चले चलिये । अपने सोनेके कमरेमे हैं ।”

और कोई अवसर होता तो अमल अपने स्वभावानुसार अवश्य कहता, ‘नो, लेडीज फर्स्ट !’ लेकिन एक तो उसे कुछ जल्दी थी, और दूसरे कॉलेजी गुडिया होनेके कारण उस युवतीके प्रति उसके मनका आक्रोश व तिरस्कार अभी तक दूर नहीं हुआ था, वह बिना उस युवतीकी ओर देखे खटाखट सीढ़ियों चढ़ गया ।

अपने सोनेके कमरेमे भार्गवजी पलंगपर अधलेटे थे । अमलके उन्हे नमस्ते करनेपर बोले, “आइये कलाकार महोदय !”

अमल यह विसरानेकी चेष्टा करता हुआ कि उसका नाम अमल है, और वह कलाकार है और वह मनुष्यके मनुष्यका शोषण करनेके सिद्धान्तसे वृणा करता है, पासके एक मूढ़ेपर बैठ गया । इस समय उसे केवल यही ध्यान रह गया था—छोटे भाईने पत्र भेजा है...फ़ीस देनी है...भार्गवजी

से किसी न किसी तरह रुपये लेने ही है . . . कितने भी सही . . . लेने जरूर हैं . . .

“तो फिर आपने सोच लिया है न कि आप मुझे स्केच दे रहे हैं .. अड्ड चालीसमे ।” भार्गवजी कुछ फुरसतसे बोले ।

“जी हूँ, अच्छी तरहसे । तभी तो आया हूँ । मगर देखिये, रुपयोका प्रबंध अगर आज ही हो जाय तो बड़ी मेहरबानी होगी ।”

“हूँ हूँ, अभी लीजिये ।” भार्गवजीने अत्यन्त तत्परतासे कहा । फिर नौकरसे बोले, “दरबान देखो, दूकानसे मुनीमजी आ गये हैं या नहीं ?”

दरबान उसी प्रकार भागता-सा चला गया । भार्गवजीने ऑखोंको विशेष प्रकारसे नचाते हुए कहा, “रुपयोकी विशेष आवश्यकता हो तो आप दस-एक रुपये और ले जा सकते हैं—एडवासके तौरपर । एक-आध स्केच हमे और दे दीजियेगा ।”

अमल सिरसे पैर तक सुलगा उठा । वह कोई तीखी बात कहने ही जा रहा था कि रुक गया । उसे अपनी मौजूदा परिस्थितिका व्यान आ गया । एकटम शान्त हो वह धीमे स्वरमे बोला, “धन्यवाद । फिलहाल तो इतनेसे ही काम चल जायगा । छोटे भाईको भेजने है ।”

“आपकी इच्छा” भार्गवजी मुँह बनाते हुए बोले, “मैं तो आपकी सेवा करना चाहता था ।”

सेवा ।.. अमलको उस दुःखी मनःस्थितिमें भी हँसी आ गई । बोला, “आपकी कृपा बनी रहे । सेवाका धर्म तो हमारा है...आप क्यों कष्ट करते हैं ?”

भार्गवजी इसपर हँस दिये ।

दरबान इतनेमे लौट आया । उसने बतलाया—मुनीमजी आ गये हैं और रोकड मिला रहे हैं ।

भार्गवजीने पास पड़े हुए एक कागजपर—‘चालीस रुपये दे दीजिये’—लिखकर कागज अमलको दे दिया और कहा, “जाइये, सुनीमजीसे ले लीजिये। उस तरफवाले कमरेमें हैं।”

“स्केच तो मैं दिनमें ही दूकानपर छोड़ आया था।” अमलने उठते हुए कहा।

“हौं हौं, उन्हें तो मैं दूकानसे ले भी आया हूँ।” भार्गवजीने उल्लास भरे स्वरमें कहा।

भार्गवजीको नमस्ते कर अमल कमरेके बाहर जा ही रहा था कि दरवान ने कहा, “जी एक, देवीजी भी मिलने आई हुई है। मैं तो बताना ही भूल गया था। नीचे बैठी है।”

“देवीजी ?” भार्गवजीने अपना चेहरा प्रश्न-चिह्नकी तरह बनाया। तब कहा, “यही बुला लायो।”

न जाने क्यों अमलका कुतूहल जाग उठा। कमरेके बाहर निकल वह गैलरीमें कुछ आगे तक बढ़ आया और तब इधर-उधर देख आहिस्तासे एक स्थानपर अपेक्षाकृत धूंधेरेमें खड़ा हो गया।

कुछ क्षण बाद वह युवती आई और कमरेके अंदर भिभकती-सी चली गई। पीछे-पीछे दरवान था। तभी अमलको भार्गवजीका भारी स्वर सुनाई दिया, “तुम बाहर बैठो जी। अगर कोई आये तो हमें खबर करना।”

दरवान कमरेसे निकल सीधा नीचे चला गया।

अमलने वही खड़े-खड़े सुना। भार्गवजी कह रहे थे, “कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?”

युवतीने गुनमुने स्वरमें क्या कहा, यह अमल न सुन सका। थोड़े समय बाद भार्गवजीकी आवाज फिर सुनाई दी, “हौं, वह तो नहीं है इस समय। कलब गई हुई है। लेकिन आपको तो कोई पार्ट याइम काम

चाहिए—सो उसका प्रबन्ध तो हो जायगा। हमारे पास तो हर तरहके काम हैं। लेकिन देखिए, आप इन फिजूलके भमेलोमें क्यों पड़ती हैं? सर्विस करनेमें—चाहे वह पार्ट टाइम ही हो—बहुत तवालत होती है। आप देखिये न . . .”

इस बार युवतीका स्वर सुनाई दिया, “जी हॉ, वह तो आप ठीक कहते हैं। लेकिन क्या किया जाय, परिस्थितियों कुछ ऐसी आ पड़ी हैं कि. पिताजी आजकल बीमार है और. . .”

“ठीक है। लेकिन परिस्थितियोंको तो दूसरे उपायोंसे भी अपने अनु-कूल बनाया जा सकता है।” भार्गवजीका स्वर सुनाई दिया, “कोई जरूरी है कि पार्ट टाइम सर्विस ही की जाय। आप और बहुत कुछ कर सकती हैं मसलन...मसलन. ”

अमल अब और अधिक न रुका। ‘हटाओ जी। उसने मन ही मन कहा, ‘मरने दो’। वह किस-किसके रहस्य इकट्ठा करता फिरेगा?

आगे बढ़ वह सीधा मुनीमजीके पास पहुँचा जो अपने चारों तरफ नोटों और सिक्कोंकी टेरियों लगाये गहीपर बैठे थे और उन्हे गिननेमें व्यस्त थे। कोई दस मिनट तो मुनीमजीने अमलकी ओर देखा ही नहीं। अमल मन ही मन उन्हें कोसता बैठा रहा। जब मुनीमजी पूरा हिसाब मिला उके तब उन्होंने अमलकी ओर मुँह फेरा और उसके हाथसे कागज ले उसे गौरसे देखने लगे। दस-दस रुपयेके चार नोट निकाल, अच्छी तरह गिनकर अमलको देते हुए तब वह बोले—अच्छी तरह गिन लो। और सामनेके कागजपर “चालीस रुपये बसूल पाये” की रसीद लिख दो। तारीख भी डाल देना। उस्तखत रेवेन्यू टिकटपर करना। अगर रेवेन्यू टिकट पासमें न हो तो इकन्नी निकालो, रेवेन्यू टिकट भी मिल जायगा। बिना रेवेन्यू टिकटके रसीद बेकार है—उतनी ही बेकार जितना बिना सिरके इन्सानका शरीर।

अ० और इस सब क्रियासे फ़ारिंग होनेमें अमलको दस-एक मिनट और लैंग गये । यानी चालीस रुपये की प्राप्ति में बीस मिनट नष्टकर अमल बाहर आया और सीढ़ियों की ओर बढ़ने लगा । भार्गवजी के कमरे के निकट उसे उनका शिथिल-सा स्वर सुनाई दिया, “ये लीजिये । पच्चीस है । आवश्यकता होनेपर फिर आइयेगा...सकोच विल्कुल न कीजियेगा...अच्छा नमस्ते ।”

कुछ क्षण बाद कमरेका दरवाजा खुला और युवती घबराई हुई-सी बाहर निकली । अमलके कदमों की आहट से चौक उसने पीछे घूमकर देखा । अमलको देख उसका चेहरा एक बारगी पीला पड़ गया और वह बेसाख्ता भौंप गई । उसके चेहरेपर ग्लानि और कातरता के कुछ ऐसे भाव अङ्कित हो गये कि पहलों की तरह वह भौंप अमलके चेहरेपर मुसकराहट न दौड़ा सकी । अमलने देखा, उसके कपडे और बाल आदि व्यंस्त रूपमें थे । बिन्दी त्रिखर गई थी । चेहरेपर पसीनेकी बूँदें चमक आई थीं और ओठ खुशक हो गये थे । अमलको अपनी ही ओर देखता पाकर मारे शर्मके उसकी गर्दन नीचे झुक गई । वह वही ठिठकी खड़ी रह गई । न आगे बढ़ी, न पीछे हटी ।

अमलको लगा, जैसे अब वह रो देगी ।

और अमलको न जाने क्या हुआ ? उसका क्रोध, उसकी धृणा, उसका आक्रोश-तिरस्कार सब वह गया । अत्यन्त स्निग्ध भावसे मुसकराता हुआ वह आगे बढ़ा और उस युवतीके विल्कुल नजदीक खड़ा हो गया ।

युवतीने बहुत साहसकर गर्दन ऊपर उठाई । उसके मुँहसे आश्र्ययुक्त स्वरमें केवल इतना ही निकला, “आप ! ...”

अमलने उसी प्रकार मुसकराते हुए कहा, “आपका हमपेशा हूँ । मुझे सब पता है । अभी-अभी हम लोग अपनी आत्माएँ शैतानके पास बेचकर आये हैं । मैंने चालीस रुपये में अपनी आत्मा बेची है और आपने

शायद पच्चीसमें । मेहनत और शरीर तो बाहरी खोल है—विकी आत्मा ही है । आप वेकार रज कर रही है । हम लोग इस विक्रीके लिए मजबूर थे । किर ये रज क्यों ? मुझे देखिये, मैं तो विलकुल ठीक हूँ । आप गलानि और दुःखका ये भाव मनसे हटा दीजिये । हमारा कोई दोष नहीं है । दोप इस दोषपूर्ण व्यवस्थाका है जो व्यक्तिको ईमानदारीसे जीवन व्यतीत नहीं करने देती.. उसके श्रमका उन्नित भूल्य नहीं चुकाती । खैर अब हटाइये । मनको स्वस्थ करनेकी कोशिश कीजिये । आखिर हम लोगों के लिए इसके अलावा कोई चारा भी तो न था...”

युवती कुछ न बोली । केवल बड़े-बड़े ऑसू उसकी ओँखोंसे निकल नीचे गिरने लगे ।

गैलरीमे कुछ गुनमुनाहट सुन और उसमे अमलका स्वर साफ पहचान कर भार्गवजी कुछ सशक्ति भावसे दरवाजा खोल बाहर आये । गैलरीमे कोई न था । आगे बढ़ उन्होंने देखा, और हैरतसे उनकी ओँखे खुलीकी खुली रह गई—अमल युवतीको सहारा दिये नीचे सीढ़ियों उत्तर रहा था ..



# इमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

## उद्धृ शायरी

१. शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२. शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३. शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४. शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५. शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६. शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

## कविता

७. वर्ष्मान [ महाकाव्य ]	श्री अनूप शर्मा	६)
८. मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९. धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०. मेरे ब्राह्म	श्री हुकमचंद्र बुखारिया	२॥)
११. पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

## ऐतिहासिक

१२. खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३. खोजकी पगडण्डियों	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४. चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५. कालिदासका भारत [ भाग १-२ ]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६. हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचंद्र शास्त्री	५)

## नाटक

१७. रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८. रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९. पच्चपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०. और खाई बढ़ती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१. तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

ज्योतिष

२२. भारतीय ज्योतिप श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य ६)  
 २३ करलक्वण [ सामुद्रिकशास्त्र ]प्रो० प्रकुञ्जकुमार मोदी ॥॥

कहानियाँ

२४. संघर्षके बाट	श्री विष्णु प्रभाकर	३।
२५. गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद् गोयलीय	२॥।
२६. आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२।।
२७. पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥।।
२८. खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२।।
२९. अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३।।
३०. जिन खोजा तिन पाइयों	श्री अयोध्याप्रसाद् गोयलीय	२॥।।
३१. नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥।।
३२. कुछ मोती कुछ सोप	श्री अयोध्याप्रसाद् गोयलीय	२॥।।
३३. कालके पख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३।।
३४. नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३।।
३५. जय-दोल	श्री अज्ञेय	३।।

उपन्यास

३६. सुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७. तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३८. रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९. सस्कारोकी राह	राधाकृष्ण प्रसाठ	२॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०. हमारे आराध्य	श्री वनारसीदास चतुर्वेंटी	३)
४१. सत्स्मरण	श्री वनारसीदास चतुर्वेंटी	३)
४२. रेखाचित्र	श्री वनारसीदास चतुर्वेंटी	४)
४३. जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाठ गोयलीय	५)

## सूक्तियाँ

४३. नीनगङ्गा [ सूक्तियों ] ४५. शरतकी सूक्तियों	श्री नारायणप्रसाद जैन श्री रामप्रकाश जैन	६) २)
---	---	----------

## राजनीति

४६. एशियाकी गजनीति	श्री परदेशी साहित्यरत्न	६)
--------------------	-------------------------	----

## निवन्ध, आलोचना

४७. जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
४८. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' ३)
४९. शरतके नारी-पात्र	श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ४।।।
५०. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	श्री रावी २।।।
५१. बाजे पायलियाके द्वुघरू	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ४)
५२. माटी हो गई सोना	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' २)

## दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३. भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम० ए०	२)
५४. अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन	४।।।
५५. वैदिक साहित्य	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

## भाषाशास्त्र

५६. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन	श्री भोलाशकर व्यास	५)
------------------------------------	--------------------	----

## विविध

५७. द्विवेदी-पत्रावली	श्री वैजनाथ सिंह 'विनोद'	२।।।
५८. ध्वनि और संगीत	श्री ललितकिशोर सिंह	४)
५९. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्द	१)

**भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी**



